मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Master of Arts (Sanskrit)

प्रथम सेमेस्टर - एम0ए0एस0एल - 504

नाटक एवं नाट्यशास्त्र

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति **MASL- 504**

कुलपति (अध्यक्ष)
उ0 मु0 वि0 हल्द्वानी,
प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
जे0 एन0 यू0 दिल्ली,
प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्था,जयपुर परिसर, राजस्थान,
प्रोफे0 कौस्तुभानन्द पाण्डेय,
संस्कृत विभाग, कुमाउँ विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा,

प्रोफे0 एच0पी0शुक्ल-संयोजक,
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0 मु0 वि0 हल्द्वानी,
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी,
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि. प्रोफे.-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी,

मुख्य सम्पादक	**पाठ्यक्रम संयोजन एवं सह सम्पादक**
प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय राष्ट्रीय संस्कृत संस्था जयपुर परिसर, राजस्थान,	**डॉ0 नीरज कुमार जोशी** असि. प्रोफे.-ए.सी.,संस्कृत विभाग उ0 मु0 वि0 वि0, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र **सहायक आचार्य ,संस्कृत विभाग** उ0 मु0 वि0 वि0	प्रथम खण्ड
प्रो0 पुष्पा अवसथी, विभागाध्यक्षा एस.एस.जे.परिसर कुमायुँ वि0 वि0 अल्मोड़ा	द्वितीय खण्ड
डॉ0 राधेश्याम गंगवार, एसो0 प्रो0 राजकीय महिला महावि0 विकास नगर, देहरादून	तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड
डॉ0 डी0 एस0 तिवारी राजधानी कालेज , राजा गार्डेन दिल्ली	पंचम खण्ड

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय **ISBN - 978-93-84632-24-3**
प्रकाशन वर्ष : 2020, **प्रकाशक**: (उ0 मु0 वि0 वि0) -263139
पुस्तक का शीर्षक - नाटक एवं नाट्यशास्त्र **MASL- 504**
मुद्रक:

नोट : - इस अध्ययन सामग्री का प्रकाशन छात्र हित में शीघ्रता के कारण किया गया है सम्पादित संस्करण का प्रकाशन अगले वर्ष सम्भव है। इस सामग्री का उपयोग अन्यत्र कहीं भी उ0मु0वि की लिखित या प्रशासनिक अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – प्रथम अध्याय	**पृष्ठ संख्या**	**01-03**
इकाई 1: नाट्यशास्त्र का परिचय		04-20
इकाई 2: नाट्यशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय		21-33
इकाई 3: नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य		34-45
इकाई 4: नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय पूर्वार्ध (अर्थ एवं व्याख्या)		46-79
इकाई 5: नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय उत्तरार्ध (अर्थ एवं व्याख्या)		80-96

द्वितीय खण्ड – दशरूपक प्रथम एवं द्वितीय प्रकाश	**पृष्ठ संख्या 97**
इकाई 1: रूपक भेद एवं सामान्य परिचय	98-111
इकाई 2:नृत्य पंचसन्ध्यंको का विवेचन	112-127
इकाई 3: अर्थोपक्षेपक,नायक-नायिका निरूपण	128-150
इकाई 4: दशरूपक के अनुसार रस मीमांसा	151-172
इकाई 5: दशरूपक प्रथमप्रकाश	173-195
इकाई 6: दशरूपक द्वितीय प्रकाश	196-216

प्रथम सेमेस्टर / SEMESTER-I

खण्ड 1-नाट्यशास्त्र

इकाई - 1 नाट्यशास्त्र का परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाट्यशास्त्र का परिचय
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों की उत्तरमाला
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह पहली इकाई है इस इकाई को पढने के बाद आप बता सकते है कि नाट्यशास्त्र का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ नाट्यशास्त्र का स्वरूप क्या हैं ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि है इनके बारें में आप भली-भाँति परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के काल के विषय में अनेंक आचार्यों ने अपना अलग - अलग मत स्वीकार किया है इसके बारे में आप भली-भाँति परिचित होंगे।

इस इकाई के अध्ययन से बाद नाट्यशास्त्र का महत्व क्या है ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से पश्चात् आप-

- भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र के महत्व को समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के रचनाकार के बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के बारें में आप परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के स्वरूप के बारें में आप परिचित होगें।
- नाट्यशास्त्र के समय क्या है? इसके बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के विभाजन के बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के अध्यायों के विषय क्या है इसके बारे में परिचित होगे।

1.3 नाट्यशास्त्र का परिचय

नट् धातु से नाट्य शब्द बना हैं जिसका अर्थ होता है गिरना नाचना कला का उत्कृष्ट रूप काव्य है और उत्कृष्टतम रूप नाटक है भरतमुनि का नाटय शास्त्र सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जो अपनी विचारों के साथ साथ व्यापक विषयगत समग्रता से परिपूर्ण है। भारतीय नाट्य कला पर विचार करते समय नाट्यशास्त्र सदा आगे आ जाता है। यह महान ग्रन्थ नाट्यकला के अतिरिक्त काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं का भी विषयगत कोष है। यह नाट्यशास्त्र ग्रन्थ ने भारत की रंगमच्चीय कला को शताब्दियों से प्रभावित कर रखा है - क्योंकि इस अकेले ग्रन्थ में नाट्य विषयक विवरण जितनी तन्मयता के साथ प्रस्तुत हुआ हैं वह अन्य किसी उत्तरकालीन ग्रन्थ में दुर्लभ ही है

तत्काली न संसार के किसी अन्य ग्रन्थ में भी प्राप्त नहीं होता । इसका कारण यह भी है कि भारतीयनाट्यकला की नाट्यशास्त्र को छोडकर कल्पना करना सम्भव ही नहीं हैं और प्राचीन भारत में व्यबहुत नाट्यकला के स्वरूप तत्व तथा प्रकृति को पूर्णतः हृदयागं करने के लिए एकमात्र नाट्यशास्त्र ही आधार है। इस नाट्यशास्त्र में नाट्य तथा रंग से सम्बद्ध काव्य, शिल्प, संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं का व्यापक विवरण दिया गया है । तथा अनेक प्रकार की शास्त्रों, शिल्पों, कलाओं, तथा प्रयोगो की चर्चा की गयी है । इस ग्रन्थ की विविधता ने इसे काव्य नाट्य शिल्प तथा ललित विधाओं का विश्वकोष बना दिया । इसमें भरतमुनि ने नाट्यकला को व्यवस्थित कर जो स्वरूप प्रदान किया है। वह इतना व्यापक तथा सूक्ष्म तात्विक हुआ कि परवर्ती आचार्यों को इसी के प्रभाव तथा छाया में आकर ही अपना विश्लेषण प्रस्तुत करना पडेगा भरतमुनि के नाट्य सिद्धान्तों में मौलिकता एवं व्यापकता का ऐसी बीज है, जिनकी शाश्वती स्थिति आज भी देखी जा सकती है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में चतुर्विध अभिनय का सिद्धान्त, गीत, एवं वाद्यविधि, पात्रों की विविध प्रकार की प्रकृति तथा भूमिका आदि का विवेचन विश्व की किसी भी उन्नत नाट्य कला से कम नहीं है । भरतमुनि के द्वारा रचित नाट्यशास्त्र ने शाश्वत भारत का ऐसा स्वरूप उपस्थित किया जिसमें काव्य, नाट्य, संगीत, तथा नृत्य जैसी सुकुमार ललित कलाओं के द्वारा मानव के शाश्वत जीवन की कल्पना की गयी है। नाट्यशास्त्र के सांगोपांग वर्णन से नाट्यशास्त्र को जो अप्रतिम स्वरूप प्रदान किया है। वह आज तक अक्षुण्ण है। भरतमुनि ने भारत की समस्त चेतना कला को अपनी प्रतिभा के द्वारा निर्माण किया था जिसका कीर्तिस्तम्भ नाट्यशास्त्र है।

नाट्यशास्त्र का स्वरूप

ललित विधाओं के विश्वकोष इस नाट्यशास्त्र ने भारत की उदात्त कला को निर्माण किया है। भरत ने नाट्यशास्त्र को वेद की संज्ञा दी है क्योंकि अन्य वेद केवल द्विजमात्र के लिए है किन्तु नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है इसी कारण अन्य शास्त्रकारों ने भी नाट्यवेद तथा भरतमुनि को मुनि के रूप में आदर के साथ स्मरण किया है। वर्तमान में नाट्यशास्त्र के छत्तीस या कुछ सस्करणों में सैतीस अध्याय उपलब्ध है तथा इस नाट्यशास्त्र में छः हजार श्लोक है। इसी तथ्य का संकेत आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी प्रसिद्ध नाट्यशास्त्र व्याख्या अभिनवभारती में किया है। शारदातनय तथा इसके उत्तरवर्ती आचार्यो ने नाट्यशास्त्र को दो संस्करणों या पाठों का उल्लेख किया है। इनके अनुसार इनके अनुसार नाट्यवेद के वृहद् तथा लधु दो पाठ थे, जिनमें छः हजार तथा बारह श्लोक थे। म. म. रामकृष्ण कवि ने इस बात को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि बारह: हजार श्लोक की संख्या वृद्धभरत की रचना थी जिस को संक्षेप करते हुए भरतमुनि ने छः हजार श्लोकों में नाट्यशास्त्र का संकलन किया । प्राचीन नाटय शास्त्र का नाम नाटयवेद था तथा दीर्ध या द्वादशसाहस्त्री का पाठ ही प्राचीन पाठ था, जिसके कुछ अंशप्राप्त भी है। अन्य विद्वान् श्रीरामकृष्ण कवि ने इन तर्कों से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि लघु

या षट्साहस्त्री संहिता का पाठ ही प्राचीन है जिनमें अन्य प्रक्षेपों तथा विषयों को जोड़कर विस्तृत बनाना ही उत्तरवर्ती पाठ की स्थिति तथा आयाम को तार्किक सहारा देने योग्य बनाता है। धनञ्जय भोज तथा आचार्य अभिनवगुप्त के समय तक दोनों पाठों की परम्पराएँ चल रही थी। धनञ्जय ने नाट्यशास्त्र के षट्साहस्त्री रूप को आधार माना है तो भोजराज ने द्वादशसाहस्त्री या बृहत् पाठ को रचना का आधार माना था। परन्तु आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी सुप्रसिद्ध अभिनवभारती टीका नाट्यशास्त्र के षट्साहस्त्री पाठ पर ही लिखी थी । इन दोनों पाठों का विवरण शारदातनय ने अपने भावप्रकाशन में सविवरण दिया है। तदनुसार मूल नाट्यवेद को मनु के आग्रह पर दो रूप में विभाजित किया गया था जिनमें एक षट्साहस्त्री तथा दूसरी द्वादशसाहस्त्री थी। द्वादशसाहस्त्री का पाठ सदाशिव भरत की परम्परा में प्रचलित था। यमलाष्टक तत्र् के अनुसार नाट्यवेद का विस्तार छत्तीस हजार श्लोकों का था जिसे संक्षेप में द्वादशसाहस्त्री में प्रतिपादित किया गया परन्तु यह विवरण उत्तर कालीन किसी भी नाट्यशास्त्रीय विवरण से मेल नही खाता और नहीं शारदातनय के वर्णन से कहीं समानताप्राप्त करता है अत एव इसे निराधार कल्पना मानकर प्रसन्न हुआ जा सकता है। यदि 'गन्धर्ववेद' अपने सैद्धान्तिक विवरणों में संगीत रत्नाकर जैसे उत्तरवर्ती ग्रंथों से जहाँ विषयगत समानता रखता हो तो फिर नाट्यवेद का विवरण भी इसी परम्परा में होने आवश्यक थे। इस विषय में दूसरा तर्क यह भी है कि वर्तमान नाट्यशास्त्र को कही भी षट्साहस्त्री संहिता से यद्यपि अलग नही बताया गया है तथापि धनिक जैसे प्रथितयशस्क आचार्य तथा उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों के द्वारा नाट्यशास्त्र के जिस विवरण को स्थापित किया गया है वह षट्साहस्त्री संहिता ही है। जो वर्तमान में नाट्यशास्त्र का लधुपाठ है पर अन्य का द्वादशसहस्त्री का प्रतिषेधक नहीं मानना चाहिए। इसका कारण यह है कि वहुरूपमिश्र द्वारा रचित दशरूपक टीका में तथा अन्यत्र द्वादशसाहस्त्री संहिता के कुछ उद्धरण मिलता है यह शारदातनय के उस विवरण को पुष्टि देता है कि द्वादशसहस्त्री संहिता का दीर्घ पाठ नाट्यशास्त्र का एक बृहद् रूप अवश्य था जो प्राचीन काल में विद्यमान था। इन विवरणों पर ध्यान देने से यह भी पता चलजाता है कि इनमें चर्चित ब्रह्मा, शिव, तथा भरत का व्यक्तित्व नाट्यशास्त्र के मुख्य विद्वानों में है। जिनमें बाद में विष्णु तथा तण्डु को भी समाविष्ट किया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरतमुनि का नाट्यशास्त्र अपने व्यापक विषय विस्तार के कारण पुराण काल से आज तक विवेचक विद्वानों को आकृष्ट करता चला आ रहा है, जो इस बात का सूचक है कि पूरा भारतीय प्रज्ञा ने लोकप्रिय कलाओं को कितने गम्भिर रूप में ग्रहण किया होगा तथा उसे उन्नत स्थान पर स्थापित करवानें में कितना समय तथा श्रय लगाया होगा।

नाट्यशास्त्र के रचनाकार

प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटयशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि हैं और सभी विद्वान् नाट्यशास्त्र के कर्ता भरत पौराणिक व्यक्ति है जिनकी सामर्थ्यता का वर्णन देवलोक से लेकर स्वर्ग लोक तक की गयी है। पुराणादि में अनेक प्रकार के भरत के नामों का उल्लेख मिलता है। जैसे दशरथ

के पुत्र भरत, दुष्यन्त के पुत्र भरत, मन्धाता के प्रपौत्र भरत, तथा जड़ भरत। इनमें सभी किसी राजवंश से सम्बन्ध होने या किसी कारणों से उल्लिखित होने से नाट्यशास्त्र के लेखक भरत नहीं हो सकते पुराणों में उल्लेख होने के कारण भरतमुनि को ही ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे यही प्रतीत होता है कि नाट्यशास्त्र के लेखक भरतमुनि ही है कोई अन्य भरत नहीं है। नाट्यशास्त्र के अनुसार भरतमुनि ने ब्रहा से नाट्यवेद का अध्ययन किया तथा अपने एक सौ पुत्रों को नाट्यवेद को पढाया जिसमें से अनेक पुत्रों ने बाद में नाट्यशास्त्र विषयक ग्रन्थों की रचना की थी। भरत ने भी स्वयं 'महेन्द्रविजय' नामक नाटक त्रिपुरादाह डीम तथा अमृतमन्थन समवकार नामक रूपकों के अभिनय प्रयोगों को विभिन्न अवसरों पर प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त प्रेक्षागृह के रचना के सन्दर्भ में भी भरतमुनि मुनि को श्रेय मिला है। और इसी कारण नाट्य मण्डप के आदि प्रवर्तक भी भरतमुनि को माना गया है।

नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त परवर्ती नाट्यशास्त्रीय रचनाओं तथा नाटक आदि के साक्ष्यों से भी नाट्यप्रणेता एवं नाट्यशास्त्र के निर्माता के रूप में भरतमुनि का नाम प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्रीय रचनाओं से धनिक एवं धनञ्जय के दशरूपक, नन्दि के श्वर के अभिनयदर्पण, शारदातनय भावप्रकाशपन, अभिनवगुप्त रचित अभिनवभारती टीका, सिंह भूपाल के रसार्णवसुधाकर तथा सागरनन्दी के नाट्क-लक्षण-रत्नकोष आदि सभी नाट्यशास्त्रीय रचनाओं में भरतमुनि को बड़े आदर के साथ नाट्यशास्त्र के आचार्य के रूप में वर्णन किया गया है। जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र में पाणिनि को श्रेयष्कर माना जाता है उसी प्रकार नाट्यशास्त्र में भरतमुनि को श्रेयष्कर माना जाता है। इसी कारण नाट्यशास्त्र का दूसरा नाम भरत सूत्र भी है। सूत्र के रूप में शास्त्रीय तत्वों की प्रतिपादन की प्रवृत्ति इस ग्रन्थ की मुख्य शैली है। इन्ही कारणों से भरतमुनि ही नाट्यशास्त्र रचनाकार सिद्ध होते है।

नाट्यशास्त्र में भरत शब्द का अभिनेता सूत्रधार आदि के लिए भी प्रयोग मिलने के कारण परवर्ती आचार्यों। में अनेक भरत नामों के होने की आशंका व्याप्त हो गयी तथा इनके आगे वृद्ध तथा आदि भरत जैसे विशेषण लगाये जाने लगे। आचार्य अभिनवगुप्त के समय में भी यही भावना व्याप्त हो गयी थी कि नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरत आदि है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस भावना का खण्डन किया कि नाट्यशास्त्र का प्रथम प्रवर्तक भगवान शिव फिर ब्रह्मा तथा अन्त में भरतमुनि ने किया था। अतः इनके प्रवर्तक क्रमश: भगवान शंकर ब्रह्मा तथा अन्त में भरत थे। शारदातनय के भाव प्रकाशन ग्रन्थ के अनुसार नाटयशास्त्र की द्वादशसाहसी संहिता की रचना आदि भरत या वृद्ध भरत ने की थी। जिसके कुछ गद्यांश भी उसमें उद्धत किये गये है इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आदि या वृद्ध भरत की रचनायें भरत के उत्तरकाल में प्रचलित हुई। जैसे मनुस्मृति के बाद वृद्धमनु आदि जिनमें भरत शब्द को विशेषण लगाकर नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों को निदर्शित किया गया है। इस प्रकार यद्यपि भरत शब्द किसी वंश या जाति परम्परा के लिए प्रयुक्त हुआ हो तो इससे भरतमुनि के व्यक्तित्व में कोई किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई हाँ इससे इस बात का संकेत अवश्य मिलता है कि नाट्यशास्त्र के

अनुशीलन के कारण नाट्याचार्यों तथा भरतों की एक अक्षुण्ण परम्परा प्रवाहमान रही जिन्हें भरत की संज्ञा प्राप्त थी।

नाट्यशास्त्र के विवरणों से भरतमुनि के पृथ्वी पर निवास स्थान का भी यत् किच्चिद् आभास मिल जाता है। नाट्यशास्त्र में हिमालय पर्वत पर स्थित भगवान शिव के आदेश पर तण्डु से ताण्डव का ज्ञान भरतमुनि ने किया था। तथा उन्हीं के समक्ष त्रिपुरदाह नामक डिम रूपक को प्रस्तुत भी किया था। नाट्यशास्त्र में हिमालय पर्वत पर सहज एव मनोभावन वर्णन के साथ शिव एवं पार्वती के ताण्डव तथा लास्य के विवरणों से यही प्रतीत होता है कि भरतमुनि का निवास हिमालय पर्वत के किसी क्षेत्र में होगा। कुछ आलोचना करने वाले हिमालय के अन्तराल में रहने वाले वृक्षों आदि के सूक्ष्य विवरणों से कश्मीर के अधिक समीप स्थापित करते हुए भरतमुनि का निवास कश्मीर बतलाते है। तथा अन्य तर्क भी देते है। कि कश्मीर में ही नाट्यशास्त्र का अध्ययन सर्वाधिक होता था और इसी कारण काश्मीरि विद्वानों में से ही जैसे भट्ट लोलट, श्री शंकुक भट्ट नायक तथा अभिनवगुप्तपाद आदि ने ही न नाट्यशास्त्र की व्याख्याये लिखी है।

नाट्यशास्त्र में नाट्य के सहायक तत्वों के रूप में अलंकार, छन्दशास्त्र तथा संगीतशास्त्र का भी अधिक विवेचना मिलता हे भरतमुनि नाट्यविद्या के साथ साथ अलकांरशास्त्र आदि के प्रथम आचार्य है। यह सभी आलोचनकों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है।

भारतीय एवं विदेशी विद्वानों द्वारा नाट्यशास्त्र पर कार्य

विदेशी विद्वान् श्री विलियम जोन्स के द्वारा सन् १७८९ में कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित हुआ तभी से विदेशी विद्वानों ने भारतीय रंगमंच की प्रकृति और उसके उत्पत्ति के विषय में रूचिलेना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम भी थोड़ा आशाजनक बना। और इसके बाद सन १८२६ में विदेशी विद्वान श्री एच.ए. विल्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सैलेक्ट स्पेसीमेन आफ दी हिन्दू थिएटर' में भरतमुनि के द्वारा रचित नाट्यशास्त्र की चर्चा करते हुए लिखा है कि अनेक संस्कृत नाटकों तथा नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में जो भरतमुनि के द्वारा कहा गया नाट्यविद्या के सूत्र ग्रन्थ के उद्धरण प्राप्त होते है वह ग्रन्थ न इस समय प्राप्त है और न देखने का अवसर प्राप्त होता है । इस प्रकार युरोपीय विद्वानों में श्री विल्सन के इस विचार से नाट्यशास्त्र के विषय में निराशा व्यापत चली थी। इसके बाद लगभग चालीस वर्ष तक नाट्यशास्त्र के विषय में (अर्थात सन् १८६५ ई0 तक) कोई बात नही हुई जब तक श्री एल हाल के द्वारा सम्पादित दशरूपक का प्रकाशन (१८६५) नहीं हुआ। धनञ्जय द्वारा रचित दशरूपक यद्यपि नाट्यशास्त्र मध्यकालीन ग्रन्थ था फिर भी नाट्यशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थों में सर्वप्रथम उसी का प्रकाशक समभव था। पर्याप्त समय लगा। परन्तु जब यह ग्रन्थ प्रकाशित होने ही वाला था कि श्री हाल को नाट्यशास्त्र की एक त्रिटिपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त हो गयी । हाल ने उसी पाण्डुलिपि के आधार पर दशरूपक के साथ परिशिष्ट के रूप में नाट्यशास्त्र के अध्याय १८ से २० तक तथा ३४ अध्यायों को प्रकाषित कर दिया। इस दशरूपक

के प्रकाशन के बाद हाल महोदय ने नाट्यशास्त्र के प्रकाशन का भी विचार किया किन्तु बाद में समग्र पाण्डुलिपि के न मिलने के कारण वे निराष होकर इस विचार को छोड़ दिया इस प्रकार नाट्यशास्त्र का प्रथम प्रयास विफल ही था।

श्री हाल ने नाट्यशास्त्र के कुछ अध्यायों के प्रकाशन तथा पाण्डुलिपि की खोज की जो श्री विल्सन के समय से प्राप्त थी। नाट्यशास्त्र के पाण्डुलिपियों के खोज के लिए अनेक विद्वान लग गये। कुछ ही वर्षों बाद नाट्यशास्त्र की पाण्डुलिपि की जर्मन विद्वान हँमान ने प्राप्त की तथा नाट्यशास्त्र पर एक परिचयात्मक लेख भी (सन् १८७४ मे) प्रकाशित करवाया। इस लेख के प्रकाशन से विद्वानों में और भी अधिक नाट्यशास्त्र विषयक रूचि उत्पन्न हुई तथा नाट्यशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान करने का अवसर प्राप्त हुआ। हँमान के इस लेख के प्रकाशन के बाद फ्रांसीसी विद्वान् श्री पी.रेग्नों और उन्हीं के शिष्य श्री जे.ग्रासेटन नाट्यशास्त्र के अनुसन्धान को और आगे बढ़ाने का प्रयास किया। श्री पी.रेग्नों ने सन् १८८४ में पन्दहवें, सोलहवें तथा छठे और सातवें अध्याय को सम्पादित कर प्रकाषित करवाया। इस प्रकार नाट्यशास्त्र अभी तक कुल आठ अध्याय ही प्रकाशित हो पाये थे। इसके बाद श्री रेग्नों के एक शिष्य श्री जे.ग्रासेट ने अट्ठाइसवें अध्याय को सम्पादित करके प्रकाशित करवाया जिसमें भारतीय सिद्धान्तों का संगीत के सामान्य विवेचना था। पुनः सन् १८९0 में भी ग्रासेट ने नाट्यशास्त्र की विभिन्न पाण्डुलिपियों को आधार पर नाट्यशास्त्र का अध्याय एक से चौदह तक संस्करण तैयार कर प्रकाशित करवाया जो आज एक आदर्श ग्रन्थ होकर अपना महत्व स्थापित किया हुआ है।

जिस समय विदेश में श्री पी. रेग्नों तथा जे0 ग्रासे अपने नाटयशास्त्र की सम्पादन की योजना बना रहे थे। उसी समय भारत में नाट्यशास्त्र की पाण्डुलिपियाँ दो विद्वान् प्राप्त कर लिये थे तथा उस पाण्डुलिपि के आधार पर एक संस्करण बनाने की योजना बना रहे थे। ये थे श्री शिवदत्त दाधीच तथा पाण्डुरगं परव जिसने समग्र नाट्यशास्त्र को दो पाण्डुलिपियां प्राप्त कर उनके आधार पर इस नाट्यशास्त्र का सम्पादन किया तथा निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से सन् १८९४ में सर्वप्रथम प्रकाशन किया गया। यह कार्य श्री ग्रासेट के अपूर्ण नाट्यशास्त्र के तुलनात्मक संस्करण के प्रकाशन के भी चार वर्ष पूर्व ही भारत में प्राप्त हो गया था तथा यह समग्र नाट्यशास्त्र का प्रकाशन भी हो गया था

इसी समय फारन्स के प्रथितयशस्क विद्वान् प्रो0 सिल्वालेनी ने नाट्यशास्त्र के १८ से २२ अध्याय तथा ३४ वे अध्याय का आधार लेकी भारतीय रंगमंच के स्वरूप एवं प्रकृति पर एक विवेचनात्मक ग्रन्थ की रचना की इस ग्रन्थ का नाम था थिएटर इण्डियन जिसका प्रकाषन १८९0 में हुआ था और जो श्री रेग्नों के प्रकाषित नाट्यशास्त्र से भी पूर्ववर्ती ग्रन्थ लेखन का प्रयास था। इस ग्रन्थ में नाट्क के साहित्यिक रूप में अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया था। और प्रथम बार यहाँ धनञ्जय के दशरूपक तथा विश्वनाथ का साहित्यदर्पण जैसे परवर्ती नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के वचनों की नाट्यशास्त्र के आधार पर प्रमाणिकता की समीक्षा की गयी थी। यह नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ के

सम्पादन या अनुवाद से भिन्न कार्य अवश्य था इस कार्य ने नाट्यशास्त्र के महत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करने की पर्याप्त सफलता प्राप्त की तथा प्राचीन भारतीय नाट्यविद्या के इतिहास को मुख्य बिन्दु तक पहुचाने का कार्य किया। प्रो0 लेवी ने उपरान्त जिसने भी नाट्यशास्त्र पर अपने विवेचना या समीक्षाये जो लिखी उसने किसी न किसी अंश में लेवी के ग्रन्थ का आधार अवष्य लिया।

इस समय तक नाट्यशास्त्र के अधिक आकर्षक न रहने में बाधा बनी तो इस ग्रन्थ की दुरूहता क्योंकि इसके आशय को हृदयगम करने के लिए किसी न किसी व्याख्यान का अभाव था। यह अभाव अधिक वर्षों तक नही रहा और नाट्यशास्त्र के मुम्बई संस्करण के लगभग बीस वर्ष के अन्दर ही मद्रास शासन द्वारा हस्त लिखित ग्रन्थों आदि की खोज के लिए संस्कृत के कुछ अन्वेषक विद्वानों को नियुक्त किया गया। इसमें तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वानों के अतिरिक्त म.म राम कृष्ण कवि भी थे। जो इस दल के मुख्य व्यवस्थापक भी थे। यह व्यवस्था तब की गयी कि जब शासन को यह जानकारी हुई की अनेक महत्वपूर्ण, हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थ मलावार के पुस्तकालयों तथा स्वतन्त्र व्यक्तियों के संग्रह में विद्यमान था। सन् १९१५ ई0 में विद्वानों ने मलावार के पुस्तकालयों में विद्यमान ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र की अभिनवगुप्त विरचित अभिनवभारती व्याख्या प्राप्त लिये। इनमे तीन ताड़ पत्र पर लिखित ग्रन्थों में अभिनवभारती टीका के अध्याय १ से ३१ तक प्राप्त किये। इन ग्रन्थों के अनुसन्धान के लिए मद्रास शासन के हस्तलिखित पुस्तकालय के द्वारा मंगवाया गया। इसी व्याख्या की दूसरी प्रति भी तावण कोर के राजकीय हस्तलिखित ग्रन्थावार में प्राप्त हो गयी। इस समाचार से अनेक विद्वानों ने इन ग्रन्थों को देखने के लिए इन ग्रन्थों को प्रतिलिपिया करवाकर उन सभी विद्वानों को भेजा गया जो देखना चाहते थे। इन सभी प्रतियों में नाटयशास्त्र के सप्तम अध्याय तथा अष्टम अध्याय का टीका नही थी। इसके अतिरिक्त पञ्चम अध्याय के अन्तिम भाग भी दोनों प्रतियों में एक ही स्थान पर अपूर्ण थे। किन्तु षष्ठ अध्याय के अन्तिम भाग शान्त रस का विवेचन दोनों प्रतियों में समान रूप से विद्यमान था। दोनों प्रतियां किसी एक ही मूल प्रति के आधार पर तैयार की गयी थी। यह दोनों प्रतियों के मिलान करने पर निश्चित हुआ। अभिनवभारती के प्राप्ति से नाट्यशास्त्र के जो अध्येता को नवीन प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। तथा श्री म0म0 रामकृष्ण कवि ने सन १९२ बड़ौदा से इसी व्याख्या के साथ मूल नाट्यशास्त्र का परिश्रम से सम्पादन कर सप्तम अध्याय तक का प्रथम खण्ड फिर क्रमशः सन् १९३६ में अध्याय ८ से १८ तक का दूसरा खण्ड, सन् १९५४ में अध्याय १९ से २६ तक का तृतीय खण्ड तथा सन् १९६४ में अध्याय २८ से ३७ का चतुर्थ खण्ड प्रकाशित हुआ।

नाट्यशास्त्र का रचना काल

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के व्यक्तित्व की समान नाट्यशास्त्र की रचना काल के विषय में भी विद्वानों ने श्रमपूर्वक अन्वेषण किया और उनका यह प्रयास अनेक तर्को के माध्यम से सफल भी रहा। इस क्रम में प्रथम उद्योग नाट्यशास्त्र के १ से १४ अध्याय का सम्पादन पी. रेग्नों तथा जे. ग्रासे ने किया तथा नाट्यशास्त्र का रचनाकाल इसके काव्य शास्त्रीय तथा छन्दःशास्त्रीय स्वरूप

कों दृष्टिगत रखते हुए इसने ईसवी सन् से कम से कम एकशती पूर्ण निर्धारित किया। इसके बाद म0 म0 हर प्रसाद शास्त्री ने नाट्यशास्त्र के विभिन्न तत्वों को विश्लेषणों के उपरान्त इसका निर्माण काल पी0 रेग्नों के समान ईशापूर्व दो शती निर्धारित किया। कर्नल श्री जेकबी ने नाट्यशास्त्र की प्राकृतभाषा के अंशो का विश्लेषण करते हुए नाट्यशास्त्र का रचना कालदशा की तीसरी शाती निर्धारित किया। नाट्यशास्त्र के प्रयुक्त कुछ छन्दों के आधार पर नाट्यशास्त्र का समय निश्चित करने का प्रयत्न किया है। इनके मत में स्वामी, सुगृहीत नामा, भद्रमुख आदि शब्दों के प्रयोग के आधार पर नाट्यशास्त्र का समय निश्चित किये है, क्योकि स्वामी, भद्रमुख आदि शब्दों का पहपाण तथा चष्टन क्षत्रपों के शिला लेखों में आया हे। इसके अतिरिक्त शक, यवन आदि आक्रमणकारी जातियों का भी नाट्यशास्त्र में विवरण मिलता है। अत एव शिला लेखों में प्रयुक्त उपयुर्कत शब्दों के साम्य तथा शक आदि जातियों के उल्लेख के कारण नाट्यशास्त्र का रचना काल ईसवी दूसरी शती अर्थात् इन क्षत्रपों के स्थितिकाल के पास का समय है। इसी प्रकार श्री डा0 डी0 सी0 सरकार ने भी प्राचीन शिलालेखों के आधार पर तथा नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त नेपाल तथा महाराष्ट्र शब्द के आधार पर नाट्यशास्त्र का रचना काल दूसरी शती ईशवी के बाद का बतलाया, क्योंकि नेपान शब्द का प्रथम उल्लेख समुद्र गुप्त प्रशास्ति में तथा महाराष्ट्र शब्द का महावंश ईशापूर्व पूवी शती, तथा ऐहोल अभिलेख (ई0 ६३४) मे मिनता है । म0 म0 पी0 ही0 काणे ने इस आधार का निषेध करते हुए यह निश्चय किया कि ऐसा क्यों न माना जाय कि इन देशो का प्रथम उल्लेख नाट्यशास्त्र में ही हुआ है क्योंकि प्रथम उल्लेख होने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि इन देशों के इससे पूर्व में नाम ही नहीं थे तथा इन शिलालेखों में इन देशों के पश्चाद्भावी काल में उल्लेख होने से नाट्यशास्त्र का रचना काल आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। प्रवरसेन प्रणीत सेतु बन्धु काव्य में महाराष्ट्री प्राकृत का जिस परिकृत रूप में प्रयोग हुआ है। उससे महाराष्ट्री प्रयोग करने वाले जनपद का इन शिलालेखों के रचना काल के सदियों पूर्व अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। म0 म0 काणे के अनुसार नाट्यशास्त्र में उल्लिखित विश्वकर्मा पूर्वाचार्य, कामसूत्र कामतन्त्र, वृहस्पति, नारद, तण्ड, पाशुपत आदि के उल्लेख से नाट्यशास्त्र का काल ईसवीं सन् के प्रारम्भ सके पूर्वकाल से अधिक नहीं कहा जा सकता है।

नाट्यशास्त्र के संक्षिप्त विषय

यहाँ नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त विषय दिया जा रहा है। जिसमें अध्याय क्रम काशी के संस्करण के आधार पर दिया जा रहा है।

प्रथम अध्याय

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि के आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा नाटयवेद के विषयों में जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किये गये कि नाट्यवेद की उत्पत्ति कैसे हुई? किसके लिए हुई ? इसके कौन कौन अंग है? उसकी प्राप्ति के उपाय कौन से है तथा उसका प्रयोग कैसे हो सकता है ? भरतमुनि ने इस के उत्तर में कहा कि नाटयवेद का ऋग्वेद से पाठ्य अंश, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय

अथर्वेद से रसों का प्रणयन किया गया है। इसे इस स्वरूप में निर्मित कर मुनि ने अपने सौ पुत्रों को पढ़ाया।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय में भरतमुनि ने नाट्यप्रदर्शन के लिये आवश्यक होने के कारण पेक्षागृह का वर्णन करते हुए उसके तीन प्रकार तथा उनके शिल्प, आकार तथा साधनों का विस्तार से विवेचना किया गया है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में नाट्यमण्डप में सम्पादित की जाने वाली आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का निरूपण करते हुए विभिन्न देवताओं की पूजा तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलों का निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

भरतमुनि द्वारा अमृत मन्थन नाट्यप्रयोग के देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत करने तथा त्रिपुरादाह को महेश्वर के सम्मुख करने तथा महेश्वर के आदेश से तण्ड द्वारा भरत को अंगहार, ताण्डव नृत्य की उत्पत्ति, तथा शिल्प को सांगोपांग विवेचन किया गया है।

पचंम अध्याय

इस अध्याय में नाट्यप्रयोग के आरम्भ में प्रस्तुत किये जाने वाले पूर्व रंगविधान नान्दी, प्रस्तावना तथा धुवाओ का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय में रस का सम्यग रूप से विवेचना किया गया है।

सप्तम अध्याय

इस अध्याय में भाव, विभाव, स्थायी तथा सच्चारी या व्यभिचारी भावों का सम्यग रूप से विवेचन किया गया है।

अष्टम अध्याय

इस अध्याय में अभिनय के आंगिक वाचिक आहार्य तथा सात्विक भेद बताकर अभिनय के संगोपांग विवेचना किया गया है।

नवम अध्याय

इस अध्याय में आंगिक अभिनय के क्रम को दर्शाते हुए हस्त, कुक्षि, कटि, जानु तथा पाद जैसे शरीर के अंगो का अभिनय विस्तार से निरूपण करते हुए नृत्य में हस्त मुद्राओं की परमोपयोगिता का वर्णन किया गया है।

दशम अध्याय

इस अध्याय में वक्ष कटि तथा शरीर के अन्य भागों के परिचालनजन्य पाँच प्रकारों का विवरण देकर उनके विभिन्न अवसरों पर किये जाने अभिनय का प्रयोग बतलाये गये है।

एकादश अध्याय

इस अध्याय में चारों का निरूपण करते हुए १६ प्रकार के भौमी १६ प्रकार के आकाशिकी चारियों के लक्षण तथा प्रयोग को बतलाया गया है तथा खण्ड करण तथा मण्डलों की नाटयोपयोगिता का वर्णन किया गया है।

द्वादश अध्यायइस

अध्याय में मण्डलों का लक्षण, संख्या तथा प्रयोग आदि का विशद् निरूपण किया गया है।

त्रयोदश अध्याय

इस अध्याय में गति प्रचार का निरूपण है। इसमे इसादि के अवसरों एवं अवस्थाओं के अनुकूल पात्रों की गति के विवरण बतलाये गये है। इसमे नाट्यप्रयोग के आरम्भ में प्रस्तुत होने वाली धुवाओं के गान के समय में होने वाली पात्रों की गति से लेकर देव, राजा मध्यवर्ग के स्त्री पुरूष, निम्न वर्ग के लोगो की गति में लगने वाले समय रौद्र वीभत्स वीर आदि तथा पात्रों के अभिनय करने का विवरण दिया गया है।

चतुर्दश अध्याय

इस अध्याय में रंगमच्च पर विद्यमान गृह, उपवन, वन, जल, स्थल आदि प्रदेश को संकेतित करने का निश्चय समय के अनुसार अंगानुसारी विभाजन तथा देश वेषभूषा आधार आदि पर चार प्रकार की प्रवृत्तियों का निरूपण मुख्य रूप से किया गया है।

पंचदश अध्याय

इस अध्याय में वाचिकाभिनय प्रारम्भ होता है। इसमें आरम्भ के अक्षरों पर अश्रित वाणी का नाट्य के वाचिक अभिनय में उपयोग बताते हुए अक्षरों के स्वर व्यज्जनात्मा विभेद बतलाकर उसके स्थान प्रयत्न का विवरण आदि दिया गया है। अन्त में गुरूलघु तथा यति मात्रा आदि छन्द: शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का सभ्यग रूप से विवेचन किया गया है।

षोडश अध्याय

इस अध्याय में भी वाचिकाभिनय में उपयोगी वृत्तों का सोदाहरण निरूपण किया गया है अन्त में सम तथा विषयकृत का वर्णन करके आर्या के प्रभेदों का विवरण दिया गया है।

सत्रहवें अध्याय

इस अध्याय में अभिनय के अन्तर्गत काव्य के छत्तीस लक्षणों का विवरण है। इसके उपरान्त उपमा रूपक दीपक तथा यमक नामक काव्य के अलंकार का वर्णन करतें हुए उनके गुण तथा दोषों का वर्णन किया गया है

अठारहवें अध्याय

इस अध्याय में नाटकोपयोगी भाषाओं का विवरण देते हुए संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रष्ट या देशी शब्द के उच्चारण भेद द्वारा होने वाले परिवर्तनों का विवरण देकर भाषा एवं विभाषाओं का वर्णन किया गया है।

उन्नीसवें अध्याय

इस अध्याय में उच्च नीच्च मध्य वर्ग के पात्रों को सम्बोधन करने की विविध प्रणालियों का निरूवण है। इनके अतिरिक्त वर्गों के पात्रों का नामकरण का उपाय स्वर व्यंजनों के उच्चारण स्थान द्रुत तथा विलम्बित जैसे अलंकारों का वर्णन किया गया है।

बीसवें अध्याय

इस अध्याय में रूपकों के भेद बतलाते हुए नाटयशास्त्र के मुख्य विषय का प्रारम्भ किया गया है। इसमें दशरूपकों के लक्षण का वैशिष्टयबतलाया गया है।

इक्कीसवें अध्याय

इस अध्याय में नाटक की कथा वस्तु के आधिकारिक तथा प्रासंगिक भेदों का निरूपण पन्च सन्धियाँ , पाच अवस्थाए पाँच अर्थप्रकृतियाँ तथा सन्धियों के सभी अगों के लक्षण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

बाइसवें अध्याय

इस अध्याय में नाटकोपयोगी वृत्तियों का वर्णन किया गया है। वृत्तियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भगवान विष्णु के द्वारा मधुकैटभ दैत्यों से युद्ध करने तथा वृत्तियों के भेद प्रभेद बताकर विभिन्न रसों के योजना का वर्णन किया गया है।

तेइसवें अध्याय

इस अध्याय में आहार्याभिनय का वर्णन किया गया है।

चौबीसवा अध्याय

इस अध्याय में सामान्य रूप से अभिनय का वर्णन किया गया है।

पच्चीसवें अध्याय

इस अध्याय में वैशिकपरूष का लक्षण बतलाकर उसके सामान्य गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

छब्बीसवां अध्याय

इस अध्याय में चित्राभिनय का वर्णन किया गया है इसमें सामान्य अभिनय के अन्तर्गत जिन आंगिक आदि अभिनयों का वर्णन छूट गया था ऐसे विशिष्ट अभिनयों का वर्णन किया गया है।

सत्ताइसवाँ अध्याय

इस अध्याय में सिद्धिव्यन्ज का ध्याय का वर्णन किया गया हे। इस में नाटय-प्रदर्शन में होने वाली देवी तथा मानुषी सिद्धि का सांगोपाग विवेचन करते हुए उनमें होने वाले विध्नों का वर्णन किया गया है।

अटठाइसवें अध्याय

इस अध्याय में संगीत शास्त्र का विशेष रूप वर्णन किया गया है।

उन्तीसवें अध्याय

इस अध्याय में जातियों के रसाश्रित प्रयोग का विवरण है। वर्ण तथा अलंकारों का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

तीसवें अध्याय

इस अध्याय में वाँसूरी के स्वरूप का विवेचन तथा उसकी वादन विधि का वर्णन किया गया है।

इकतीसवें अध्याय

इस अध्याय में ताल और लय तथा समयनियमन हेतु ताल विधान को विस्तार से वर्णन किया गया है।

बत्तीसवाँ अध्याय

इस अध्याय में ध्रुवाध्याय का वर्णन किया गया है। इसमें पात्रों के प्रदेश आदि अवस्थाओं में गायी जाने वाली धुवावों का वर्णन किया गया है।

तैतीसवाँ अध्याय

इस अध्याय को 'वाद्याध्याय' कहते है जिसमे मुदंग आदि अवन वाद्यो का विस्तार से वर्णन किया गया है।

चौत्तीसवाँ अध्याय

इस अध्याय में पुरूष एवं स्त्रियों की विविध प्रकृति का निरूपण करने के ही चार प्रकार के नायकों का सलक्षण वर्णन किया गया है ।

पैतीसवां अध्याय

इस अध्याय को भूमिका पात्र-विकल्पाध्याय कहते है। इसमें नाटयमण्डली के सदस्यों का विभाजन करते समय उनकी व्यक्तिगत विशषताओं को दर्शाया गया है।

छत्तीसवॉ अध्याय

यह अन्तिम अध्याय है इस अध्याय में मुनियों ने भरतमुनि से पृथ्वी पर नाटय के वअतरित होने के विषय में पुनः जिज्ञासा की ? मुनि ने इसके उत्तर में दो आख्यान प्रस्तुत कियें प्रथम में भरत पुत्रों के द्वारा मुनिजनों उपहासकारी नाटय से रूष्ट होकर ऋषियों से शप्त हो जाने की तथा दूसरे में इसी कारण राजा नहुष की प्रार्थना पर स्वर्गस्थ नाटय की भूतल पर अवतरण होने की कथा है।

नाट्यशास्त्र में कुछ सस्करणों में ३६ तथा कुछ सस्करणों में ३७ अध्याय है। उसमें नहुष की कथा का वर्णन किया है।

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि नाट्य शब्द किस धातु से बना है ? उसका अर्थ क्या होता है? आप जानते है कि नाट्यशास्त्र भरतमुनि का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इस महान ग्रन्थ में नाट्यकला के साथ काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा रंगमच्चीय कला का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र का रचनाकार कौन है इनके बारे में विशेष रूप से बताया गया है नाट्यशास्त्र ३६ अध्यायों में विभाजित किया गया है इसमें नाटय कला सम्बन्धी समग्र विद्याओं का वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
शिल्प	कारीगर
गृह	घर
नृत्य	नाच
अभिनय	टगों के द्वारा कला का प्रदर्शन
हस्त	हाथ
कुक्षि	पेट
कटि	कमर
जानु	जंघा
पाद	पैर
हस्तमुदा	हाथ का मुद्रा (अर्थात प्रदर्शन)
वक्ष	छाती
गान	गाना
वाणी	वाणी

संगोपाग	सम्पूर्ण
त्रिविध	तीन प्रकार के
निरूपण	वर्णन
मृदंग	ढौलक
वादन	बाद्य
ताल	ताली
पात्र	नाटक करने वाले
नाटयमण्डली	कलाकारों का समूह
अवतरित	पैदा होना उत्पन्न होना
उपहासकारी	हसी मजाक करने वाले
स्वर्गस्थ	स्वर्ग में रहने वाले
भूतल	पृथ्वी
रूष्ट	क्रोध होना

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र के रचनाकार कौन है ?
2. भरतमुनि कैसा व्यक्ति है ?
3. दशरूपक के लेखक कौन हैं?
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् को अंग्रेजी में अनुवाद किसने किया था ?
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् के लेखक कौन है ?
6. थिएटर इण्डियन का लेखक कौन है ?
7. सहित्पदर्पण का लेखक कौन है ?
8. षष्ठ अध्याय में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है?
9. अट्ठाइसवें अध्याय में मुख्य रूप से किसका वर्णन है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नाट्य शब्द किस धातु से बना है -

(क) नट् धातु से (ख) पठ् धातुं से

(ग) गम् धातु (घ) पा धातु से

2. कला का उत्कृष्ट रूप है -

(क) अलंकार (ख) रस

(ग) छन्द (घ) काव्य

3. भरतमुनि का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है -

(क) दशरूपक (ख) शारदातनय

(ग) नाट्यशास्त्र (घ) साहित्यदर्पण

4. नाट्यवेद के कितने पाठ थे

(क) तीन (ख) पाँच

(ग) छः (घ) दो

5. प्राचीन नाट्यशास्त्र का नाम था

(क) नाट्यशास्त्र (ख) नाटयवेद

(ग) अभिज्ञानशाकुन्तनम् (घ) दशरूपक

6. नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय हैं

(क) चार (ख) तीन

(ग) तीस (घ) छत्तीस

1.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तरमाला

लघु उत्तरीय प्रश्न के उत्तर

1. भरतमुनि
2. पौराणिक
3. धनञ्जय
4. श्री विलयम जोन्स
5. महाकवि कालिदास
6. सिल्वालेनी
7. विश्वनाथ
8. रस का
9. संगीतशास्त्र का

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर माला

1. (क)
2. (घ)
3. (ग)
4. (घ)
5. (ख)
6. (घ)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

2 बलदेव उपाध्याय बलदेव उपाध्याय संस्कृतसा. इतिहास चौखम्भा सुरभारती वाराणसी

3 सत्यव्रत सिंह, विश्वनाथ साहित्यदर्पण, चौखम्भा सुरभारती वाराणसी

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र का स्वरूप एवं उसकी महत्ता के बारे में समझाइयें।

इकाई 2. नाट्यशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 नाट्यशास्त्र के टीकाकारों एवं इनके सिद्धान्तों का परिचय
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों की उत्तरमाला
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तके
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र से संबन्धित यह दूसरी इकाई है इस इकाई को पढने के बाद आप बता सकते है कि नाट्यशास्त्र के कितने प्रमुख टीकाकार है। उन टीकाकारों का परिचय आप प्राप्त कर सकेंगे एवं उन टीकाकारों का मत अर्थात् सिद्धान्त क्या है उनके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि के सौ पुत्र थे उन पुत्रों में से कुछ पुत्रों के बारे में ज्ञान भलि भाति प्राप्त कर सकेंगे। भरत पुत्रों में सर्वप्रथम कोहल का नाम आता है नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय में कोहल आचार्य के रूप में भरत मुनि के उत्तराधिकारी नियुक्त किये है।

इस इकाई के अध्ययन से बाद नाट्यशास्त्र के टीकाकारों में आचार्य अभिनव गुप्त प्रमुख माने गये है इनके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

2 .1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से पश्चात् आप -

- भरतमुनिप्रणीत नाट्य शास्त्र के प्रमुख सोलह टीकाकारों का परिचय एवं इनके सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के टीकाकार कोहल के बारें में आप परिचित होगें।
- नाट्यशास्त्र के टीकारों में प्रधान टीकाकर आचार्य अभिनव गुप्त के विषय में आप में परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त के माता पिता एवं गुरू के बारे में परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त के 41 ग्रन्थों के विषय में आप परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त को किसके समान तुलना की गयी है उसके बारे में आप परिचित होंगे।

2.3 नाटयशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय

कोहल

नाट्यशास्त्र में उल्लिखित भरत के सौ पुत्रों मं सर्वप्रथम कोहल का नाम आता है। जो सर्वाधिक सम्मान पाने वाले आचार्य है। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरत पुत्रों में कोहल का उल्लेख मिलता है। नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय में कोहल आचार्य के रूप में भरत के उत्तराधिकारी नियुक्त किये है। आचार्य कोहल ने संगीत, नृत्य तथा अभिनय से संबंध स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना की आचार्य अभिनव ने अनेक स्थानों पर कोहल के मत का उल्लेख किया है। तथा कोहल को भरत के समसामयिक आचार्य माना है। इसी कारण आचार्य अभिनवगुप्त ने कोहल के

मतों का अनेक जगह उल्लेख किया है। आचार्य कोहल ने नाट्य के अनेक अंगो तथा नृत्य एवं संगीत पर अधकृित रूप से अनेक रचनायें की थी। जिनके इस समय उद्धरण प्राप्त है। संगीत ग्रन्थों में कोहल विषयक विवरण तथा उनके विस्तृत विवरण शांगदेव के संगीत रत्नाकर एवं इसकी सिंहभूपाल तथा कल्लिनाथ की टीकाओं में प्राप्त होते है। पार्श्वदेव के संगीत समयसार में कोहल के साथ दन्तिल आचार्य का संगीतशास्त्र के आचार्य के रूप में भी उल्लेंख प्राप्त होता है। मद्रास के शासकीय हस्तलिखित ग्रन्थागार में कोहल प्रोक्त ग्रन्थ का तेरहवां अध्याय विद्यमान है। इसका नाम है 'कोहलरहस्य' यह ग्रन्थ खण्डित है किन्तु इसमें कोहल का भरतपुत्र के रूप में उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कोहलाचार्य प्रणीत 'कोहलमतम्' नामक अन्य ग्रन्थ भी मिलता है। जो बहुत अल्पमात्रा में है। इसमें पुष्पाज का केवल स्वरूप मात्र बतलाया गया है। एक अन्य ग्रन्थ हैं 'कोहलीयम्' यह ग्रन्थ लन्दन के इण्डिया आफिस संग्रहालय में विद्यमान है। यह ग्रन्थ ताल पत्र पर लिखित है। आचार्य के ये सभी ग्रन्थ अपूर्ण एवं अप्रकाशित है।

नन्दी या नन्दिन

नन्दी या तण्डु जिनका अन्य अभिधान नन्दि के श्वर भी है। भतमुनि को ताण्डव के रूप में नाट्यशास्त्र में उल्लिखित किया गया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने तण्डु शब्द नन्दी या नन्दि के श्वर का ही नाम पर्याय माना है। इससे स्पष्ट होता है कि नन्दी ही तण्ड थे, जिसने भरतमुनि को उस ताण्डव नृत्य का शिक्षण दिया थी जो उन्हे शिव से साक्षात् प्राप्त हुआ था। नन्दी के सुपसिद्ध ग्रन्थ अभिनयदर्पण से इन्हें नाट्यशास्त्र के आचार्य मानने में कोई समस्या नही रह गयी। नन्दिकेश्वर के अन्य ग्रन्थों कें 'नन्दिभरतोक्त संकर हस्ताध्याय' नामक ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में अपूर्ण प्राप्त हो रहा है। भरत की नाट्यशास्त्र की पुष्पिका कें नन्दिभरतप्रणीतं संगीत पुस्तकम्' लिखा मिलता है जो भरत के शिष्य होने या नन्दिमत प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थ में नाट्यशास्त्र को संकेतित करता प्रतीत होता है इस प्रकार ननिदकेश्वर का भी नाट्यशास्त्र के निर्माण में महत्व पूर्व योगदान इससे स्पष्ट है।

तुम्बुरू:

रेचक, करण, अगंहार तथा संगीत के प्रसंग तुम्बरू का नाट्यशास्त्र में उल्लेख मिलता है। नन्दी के समान भरतमुनि के समकालीन आचार्य तुम्बरू को भी सिद्ध किया गया है। तुम्बरू नृत्य-सगीतशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य थे तथा प्रत्येंक संगीत के अवसर पर इनका सहयोग प्राप्त होने का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इसलिए इनका व्यक्तित्व पौराणिकमाना जाता है।

काश्यप

कोहल के समान काश्यय मुनि भी आचार्य भरत के समान माने जाते थें तथा संगीत एवं नाट्यशास्त्र के टीकाकार थे। आचार्य अभिनवगुप्त भी इनको भरतमुनि के समान प्रतिष्ठित आचार्य मानते थे। काश्यय का लम्बा उदाहरण अभिनव भारती में दिया गया है। इससे हमे ज्ञात होता है कि भिन्न कैशिक टक्क, सौवीर तथा मालव कैशिक जैसे रागों का क्या स्वरूप है। इससे यह स्पष्ट हो

जाता है कि इस प्रकार भरतमुनि के समकालीन शास्त्रकारों को रागों का ज्ञान था।

दत्तिल

दत्तिल या दन्तिल भी भरमुनि के समकालीन टीकाकार थे। दत्तिल नाट्य विद्या तथा संगीत विद्या के प्रामाणिक ग्रन्थकार थे। आचार्य अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख संगीत काला प्रतिपादक नाट्यशास्त्र अध्याय 28 की व्याख्या में किया है। भरतमुनि के सौ पुत्रों मे से कोहल के बाद दत्तिल का भी क्रम आता है। नृत्यकला के विषय ' दत्तिलकोहलीयम् ' नामक एक अप्रकाशित पाण्डलिपि तन्जोर ग्रन्थागार में विद्यमान है जिसमे नृत्यकला का विस्तार से वर्णन किया गया है। रसावर्णव सुधाकर आदि ग्रन्थों में दत्तिल का नामोल्लेख मिलता है। म0 म0 रामकृष्ण कणि ने इसके एक अन्य ग्रन्थ गान्धर्व - वेदासार का भी उल्लेख किया गया है । ' दत्तिलम् ' इनका सुपसिद्ध एवं सर्वविदित प्राप्त ग्रन्थ है।

वादरायण तथा शातकर्णी

नाट्यशास्त्र में वादरायण का उल्लेख भरत पुत्र के रूप में किया गया है। नाटकलक्षणरत्नकोष में वादरायण के मतों का तीन स्थ्लों पर उल्लेख होने से ये निश्चित रूप में नाट्यशास्त्र के टीकाकार थे। शतकर्णी का भरतपुत्रों की सूची में शालकर्णी अभिधान भी प्राप्त है। शतकर्णी का उद्धरण मिलता है। नाटक लक्षण रत्नकोष में भी शातकर्णी का मत उद्धृत होने से इनका भी नाट्यविद्या का टीकाकार होने का प्रमाण मिलता है। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में वात्स्य तथा शाण्डिल्य का नाम भरत पुत्र होने के अतिरिक्त नाट्यावतरणाध्याय में कोहल के साथ शेष तन्त्र के व्याख्याता आचार्य के रूप में भी किया गया है। यही सिद्धान्त है।

मातृ गुप्ताचार्य

राजतरडिंणी में प्राप्त विवरण के अनुसार मातृ गुप्त कवि भी थे तथा मर्तृमेण्ठ जैसे कवि के समकाली एवं आश्रयदाता भी थे, जिसने श्री हर्ष विक्रम के द्वारा प्राप्त कास्मीर का पॉच वर्ष तक शासन किया तथा अन्त में विरक्त होकर राज्य को त्याग दिया। अभिनवभारती ने पुष्पनामक प्रभेद के व्याख्यान प्रसगं में मातृगुप्त को वीणावादन के रूप प्रस्तुत किया गया है। शारदातनय ने भाव प्रकाशन तथा सागरनन्दी नाटकलक्षणरत्नकोष में नाट्यस्वरूप तथा नाटयागं आदि के प्रसंगों पर अनेक बार मातृ गुप्ताचार्य के मत को प्रस्तुत किया है इनका सर्वाधिक उदाहरण अभिज्ञानशाकुन्तलम् की राधवभट्ट प्रणीत व्याख्या में प्राप्त होते हैं। जिनके नाट्यशास्त्र पर स्वतन्त्र टीकाकार होने की महत्ता प्रस्तुत किया है । यद्यपि सुन्दर मिश्र ने (स्थिति काल १६ वी शती) अपने 'नाट्यप्रदीप' में मातृ गुप्त को नाट्यशास्त्र के एक टीकाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है। नाट्यशास्त्र के स्वत्रन्त्र लेखक के रूप में इन्होंने भरमुनि के मत को समीक्षा की हे जिससे श्री मिश्र ने इन्हें नाट्यशास्त्र का टीकाकार समझ लिया होगा। मातृ गुप्त उच्चकोटि के कवि भी थे और इसी कारण कुछ आलोचक इन्हें कालिदास से अभिन्न मानते है। जो अब अधिक

कल्पना नहीं मानी जाती । वक्रोक्तिजीवितम् में कुन्तक ने मातृगुप्त के सुकुमारता तथा विचित्रता नामक गुणों का उल्लेख किया है। श्री हर्ष विक्रमादित्य के समकालीन होने के आधार मातृगुप्त का स्थिति काल ईसवी पॉचवी शती माना जाता है। यही सिद्धान्त है।

भट्ट उद्भट्ट

आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र के छः नौ तथा उन्नीसवें अध्याय में आचार्य भट्ट - उद्भट्ट के मतों का उल्लेख किया है। आचार्य गम्म्ट ने भी अपने काव्य प्रकाशन में उद्भट रस सूत्र का व्याख्याता तथा शांडगदेव ने भी इन्हें नाट्यशास्त्र का टीकाकार माना है। भट्टोद्भट के सिद्धान्तों को भट्टलोल्लट द्वारा आलोचना किये जाने के कारण ये भट्टलोल्लट के पूर्ववर्ती नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार है।

भट्टलोल्लट

आचार्य अभिनवगुप्त ने भट्टलोल्लट के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करते हुए उस पर आलोचना की है कि भट्टलोल्लट ने समग्र नाट्यशस्त्र पर अपनी व्याख्या या भाष्य लिखा था। पूर्वमीमांसाशास्त्र के अनुगामी होने से इनकी रस सूत्र पर इसी दर्शन के सिद्धान्तानुरूप व्याख्या भी है। यद्यपि भट्टलोल्लट के रसव्याख्यान की सभी व्याख्याकारों ने चर्चा है परन्तु इनका व्याख्याशास्त्र गाम्भीर्य के उन्नत स्थान रखती थी इस सिद्धान्त को सभी स्वीकार करते थे। काव्यप्रकाश के प्राचीन व्याख्याकार माणिक्यचन्द्र लोल्लट तथा शंकुक की तुलना में लोल्लट भट्ट को रसशास्त्र का मार्मिक पण्डित माना हैं। काव्यप्रकाश आदि अनेक अलकार शास्त्र के ग्रन्थों में भट्टलोल्लट के सिद्धान्त को उल्लेख किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी भट्ट लोल्लट के दो स्थानो पर सिद्धान्त उद्धृत किये है। भट्टलोल्लट अपराजित के पुत्र होने से अपराजित नाम से भी जाने जाते अपराजित के नाम से राजशेखर की काव्यमीमांसा में जो उद्धरण दिये गये है। उन्हीं को हेमचन्द्र ने भट्टलोल्लट के नाम से उद्धृत किया है। भट्टलोल्लट ने न केवल नाट्यशास्त्र पर ही रचना की किन्तु स्पन्दकारिका की भी व्याख्या की थी जिनका नाम वृत्ति था। इस टीका का उल्लेंख आचार्य अभिनवगुप्त के परमशिष्य क्षेमराज ने किया है। अत एव स्पन्दकारिका क लेखक भट्ट कल्लट भट्ट कल्लट भट्टलोल्लट से ज्येष्ठ तेर एवं उन्ही के समकालीन थे। भटट् कल्लट की अपेक्षा श्री शंकुक अवस्था में कम रहने पर भी लोल्लट के समकालीन विद्धान थे। ये सभी काश्मीर के निवासी थे यह भी सम्भावना है कि भट्टकल्लट की तरह भट्टलोल्लट भी बसु गुप्त के शिष्य रहे है।

श्री शंकुक

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अन्य टीकाकार श्री शंकुक थे जो भट्टलोल्लट के कनिष्ठ समकालीन एवं काश्मीर निवासी विद्वान थे शोर्गधर पद्धति वल्लभ देव की सुभाषितावली तथा जल्हण के सूक्ति संग्रहों में श्री शंकुक की अनेक सूक्तियॉ उद्धृत की गयी है। श्री शंकुक मयूर के पुत्र थे वाण के समकालीन मयूर से ये श्री शंकुक के पिता मयूर निश्चित ही भिन्न व्यक्ति होंगे। अभिनव

भारती में अध्याय ३ से २६ अध्याय तक श्री शंकुक की टीका के निरन्तर उद्धरण देकर उन की आलोचनो की गयी है। यह स्पष्ट है कि श्री शंकुक की ने समग्र नाट्यशास्त्र पर व्याख्या लिखी थी। ये रस शास्त्र के व्याख्यान में अनुमितिवादी आचार्य माने जाते है।

भटट नायक

ध्वन्यालोक एवं अभिनवभारती के रचनाकाल के मध्यवर्ती आचार्य के रूप मे भट्टनायक का स्थान है। नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार के रूप में इनका महान प्रसिद्धि है। कुछ विद्वानों ने इनके समग्र नाट्यशास्त्र का व्याख्यान लिखने पर अशंका प्रकट की है। किन्तु इनके सिद्धान्त का अभिनवभारती ने अनेक स्थानों पर उल्लेख न होने से निश्चित नही कहा जा सकता कि नाट्यशास्त्र पर इनका अधूरा व्याख्यान हुआ था। रसशास्त्र के व्याख्यान क्रम ये साधारणीकरण के उद्धावक एवं भुक्तिवाद के प्रवर्तक आचार्य के रूप में विख्यात है। आचार्य अभिनवगुप्त के अतिरिक्त रूय्यक ने अलंकारसर्वस्व की विमार्शिनी टीका में हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन विवके में तथा महिमभट्ट ने व्यक्ति विवके में भट्टनायकके ही दो पद उद्धृत किये है। इनके हृदयदर्पण नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण भी किया था जिसका संकेत महिमभट्ट ने 'अदृष्टदर्पणामानधीः' लिखकर अतिचातुर्यपूर्ण पद्धति से किया है। महिमभट्ट के टीकाकार राजानक रूप्यक ने भट्टनायक का उल्लेख करते हुए उनकी रचना हृदयदर्पण बतलायी है। साधारणी करण के उद्धावक भट्टनायक ही है। अत एव भट्टनायक का स्थिति काल अभिनवगुप्त से कुछ ही वर्ष पूर्व माना जाता है। ये काश्मीर के शासक अवन्ति वर्मा तथा शंकरवर्मा के समकालीन थे इसी कारण इनका समय ८८0 - ९00 ई के मध्यमाना जाता है।

भट्ट यन्त्र

अभिनवभारती में आचार्य भट्ट यन्त्र के सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है। ये भट्टयन्त्र भी कदाचित नाट्यशास्त्र के टीकाकार थे। इसके अतिरिक्त इनका अन्यत्र कहीं भी और अधिक परिचय नही मिलता है।

आचार्य कीर्तिधर

अभिनवभारती में अभिनवगुप्त ने केवल एक बार आचार्य कीर्तिधर के सिद्धान्त का उल्लेख किया है। इन्हें नाट्यशास्त्र का प्राचीन टीकाकार माना जाता है इससे कीर्तिधर नाट्यशास्त्र के प्राचीन तथा प्रतिष्ठित टीकाकार प्रसिद्ध होते है। सम्भवतः ये उद्भट के समसामयिक या उससे अधिक प्राचीन माना जाता है। भट्टोदभट्ट से प्राचीन मानने पर इनका स्थिति काल सातवीं शती माना जाना उचित है।

नान्यदेव

अभिनवगुप्त ने नान्यदेव के भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र से भी कुछ उद्धरण दिये हैं। इस समय नान्यदेव का नाट्यशास्त्र का भाष्य उपलब्ध है इसका तत्पर्य यह हुआ नान्यदेव ने नाट्यशास्त्र का टीकाकार है। नान्यदेव ने अपने सिद्धान्त में भवभूति के मालतीमाधव प्रकरण पर एक पाण्डित्यपूर्ण

व्याख्या लिखी थी जिसमें अपने भरतमुनि विरचित भरतभाष्य को भी उदधृत किया है। आचार्य कान्तिचन्द्र पाण्डेय के अनुसार भी नान्यदेव अभिनवगुप्त से दो पीढ़ी पुराने है। अतः इनका स्थिति काल नवीं शती का उत्तरा है।

भट्ट तोत

अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती तथा ध्वन्यालोक की लोचना व्याख्या में भट्टतरेत कर उल्लेख अपने गुरू के रूप में किया है। तथा नाट्यशास्त्र पर गम्भीर उनकी मान्यताओं का प्रदर्शन किया है। नाट्यशास्त्र के तत्कालीन महान विद्वान तथा व्याख्याता थे तथा नाट्यशास्त्र की पाठभेद परम्पराओं की एक महत्वपूर्ण शाखा के समर्थक थें । यह शाखा भी शान्तरस के विवरण को मूलपाठ की मान्यता देना, रस की अनुकरणशीलता का विरोध तथा काव्य एवं नाट्य में रस प्रतिपादन जिसका अभिनवभारती में अनुकरण किया गया है। इन्होंने 'काव्यकौतुक' नामक ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना भी की थी जिस पर अभिनवगुप्त पाद ने विवरण लिखा था। अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती के काव्य कौतुक की कुछ पंक्तियाँ भी उल्लेख किया है इस समय काव्य कौतुक तथा उस पर अभिनवगुप्त रचित विवरण प्राप्त नहीं है। काव्याकौतुक से उद्धृत किये है। इससे यह प्रमाण होता है कि काव्यकौतुक ग्रन्थ विद्वानों का आदर प्राप्त कर चुका था। भट्टलोल्लट का स्थिति काल दशवीं शती का पूर्वार्द्ध था क्योंकि अभिनवगुप्त का स्थिति काल दशवीं शती के उत्तरार्द्ध से ग्यारहवीं शती का प्रारम्भ-काल माना जाता है।

इसके अतिरिक्त अभिनव ने भट्टगोपाल, भागुरि, प्रियातिथि भट्टवृद्धि, रूद्रक, भट्टसुमनस्, भट्टशंकर जैसे आचार्यों का यत्र तत्र व्याख्यान व्याख्यान - प्रसंग में नामोल्लेख किया है किन्तु इसमें कितने नाट्यशास्त्र के विवेचक टीकाकार थे यह ज्ञात नहीं है। ये अभिनवगुप्त से प्राचीन या समकालीन थे इसके विषय में कोई बाते जानकारी में नहीं आई है।

आचार्य अभिनव गुप्त पाद

आचार्य अभिनवगुप्त काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के महान टीकाकार थे इसके अतिरिक्त दर्शन तथा तन्त्रादि शास्त्रों के भी महान शास्त्रकार थे। ये महान ज्ञानी तथा मध्यकालीन भारत की प्रतिभा मण्डित विद्वत श्रृंखला में मध्यमणि की तरह विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अभिनवगुप्त ने विस्तार से अपना परिचय प्रस्तुत किया है। यद्यपि अभिनवगुप्त काश्मीर के निवासी थे किन्तु उनके पूर्वज अत्रिगुप्त कन्नौज से आकर, काश्मीर में वस गये थे। क्योंकि इन्हें कन्नौज से काश्मीर के तत्कालीन शासक यशोवर्मा ने ससम्मान से आमन्त्रित किया था। उन्होंने अत्रिगुप्त को विस्तता के किनारे एक सुन्दर भवन था जिसको एक जागीर ने देकर बसाया था। इनके वंश में आगे चलकर वराह गुप्त हुए जो अभिनव गुप्त के पितामह थे। वराह गुप्त के पुत्र नरसिंह गुप्त हुए जिसका दूसरा नाम चुखुलक था। इनके चाचा का नाम वामन गुप्त था। वामन गुप्त एक महान कवि थे जिनका पद्य अभिनवगुप्त ने एक प्रसंग मे उल्लेख भी किया है। नरसिंह गुप्त के पुत्र अभिनव गुप्त थे। इनकी माता

का नाम विमल कला था। इनका वंश शिवभक्ति में लीन रहता था। अभिनव गुप्त एक योगिनी भूः सन्तति होने से उन्हें आगम तथा त्रिकशास्त्र के संग्रह एवं रचना का पूर्ण रचना का पूर्ण सामर्थ्य होता था। उनकी माता का वाल्यकाल में ही स्वर्गारोहण हो गया था। माता का स्वर्गारोहण हो जाने पर इनके पिता को बहुत कष्ट हुआ तथा इसी कारण उन्होने संसार की अनित्यता तथा वैराग्य से अभिभूत होकर गृह को त्याग दिये। अभिनव गुप्त जबतक मात पिता के संरक्षण में रहे तब तक उनका जीवन सुखमय व्यतीत हुआ पर जब पिता भी उन्हे छोड़कर चले गये तो उन्हें अपनी जीवन धारा का परिवर्तन करना आवष्यक हेा गया।

अभिनवगुप्त गुप्तपाद की विधाध्ययन में प्रबल रूची थी। तथा वे प्रत्येक विषय को जिम्मेदारी से पढ़ने के लिए प्रत्येक विषय के योग्य एवं विद्वान गुरू से अध्ययन करते थे। अभिनवगुप्त के पिता सिह गुप्त व्याकरणशास्त्र के प्रमुख विद्वान थे उनसे व्याकरण का सम्यग रूप से अध्ययन किया। आचार्य वोमनात्थ से द्वेताद्वैत तन्त्र, भूतिराजतनय से शैव सम्प्रदाय की दीक्षा, लक्ष्मण गुप्त से प्रत्यभिज्ञा, भूतिराज से ब्रहमविद्या तथा भट्टतोत से नाट्यशास्त्र का सम्यग रूप से अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने लगभग 13 गुरूओं से किसी न किसी विषय का अध्ययन किया था। संसार से विरक्त होने के कारण केवल अध्ययन ग्रन्थ निर्माण तथा शिवभक्ति ही उनका मुख्य कार्य रह गये थे। इनका शिवभक्ति तथा उपासना से जो समय बचता था वह इन्ही दो कार्यो में लगता था ये किसी विषय के उद्वभट्ट विद्वान् का पता लगते ही उसके पास अध्ययन के लिए चले जाते थे। इस प्रकार काश्मीर तथा उसके बाहर जो विशिष्ट विधाएँ उन्होंने ग्रहण की उनके द्वारा विशाल ग्रन्थ राशि का निर्माण किया। इनकी सब मिलाकर 41 कृतियां ज्ञात है। इन कृतियों के नाम हैः-

1. बोधपंचदशिका
2. परात्रिशिका विवरण
3. मालिनी विजय वार्तिक
4. तन्त्रालोक
5. तन्त्रसार
6. तन्त्रवटधानिका (ये सभी ग्रंथ काश्मीर के शैव दर्शन तथा शैव तन्त्र के है।)
7. अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र व्याख्या)
8. ध्वन्यालोक लोचन (ध्वन्यालोक व्याख्या) ये दोनों ग्रन्थ अलंकार शास्त्र तथा नाट्यशास्त्र पर व्याख्यान हैं।
9. भगवतगीतार्थ संग्रह
10. परमार्थसार
11. ईष्वर प्रत्यभिज्ञा
12. विवृत्ति विमर्षिणी

13. क्रमस्तोत्र
14. भैरवस्तोत्र
15. देहस्थ देवताचक्रस्तोत्र
16. अनुभवविवेचन
17. अनुत्तराष्टिका
18. परार्थद्वाषिका
19. परमार्थचर्चा
20. महोपदेषविंषतिकम्। तेरह से बीस तक की रचनायें स्तोत्रात्मक तथा छोटी-छोटी है।
21. तन्त्रोच्चय
22. घटकर्पर कुलक विवृति
23. क्रमकेली
24. शिवदृष्टयालोचन
25. पूर्वपच्चिका
26. पदार्थ प्रवेष निर्णय टीका
27. प्रकीर्णकविवरण
28. प्रकरणस्तोत्र
29. काव्यकातुक विवरण
    (भट्टतोत कृत काव्य कौतुक नामक अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ की व्याख्या)
30. कथा मुख तिलक
31. लध्वी प्रक्रिया
32. भेद विवरण
33. देवीस्तोत्र विवरण
34. तत्वाध्व प्रकाषिका
35. शिव भक्त्य विनाभावस्तोत्र

(इनमें से 23 से 35 तक के ग्रन्थ भी इस समय उपलब्ध नही होते है।) इसके अतिरिक्त इनके नाम से कुछ सूची पत्रों में अन्य कुछ ग्रंथ का विवरण भी मिलते है।

1. बिम्बप्रति बिम्बवाद
2. अनुत्तर विमर्षिणी वृत्ति
3. नाट्यलोचन
4. परमार्थ संग्रह
5. अनुत्तरशतक

इन ग्रन्थां को विषय विभाजन की दृष्टि से

1. साहित्यशस्त्रीय
2. दार्शनिक
3. तान्त्रिक तथा प्रकिर्ण विभागों में बाँटा जा सकता है। इनकी रचनाओं का सबसे बड़ा भाग तान्त्रिक ग्रंथो का है। दार्शनिक ग्रन्थों में प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर तथा गीता पर लिखित व्याख्यान आदि ग्रन्थ आते है । साहित्यिक ग्रंथों अभिनव-भारती, ध्वन्यालोक लोचन नामक दो शस्त्रीय विवेचन के टीका ग्रंथ घटकर्पर विवरण काव्य व्याख्या तथा एक अप्राप्य ग्रंथ काव्य कौतुक का विवरण । प्रर्कीण ग्रन्थों में इनके शेष स्तोत्र आदि सभी ग्रन्थों में इनके शेष स्तोत्र आदि सभी ग्रन्थों को लिखा जा सकता है । इनके साहित्यशास्त्र के प्राप्य दो ग्रंथ है- एक ध्वन्यालोक लोचन तथा दूसरा अभिनवभारती। यद्यपि ये क्रमश: आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक तथा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की टीकाएँ है किन्तु इन्हें विद्वानों ने सम्यग रूप से स्वीकार नही किया है । अपने विषयगत मौलिकतापूर्ण विवेचन के आधार पर अभिनवगुप्त द्वारा निश्चित सिद्धान्तों को उन विषयों पर अन्तिम माना जाता था, इसी कारण अंलकारशास्त्र के उत्तर कालिन संमग्र प्रतिभाशाली ग्रंथकार एवं विवेचक किसी न किसी रूप में अभिनव गुप्त की आधर्मकर्णता को स्वीकारते ही है । इस प्रकार जो संस्कृत साहित्य की जो सेवा इनके द्वारा की गयी उसके लिए समस्त भारत इनके प्रति कृतज्ञ है । तथा भारत में आद्यशंकराचार्य से कम नही है।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि नाट्यशास्त्र के प्रमुख टीकाकार कौन-कौन से है ? इसके बारे मे आप सम्यग रूप से अध्ययन करेंगे एवं उनके सिद्धान्तों का भी सम्यग रूप से अध्ययन करेंगे। इस इकाई में नाट्यशास्त्र के प्रमुख ¬१६ टीकाकार माने गये हैं। उन टीकाकारों में सबसे अन्त में आचार्य अभिनवगुप्त पाद का नाम आता है। जिसकी तुलना आद्यशंकराचार्य से की गयी है। ये सभी टीकाकारों में यशस्वी एवं महान माने गये है। एवं उनका सिद्धान्त पक्ष भी प्रबल रहा।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सम्बद्ध	मिला हुआ
अधिकृत	नियुक्त किया हुआ
खण्डित	टुकड़ा

अल्पमात्र	थोड़े से मात्र में
कोहलीयम्	कोहल का यह
प्रोक्त	कहा हुआ
पौराणिक	पुराण में होने वाला
पर्याय	दूसरा नहीं
प्रतिष्ठित	सम्मानित
समकालीन	समान काल वाले
उद्भावक	पैदा करने वाला
अतिचातुर्य	अत्यन्त बुद्धिमान
हृदयदर्पण	हृदय का दर्पण (शीशा)
विवेचक	व्याख्या करने वाले
मध्य	बीच
प्रतिया	ज्ञान
मण्डित	विस्तार
आमन्त्रित	बुलाया गया है
स्वर्गारोहण	स्वर्ग चले जाने पर
गृह	घर
संरक्षण	अच्छी तरह से रक्षा करने वाला
उद्भट्ट	महान विद्वान
विंशतिकम्	बीस
मार्मिक	महान

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. भरतमुनि के कितने पुत्र थे ?
2. भरतमुनि के पुत्रों में सर्व प्रथम किसका नाम आता है ?
3. कोहलीयम यह ग्रन्थ इस समय किस संग्रहालय में विद्यमान हैं?
4. नन्दी कौन थे ?
5. कास्यप किसके समान माने जाते थे ?
6. राजतंगिणी के प्राप्त विवरण के अनुसार मातृगुप्त क्या थे?
7. अभिनव गुप्त ने भट्टतोत का उल्लेख किस रूप में किया है?
8. अभिनव गुप्त कहां के निवासी थे?
9. अभिनव गुप्त के माता का नाम क्या था?
10. अभिनव गुप्त के पितामह कौन थे?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नाटयशास्त्र के कितने प्रमुख टीकाकार है -

(क) १0 (ख) १२

(ग) २0 (घ) १६

2. अभिनव गुप्त के कितने गुरू थे?

(क) तीन (ख) चार

(ग) तेरह (घ) दो

3. मुख्य रूप से नाट्यशास्त्र को किस शास्त्र में रखा गया है -

(क) साहित्य (ख) दर्शन

(ग) वेद (घ) व्याकरण

4. अभिनव गुप्त मुख्य रूप से कितने ग्रन्थों के कर्ता थे

(क) 20 (ख) 41

(ग) 22 (घ) 40

5. अभिनव गुप्त के पिता का नाम था

(क) विश्वनाथ (ख) नर सिंह गुप्त

(ग) मम्मट (घ) जगन्नाथ

2. 6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न के उत्तर

1. सौ पुत्र
2. कोहल का
3. लन्दन
4. तण्डु
5. भरत के समान
6. कवि थे
7. अपने गुरू के रूप में
8. काश्मीर
9. विमल कला
10. वाराह गुप्त

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (ख)
6. (घ)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पारसनाथद्विवेदी , भरतमुनि, सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

2 बलदेव उपाध्याय,बलदेव उपाध्याय,संस्कृत सा. इतिहास चौखम्भासुरभारती प्रकाशन वाराणसी

3 सत्यव्रत सिंह, विश्वनाथ साहित्यदर्पण, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1 पारसनाथद्विदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सां वि.वि वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिनवगुप्त पाद का परिचय एवं उसका ग्रन्थ के विषय में समझाइयें

इकाई 3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य
3.3.1 नाट्यशास्त्र का पृथ्वी पर अवतरण
3.3.2 नाट्यमण्डप
3.3.3 विकृष्ट नाटयगृह
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व के इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि नाट्यशास्त्र का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हआ। इसमें मनुष्य के जीवन के कला के विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश प्रस्तुत करने वाले नाट्यशास्त्र में क्या योगदान दिया। नाट्यशास्त्र के महत्त्व को जानते हुए इस इकाई में आप जानेंगे कि मुनष्य के सामाजिक जीवन में नाट्यकला की अत्यन्त आवश्यकता होती है। नाट्यशास्त्र सदा शिव ब्रह्मा तथा भरत मुनि के विवेचक शास्त्र तो है ही एवं मनुष्य के कला के विषय में भी समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप प्रतिपाद्य विषय के माध्यम से नाट्य के महत्व को भी बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के प्रश्चात आप-

- भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र के महत्त्वको समझाते हुऐ उनकी प्रतिपाद्य विषय के बारे में भी बता सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के विषयावतरण के बारे में समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में ऋषिगणों ने पाँच प्रश्न किये इसके विषय में समझ सकेंगे।
- भरतमुनि द्वारा प्रदत्त पाँच प्रश्नों के उत्तर के विषय में भी समझ सकेंगें
- नाट्यशास्त्र का पृथ्वी अवरण किस प्रकार हुआ इसके विषय में भी समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र का निर्माण किस प्रकार होता है इसके विषय में समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में स्तम्मारोपण का विधान किया है इसके विषय में भी समझ सकेंगे।

3.3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य

विषयावरण-

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में प्रारम्भ में भरतमुनि ने ब्रह्मा तथा शिव की स्तुति करते हुए उन्हें क्रमशः नाट्य तथा नृत्य का प्रथम उपदेष्टा माना गया है। ब्रह्मा ने ही वेदों तथा इसकी विधि शाखाओं से नाट्यविधायक तत्त्वों को ग्रहण किया था। ब्रह्मा जी ने तत्त्वों को ग्रहण कर नाट्यशास्त्र की चारों वेदों की गतिमा से मण्डित करते हुए ऐसा नाट्य वेद या पंचम वेद निर्माण किया जो सभी वर्णों के लिए समान रूप से अध्ययन करने योग्य था। अभिनव गुप्त पाद ने नाट्यशास्त्र शब्द की

व्याख्या अभिनव गुपत पाद ने नाट्यशास्त्र शब्द की व्याख्या अभिनव भारती में की है तथा नाट्यवेद और नाट्य शास्त्र दोनों को समानर्थक माना हे। इसके साथ ही अभिनव गुप्त ने ब्रह्मा के द्वारा दिया हुआ ज्ञान का प्रतिपादक स्रौत मात्र मानकर नाट्यशास्त्र का कर्ता भरत को हीत माना है। इसके साथ ही यह भी कि यह नाट्यशास्त्र सदा शिव ब्रह्मा तथा भरत मुनि के मतों का विवेचन शास्त्रमात्र नहीं है, इस तथ्य को भी उन्होंने दिखलाया है।

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय-

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य तथा उसके प्रयोगादि विषय को ध्यान में रखकर प्रारम्भ में ही ऋषिगण उनसे पाँच प्रश्न किया- प्रथम प्रश्न नाट्यशास्त्र की रचना क्यों की गयी या यह क्यों उत्पन्न हुआ है? - इसका आश्य यह है कि जब मानव जीवन के लिए निर्धारित पुरूषार्थों एवं इति कर्तव्यता का वेद से ही ज्ञान हो जाता है । तो फिर इस नवीन श्रम का कर्य किया जाए। इसी प्रश्न का अगला भाग है कि यह किसके लिए बनाया गया है। यह प्रश्न है- जिसका आश्य है कि इस नाट्यवेद के अधिकारी कौन है? जो वेद द्वारा उपदेष्ट होने से बच गये हैं? इसी सन्दर्भ में उनका दूसरा प्रश्न है- इस नाट्यवेद के कितने विभाग हैं? क्या इसके इतने विभाग हैं कि इसे सर्वांगीण्य रूप से पृथक से समझना आवश्यक होगा।

तीसरा प्रश्न- इस नाट्यवेद के कितने अंग् है? अर्थात क्या नाट्य विविध अगों का सजीव शरीर के अंग जैसा कोई पारस्परिक सम्बन्ध भी है।

चौथा प्रश्न- नाटक के अंग को समझने लिए आवश्यक प्रयोग कौन है? यदि ये अंग परस्पर सम्बद्ध होत तो इन अंगों को किसी विशेष प्रमाण से जानना आवश्यक है। यदि ऐसा हो तो वह विशेष प्रमाण कौन सा हुआ हैं

पाँचवा प्रश्न है- नाटक के अंगों का प्रदर्शन करते हुए इस नाट्य का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए? उपर्युक्त प्रश्नों तथा इनसे सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तर ही भरतमुनि का विरचित नाट्यशास्त्र है। इस प्रसंग में ये ऊपर जो पाँच प्रश्न किये गये हैं उन प्रश्नों का उत्तर क्रमशः दिया जा रहा है।

प्रथम प्रश्न काउत्तर- प्रथम प्रश्न के उत्तर में भरत मुनि ने देवों की प्रार्थना पर ब्रह्मा द्वारा सृष्ट सर्ववर्णिक पंचमवेद के रूप में सम्मानित नाट्यवेद की रचना की सम्पूर्ण कथा को कहते हुए उन परिस्थितियों का प्रदर्शन किया जिससे यह न केवल देवगाणों लिए दृश्य काव्य या श्रव्य काव्य प्रयोजन को बतलाने वाला एक क्रिऽनीयक बने अपितु उन लोगों के लिए भी वह एक आदर्श एवं अनुकरणीय मार्ग का प्रदाता हो जिनके लिए वेद को पढ़ना निषिद्ध बतलाया गया है।

दूसरे प्रश्न काउत्तर- दूसरे प्रश्न का उत्तर में भरतमुनि ने नाट्यवेद के विभागों को प्रदर्शन करते हुए इसके वाचिकाभिनय संगीत, अभिनय तथा रस के विभाग को बतलाया है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर- तीसरे प्रश्न के उत्तर में भतरमुनि ने बतलाया कि नाट्यवेद में कहे हुए सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए नाटक मुख्य रूप से रस को प्रकट करता है, और अन्य कलाएँ इस रस को प्रभावशाली बनाने में वैसा ही सम्बन्ध होगा जिस प्रकार शरीर का अंगों के साथ रहता है। ये अंग परस्पर सम्बद्ध होकर नाट्यशास्त्र की पूर्णता को प्रदान करता है।

चौथा प्रश्न का उत्तर- इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नाटक के विभिन्न भागों का ज्ञान आँख, कान जैसी दोनों इन्द्रियों की सहायता से होने के कारण इसका प्रमाण प्रत्यक्ष स्वीकृत।

पाँचवे प्रश्न काउत्तर- पाँचवें प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण नाट्यवेद है। भरत मुनि द्वारा कथित इन पाँच प्रश्नों के परिवेश में नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति के विषय में उपलब्ध के विषय में पुराण शैली में प्राचीन कथा भी प्रस्तुत किया। नाट्यशास्त्र में उललब्ध यह इतिहास विश्व में प्राप्य नाटकसाहित्य के उद्भव का सर्वाधिक महत्त्व शाली प्राचीन विवरण है। यह इस प्रकार है-त्रेता युग के प्रारम्भ में इन्द्रादि देव गणों ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना किया। ब्रह्मा जी इन्द्रादि देवगणों से प्रशन्न होकर ऋग्वेद से पाठय, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनव, तथा अथर्ववेद से रस को ग्रहण करके नाट्यवेद की सृष्टि की यह सभी वर्णों के लिए पढ़ने लायक था। इसकी रचनाकर ब्रह्मा ने दवेगणों के अनुरोध पर इस वेद की शिक्षा ऋषियों को देने का निश्चय कर इस नाट्यवेद की शिक्षा भरतमुनि को दी तथा उनको अपने सों पुत्रों से सहयोग लेकर इसके प्रस्तुत करने का आदेश दिया। जब भतरमुनि ने अपने सौ पुत्रों को शिक्षा देकर ब्रह्मा जी ने इसमें कैशिकी वृत्ति की योजना का परामर्श दिया और और इस प्रयोग के लिए भतर मुनि द्वारा इष्ट स्त्री पात्रों की ब्रह्मा जी ने उप्सराओं को उत्पन्न कर पूर्ति भी की। तब भरतमुनि ने इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर अपना यह प्रयोग प्रस्तुत किया जिसमें देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय का अभिनय किया गया था। इसको देखकर दैत्यगण रूष्ट हो गये और अभिनय में विघ्न उत्पन्न करने लगे। जब किसी भी प्रकार से शान्त नहीं हुए तो नाट्य प्रयोग के रक्षा करने के लिए नाट्य गृह की आवश्यकता का अनुभव किया गया और तब विश्वकर्मा जी के द्वारा इस के लिए नाट्य गृह का निर्माण किया गया और विधिवत रंगपूजा के साथ रंग के रक्षक देवगणों को भी प्रेक्षागृह में नियुक्ति की गयी।

इस प्रेक्षागृह में भरत ने पितामह ब्रह्मा द्वारा निर्मित 'अमृतमन्थन' समवकार को प्रस्तुत किया गया। इस प्रयोग में सभी देव एवं दैत्यगणों ने दर्शक के रूप में उपस्थित होकर अपने अपने कर्म तथा भावों को प्रस्तुत होते हुए देखकर प्रशन्नता व्यक्त की। तब फिर पितामह ब्रह्मा ने भगवान शिव को इसी प्रयोग को बतलाने के लिए भरतमुनि को निर्देश दिया। उनके आदेशानुसार भरतमुनि ने

हिमालय पर्वत के एक रमरणीय शिखर पर पूर्वरंग विधानपूर्वक अमृतमन्थन समवकार तथा त्रिपुरादाह नामक डिम रूपकों को प्रस्तुत कया जिन्हें देखकर प्रशन्न भगवान शंकर ने भरतमुनि को पूर्वरंग विधि में ताण्डव के संयुक्त करने लिए तथा उसे तण्ड द्वारा प्राप्त करने का आदेश दिया। भगवान शंकर के आदेश को भरतमुनि ने सहर्ष स्वीकार किया और तण्ड से ताण्डव का शिक्षा प्राप्त करके उस ताण्डव को पूर्वरंग में समावेश किया जिसमें माता पार्वती द्वारा सुकुमार श्रृंगारिकलास्य को भी योगदान था। इस नाटयवेद के प्रभाव हेतु इस नाट्यवेद के प्रभाव से चार नाट्य वृत्तियों को अविष्कृत कर उन्हें भी नाट्यवेद में श्री विष्णु ने प्रविष्ट करवाया। इस प्रकार निर्मित इस दिव्य नाट्यवेद को अवररूप में पृथ्वी पर स्थानान्तरित करने का कार्य भी श्री भरतमुनि ने किया जिसकी कथा नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय में दी गयी है।

3.3.1 नाट्यशास्त्र का पृथ्वी अवतरण-

इस प्रसंग में नाट्यशास्त्र में दो कथाएँ हैं। प्रथम कथा के अनुसार भरत पुत्रों को अपनी कला के ज्ञान पर अभिमान हो गया था। जिससे एकवार उन्होंने एक नाट्य प्रदर्शन में मुनियों के चरित्र पर अक्षेप पूर्ण व्यग्य प्रस्तुत कर दिया। इसे देखकर मुनियों ने क्रोध में होकर भरतमुनि के पुत्रों को शाप दे दिया कि ऐसे नाट्यशास्त्र का नाश हो जाए तथा भरतमुनि के पुत्र भी शूद्र हो जाए। यह सुनकर देवताओं को नाट्यशास्त्र के नाश की चिन्ता हुई। और उन्होंने मुनियों से जाकर शाप को क्षमा करने का अनुरोध किया। मुनियों ने अपने दिये हुए शाप को पूर्ण रूप से अन्यथा न होने की बात कहते हुए उसमें संशोधन किया कि नाट्यविधा नष्ट नहीं होगी किन्तु भरतमुनि के पुत्रों को शुद्र अवश्य होना पड़ेगा।

इस शाप के चरितार्थ होने के प्रसंग में नाट्यशास्त्र में दूसरी कथा और दी गयी है। इसके अनुसार जब इन्द्र का पद नहुष को मिला तो स्वर्ग में उन्होंने अप्सराओं से अमिनीत नाट्य प्रयोग को देखकर भूलोक में अपने घर भी वही नाट्य प्रयोग प्रस्तुत करने का देवताओं से अनुरोध किया। देवताओं ने नहुष को समझाया की यद्यपि अप्सराओं के द्वारा भूतल पर नाट्य सम्भव नहीं है किन्तु यह कार्यालाप भरतमुनि के पुत्रों को पृथ्वी पर ले जाकर अवश्य सम्पन्न करवा सकते हैं। नहुष ने भरतमुनि के पुत्रों को पृथ्वी पर नाट्य प्रस्तुत करने की प्रार्थना की जिसको स्वीकार कर भरतमुनि ने अपने पुत्रों को पृथ्वी पर जकार नाट्य प्रयोग करने का आदेश देकर समझाया कि इस प्रकार वहाँ जाने से ऋषि प्रस्त शाप का भी अन्त हो जायेगा। तब भरतमुनि पुत्रों ने स्वर्ग से जाकर नहुष के अन्तः पुर में नाट्य प्रयोग प्रस्तुत किये तथा कुछ दिन भूतल पर गृहस्थ भाव में समय व्यतीत कर शाप के अन्त हो जाने पर पुनः स्वर्ग लौटे आये। किन्तु वे अपनी सन्तती को इस नाट्य के प्रयोग आदि को शिक्षा दे गये जिससे पृथ्वी पर नाट्यशास्त्र का प्रचार प्रसार हो गया।

3.3.2 नाट्यशास्त्र

नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में नाट्य की प्राथमिक आवश्यकता के कारण नाट्य गृह की निर्माण-विधि विस्तार से दिखलायी गयी है। विश्वकर्मा ने नाट्यमण्डप के तीन प्रकार के सन्निवेशों तथा उनका विधान बतलाया इनमें विकृत नाट्य गृह आयताकार चतुरस्र नाट्य गृह वर्गाकार तथा त्यस्र नाट्य गृह त्रिभुजाकार होता है। विकृष्ट को कुछ लोग मण्डलाकार मानते हैं किन्तु यह विवरण नाट्यशास्त्र के अनुसार न रहने से मान्य नहीं होता है। इनमें प्रमाण की दृष्टि से फिर नाट्यमण्डप के और भी भेद किये गये हैं जो ज्येष्ठ, माध्यम और कनीयस रूप में बनते हैं। ज्येष्ठ या विकृष्ठ मण्डप देवों के लिए मध्यम या चतुरस्र मनुष्यों के लिए उपयोगी होता है। ज्येष्ठ नाट्य मण्डप के विशाल रहने से पात्रों के द्वारा उच्चारिह पाठयांश दर्शकों को श्राव्य नहीं होता है। और नहीं उनकी भावपूर्ण शरीराभिनय की मुद्राएँ दृश्य हो पाती है। अतएव मध्यम नाट्य गृह ही अधिक उपयोगी होता है। इसी प्रकार अवर या त्यस्र नाटय गृह सामान्य जनता के लिए उपयोगी होता है। विकृष्ट नाटय गृह का प्रमाण 908 हाथ या दण्ड का होता है, चतुरस्र का प्रामण 64 हाथ या दण्ड का तथा त्यस्र का प्रमाण 32 हाथ या दण्ड होता है।

3.3.3 विकृष्ट नाट्य गृह-

सभी प्रकार के नाट्य गृहों के निर्माण के पूर्व उचित भूमि का चयन करना चाहिए। इसके उपरान्त भूमी का शोधन स्वस्थ वैलों द्वारा हल चलाकर करते हुए अस्थि, कील आदि अशुद्ध पदार्थों को भूमि से निकाल देना चाहिए। इसके बाद उजले दृढ़ सूत्र से भूमि का माप करना चाहिए तथा इस समय पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए, जिससे न तो हाथ में छूटने पाये और नहीं टूटने पावे अन्यथा किसी अमंगल के होने की अशंका रहती है। मध्यम विकृष्ट मण्डप की विधि यह है कि चौसठ हाथ लम्बी तथा बत्तीस चौडी़ लम्बाई का क्षेत्र लेकर फिर डोरी से उसको दो भाग कर दें। इन दो भागों को फिर और दो भागों में बाँटें जिससे से एक भाग पर रंगपीठे तथा रंगशीर्ष तथा दूसरे भाग पर नेपथ्य गृह की रचना करें।

निवेशन

इस प्रकार हो जाने पर इसके निवेश या नींव रखने की विधि सम्पन्न करना चाहिए तथा समय उत्सव मनाते हुए मंगल वाधों का निर्घोष करनया चाहिए क्योंकि ध्वनियों से आकाश परिष्कृत एवं विशुद्ध हो जाता है। और अनिष्ट की अशंका निर्मूल हो जाती है। इस समय हा पाखंडी, सन्यासी तथा विकलांग को नहीं आने देना चाहिए तथा रात्रि में दिशाओं में बलि दी जाये तो उनके अनेक देवता के मन्त्र तथा बलि पदार्थ के अनुरूप विधिवत् सम्पन्न की जाती हे। इस प्रकार बड़े मनोयोग से नींव रखने या शिलान्यास का कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

स्तम्भारोण

नींव की स्थापना के बाद मण्डप निर्माण कार्य का प्रारम्भ करना चाहिए तथा दीवारों को उठाते समय स्तम्भारोपण करना चाहिए। यह कार्य भी उत्सव मनाते समय शुभ मुहूर्त में पुजा पाठ के साथ करना चाहिए। इनका विवरण नाट्यशास्त्र 2/ 93 से 99 तक में विस्तार से दिया गया हैं।

मत्तवारणी

स्ताम्भारोपण के बाद मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए। रंगपीठ के दोनों बाजू में इसका निर्माण किया जाता है। इसकी ऊँचाई रंग पीठ से ऊँची और डेढ़ हाथ की रखनी चाहिए। मत्तवारणी वरामदे की आकार की होती है (इनका विशेष विवरण ना0 शा0 अ0 2/36 में देखना चाहिए)

रंगपीठ-

इसके बाद रंगपीठ की रचना करना चाहिए तथा रंगपीठ केपिछले भाग में नेपथ्य का निर्माण करना चाहिए जो रंगपीठ से अपेक्षाकृत ऊँचा रहे, इससे होकर नेपथ्य गृह में जाने के लिए दो द्वार रखे जाए जिनसे पात्र प्रवेश और निष्क्रमण करें। (इसका विस्तार से ना0शा0 पृ सं0 464 पर दिया गया है।)

दारूकर्म

नाट्य गृह की रचना में लकडी की कारीगरी भी अच्छी प्रकार से करनी चाहिए। इसे दारू कर्म कहते हैं। इसके अनुसार सभी स्तम्भ द्वार और वातायन विविध विकल्पों से पूर्ण होनी चाहिए इसमें स्थान पर चौंके बने हुए रहने चाहिए। (इसका विवरण विस्तार में ना0शा0अ0 2/63 से 66 में दिया गया है)

मण्डप

यह नाट्य मण्डप द्विभूमि बनाया जाता है। इस मण्डप में छोटे वातायन या खिडिकियाँ रखनी चाहिए जिससे वायु का प्रवेश कम हो और शब्द गम्भिर रूप से सुनाई दे तथा वाद्य संगीत के सूक्ष्म वादनादि क्रिया कलापों को आसानी से सुना जा सके। (इनका विवरण विस्तार से ना0शा0 अ0 2/ 85 86 में दिया गया है)

चतुरस्रनाट्यमण्डप

चतुरस्र नाट्य मण्डप को लम्बाई और चौडाई (32=32) 32-32 हाथ की रहने से यह वर्गाकार नाट्यमण्डप कहलाता है। इसके निर्माण में वहीं सब कार्य होते है जो विकृष्ट के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में पूर्व में बतलाये गये हैं। इसकी दीवारें इटों से निर्माण की जाय इसमें दशस्तम्भ रखना चाहिए। विकृष्ट की अपेक्षा छोटा मण्डप होने से इसमें प्रेक्षकों के बैठने के लिए सीढी़नुमा बैठक का निर्माण किया जाए जिसे लकडी़ और ईट का बनाया जाय। ये सीड़ियाँ धरातल से एक हाथ उपर उठते हुए इतनी ऊँचाई तक चली जाँय जहाँ से रंगपीठ (सीधा) दिखलाई दे सकता हो।

त्यस्रनाट्यमण्डप

त्यस्र संजक नाट्यमण्डप का आधार त्रिभुज जैसा रखा जाता है तथा इसके मध्य भाग में जिस रंगपीठ की रचना होती है वह भी त्रिभुत ही रहता है। इसका एक द्वार कोने में निकला हुआ रखा जाता है और दूसरा द्वार रंगपीठ के पिछली और रखते हैं। इसमें पहला द्वार सामान्यजन के प्रवेश के लिए और दूसरा द्वार अभिनेताओं के प्रवेश के लिए होता है। चतुरस्र में अभिहित विधि के अनुसार ही इसमें भी दीवारों का निर्माण किया जाता है और इसी प्रकार स्तम्भ भी लगाये जाते हैं। शेष कार्य विकृष्ट नाट्य गृह के समान त्यस्र नाट्य गृह में भी होता हैं। त्यस्र नाट्य मण्डप का यही स्वरूप है।

नाटयशास्त्र के तृतीय अध्याय में नाट्य मण्डप निर्माण के बाद देवगणों के अर्चन की विधि का विस्तार से निरूपण किया गया हैं क्योंकि देवपूजन के बिना नाट्यप्रयोग का प्रस्तुत करना उचित नहीं है तथा भरतमुनि ने भी इसी कारण इस अर्चन विधि का अवश्य सम्पादन बतलाया है।

नाट्यशास्त्र के चतुर्थअध्याय में ताण्डव नृत्य के उद्भव के साथ नृत्य के लास्यादि प्रमेद का विवरण देकर उसके करण, अंगहार आदि का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम इस क्रम में भरत मुनि के नृत्य के उद्भव का भी विवरण दिया है, तथा नाट्य में प्रयोग भगवान शिव जी के प्रेरणा से हुई।

इस नृत्य में हस्त कटि पार्श्व, पाद, जंधा, उदर वक्षःस्थल तथा पृष्ट आदि स्थानों का तथा गति, चेष्टा आदि क्रियाओं का महत्त्व होता है और इसी कारण कभी स्थित तथा कभी द्रुतगति की चेष्टाएँ रखी जाती है। इन चेष्टाओं से नृत्य में मातृकाएँ निर्मित होती है तथा तीन या चार मातृकाओं से कारण का संगठन या निर्माण का कार्य निर्माण जाता है।

भरतमुनि ने इस अध्याय में एक सौ आठ करणों का उनकी विभिनन मुद्राओं के साथ विस्तार से विवरण दिया है तथा यह विवरण अनेक परवर्ती संगीत नाट्य ग्रन्थों में पर्याप्त विवेचन के

साथ मिलता है। जिसका आधार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। इन कारणों से अंगहार बनते है, जिनकी संख्या बत्तीस है। नृत्य में प्रभाव शालिता और शालीनता लाने के लिए पादरेचक कटिरेक कर रेचक तथा कण्ठ रेचकों की कल्पना की गयी है। तथा ताण्डव के उपकरण मूत इन कारणों, अंगहारों एवं रेचकों की रूपरचना भगवान शिव ने की थी, जिनसे तण्डु ने इन्हें प्राप्त किया और तण्ड से निर्दिष्ट होने से इस नृत्य को ताण्डव नाम से कहा जाने लगा।

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि साहित्यशास्त्र में नाट्यशास्त्र क्या है? इसमें प्रतिपाद्य विषय क्या है? इसके विषय में आप समग्र रूप से परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने ब्रह्मा तथा शिव की स्तुति करते हुए उनको नाट्य तथा नृत्य दोनों को उपेदश कर्ता माना है। नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय में ऋषिगणों ने पाँच प्रश्न किये उन पाँचों प्रश्नों के उत्तर भरतमुनि ने क्रमशः दिया है। पृथ्वी पर नाट्यशास्त्र के अवतरण का वर्णन करते हुए नाट्यमण्डप किस प्रकार होना चाहिए इसका वर्णन सम्यग प्रकार से किया गया है।

3.5 शब्दावली

प्रतिपादक	वर्णन करने वाला
स्रौत	सुनकर
प्राथ	प्राप्त होने वाला
आविष्कृत	खोज किया
नाटयगृह	नाट्य का घर
समक्ष	सामने
सृष्टि	रचना
समावेश	मिलाया
नाट्यमण्डप	नाटय का मकान (भवन)
माप	नापना

निर्घोष	आवाज
स्तम्यारोपण	खम्भा को स्थापित करना
गवाक्ष	खिड़की
वातायन	खिड़ंकी
उदर	पेट

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने किसकी स्तुति की ?
2. नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य विषय में कितने प्रश्न ऋषि गणों ने किया?
3. ऋषि गणों का दूसरा प्रश्न क्या था?
4. गीत की उत्पत्ति किस वेद से हुई?
5. अभिनय की उत्पत्ति किस वेद से हुई?
6. देवताओं के अनुरोध से ब्रह्मा ने वेद की शिक्षा किसको दी?
7. मुनियों के चरित्र पर आक्षेप पूर्ण व्यंग किसने किया?
8. त्यस्र संज्ञक नाट्यमण्डप का आधार किसके जैस होता है?
9. स्तम्मारोपण के बाद किसका निर्माण करना चाहिए?

बहु विकल्पात्मक प्रश्न

1- ऋषि गणों के पाँच प्रश्नों केउत्तर किसने दिया-

क- अभिनवगुप्त ख - भरतमुनि

ग- विश्वनाथ घ- पण्डित जगन्नाथ

2- मुनियों ने शाप किसको दिया-

क- विश्वनाथ को ख- जगन्नाथ को

ग- भरतमुनि के पुत्रों को घ- अभिनव गुप्त को

3- किकृष्टनाटय गृह का निर्माण कितने हाथों का होता है-

क- 908 ख- 90

ग- 10 घ- 50

4- रंगपीठ के पीछले भाग में किस गृह का निर्माण करना चाहिए-

क- नेपथ्य गृह ख- मण्डप गृह

ग- नाट्य गृह घ- नृत्य गृह

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु-उत्तरीय प्रश्न का उत्तर

1. ब्रह्मा तथा शिव की
2. पाँच प्रश्न
3. नाटय के कितने विभाग हैं।
4. सामवेद से
5. यजुर्वेद से
6. भरतमुनि को
7. भरतमुनि के पुत्रों ने
8. त्रिभुजाकार
9. मत्तवारणी

बहु विकल्पात्म प्रश्नों के उत्तर

1- ख

2- ग

3- क

4- क

3.7 सन्द्रर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।
3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।
4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।
5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3.8 उपयोगी पुस्तकें

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।
3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।
4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।
5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।
6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।
7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

पाँचवा प्रश्न का उत्तर क्या है? इसके विषय में सम्यग रूप से वर्णन करें।

इकाई -4 नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना
4.2. उद्देश्य
4.3. मंगलाचरण से लेकर श्लोक सं012तक अर्थ, व्याख्या
4.4. श्लोक सं 13 से 25 तक) अर्थ व्याख्या-(13-25)
4.5. श्लोक सं 26 से 53 तक) अर्थ व्याख्या-(26-53)
4.6. श्लोक सं 74 से54 तक) अर्थ व्याख्या- (54-74)
4.7. श्लोक सं75 से 82तक) अर्थ व्याख्या- (75-82)
4.8. सारांश
4.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ
4.11. सहायक ग्रन्थ
4.12. निबन्धात्मक प्रश्न

4.1. प्रस्तावना-

नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है इसके पूर्व की इकाइयों में आपने नाट्यवेद के संक्षिप्त इतिहास का परिचय प्राप्त करते हुए इसके टीकाकारों एवं नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त किया है। प्रस्तुत इकाई में नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय पूर्वार्द्ध के श्लोकों की व्याख्या कर आपके समक्ष अध्यनार्थ प्रस्तुत हैं।

नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने ब्रह्मा और शिव की वन्दना करने के पश्चात उसके प्रयोजन तथा विविध अंगों का वर्णन किया है। ब्रह्मा द्वारा इन्द्र ने नाट्यवेद की जानकारी प्राप्त की उसमें देवों के प्रशिक्षित करने में असमर्थता बताया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझायेंगे कि नाट्यवेद की उत्पत्ति किस प्रकार हुए, इसकी शिक्षा किसने दी और किसने प्राप्त की तथा इसका विस्तार किस प्रकार हुआ।

4.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप बता सकेगें कि

- नाट्यवेद कैसे उत्पन्न हुआ।
- नाट्यशास्त्र के प्रणेता कौन है, इनका मन्तव्य क्या है।
- नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में क्या वर्णित है।
- ब्रह्मा जी ने किसे नाट्य वेद की शिक्षा दी।
- इन्द्र ने देवों को प्रक्षिशित करने के किस किस प्रकार असमर्थता जतायी।
- नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय का प्रतिपाद्य क्या है।

4. 3 मंगलाचरण से लेकर श्लोक सं0 12तक अर्थ व्याख्या

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ।।
नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम्।।1।।

अन्वय:-अहं (पितामहमहेश्वरौ देवौ शिरसा प्रणम्य नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि यत् ब्रह्मणा उदाहृतम्।

शब्दार्थ:-पितामहमहेश्वरौ=श्री ब्रह्मा और शिव। देवौ =देवों को। शिरमा प्रणम्य=सिर से प्रणाम कर। नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि=नाट्यशास्त्र कहूगा। यत्=जिसे। ब्रह्मणा उदहृतम्=श्री ब्रह्मा जी ने कहा था।

अनुवादः- मैं (पितामह) ब्रह्मा जी (और महेश्वर) श्री शिव (देवों को सिर से प्रणाम कर नाट्यशास्त्र का प्रवचन करूगा जिसको ब्रह्मा जी ने कहा था।

व्याख्याः-भारती परम्परानुसार ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण करते हुए आचार्य भरत ने पितामह और महेश्वर को प्रणाम किया है। प्रश्न यह है कि त्रिदेवों में से केवल दो को ही प्रणाम क्यों किया है? इसका उत्तर यह है कि पितामह ने ही इस नाट्यशास्त्र को पहले पहल भरत को बतलाया था, जैसा कि उन्होंने इसी अध्याय के 25वें श्लोक में यह स्वयं स्वीकार किया है -**"आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्। पुत्रानध्यप्यामास प्रयोगं चापि तत्वतः"**।। इस कथन से श्री ब्रह्मा आचार्य भरत के गुरू सिद्ध होते हैं। भगवान शिव आनन्द निर्भर होकर क्रीडाशील होते हैं तो सन्ध्यादि में नृत्य करते हैं उसका उपस्कारी नृत्त नाट्यशास्त्र में भी है, अतः वे भी आचार्य के गुरू हैं, अतएव वे दोनों नमस्कार्य है।**जग्राह पाठयमृग्वेदात् सामम्या गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।**इस कथन से सिद्ध होता है कि भरत ने नाट्यशास्त्र रूपी नाट्य वेद का कथन करने की ही प्रतिज्ञा की है जिसे प्रारम्भ में उनके परमगुरू पितामह ब्रह्मा जी ने उनसे कहा था।

समाप्तजप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम्।
अन्ध्याये कदाचित्तु भरतं नाट्यकोविदम्।।2।।
मुनयः पर्युपास्यैनमात्रेयप्रमुखाः पुरा।
पप्रच्छुस्ते महात्मानो नियतेन्द्रियबुद्धयः।।3।।

अन्वयः-पुरा महात्मानः नियतेन्द्रिय बुद्धयः आत्रेयप्रमुखाः ते मनयः तु कदाचित् अनध्याये समाप्तजायं व्रति नं स्वसुतैः परिवारितं नाट्यकोविदम् एनम् भरतं पर्युपास्य पप्रच्छः।

शब्दार्थः-पुरा=आदि कल्प में। महात्मानः नियतेन्द्रियबुद्धयः= विशालचेता तथा संयमित इन्द्रिय-बुद्धि वाले। आत्रेयप्रमुखाः=दत्तात्रेय आदि। ते मुनायः= उन मुनियों ने। ब्रतिनम्=ब्रतशील। स्वसुतैः परिवारितम्=अपने पुत्रों, तथा शिष्यों, के साथ विराजमान। नाट्य-कोविदम्=नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ। एनम् भरतम्=इन भरत की। र्प्युपास्य= सम्यक् उपासना कर। पप्रच्छुः=पूछा।

अनुवादः-कल्प के आदि में विशाल चेता तथा संयमिति इन्द्रिय-बुद्धि वाले दत्तात्रेय आदि उन मुनियों ने किसी समय पाठ की समाप्ति पर जप को समाप्त कर चुके व्रतशील तथा अपने पुत्रों और शिष्यों के समीप विराजमान इन आर्चा भरत की सम्यक् उपासना कर उनसे पूछा।

व्याख्या-:ब्रह्मा जी ने भरत मुनि को नाट्यशास्त्र का उपदेश आदि कल्प में ही दिया था, और भरत मुनि से प्रश्नकर्ताओं ने उनसे आदि कल्प में ही नाट्य के विषय में पूछा था, इसलिए श्लोक में 'पूरा' शब्द का प्रयोग किया गया है'। एक बार भरतमुनि अपना जप-पाठ समाप्त कर अपने पुत्रों और

पुत्रवत् पालित शिष्यों के मध्य बैठे हुए थे। उसी समय दत्तात्रेय आदि प्रमुख ऋषिगण उन तपस्वी के पास आये। वे ऋषिगण वेदद्रष्टा होने से महात्मा और अपनी तपः साधना के बल पर इन्द्रियजयी और स्थिर बुद्धिवाले थे।

योऽयं भगवता सम्यग्ग्रथितो वेदसम्मितः।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।।4।।
कत्यङ्ग किंप्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः।
सर्वमेतद् यथातत्वं भागवन् वक्तुमर्हसि।।5।।

अन्वय:-ब्रह्मन् !भगवता योऽयं वेदसम्मितः नाट्यवेदः सम्यक् ग्रथितः सः (कथं कस्य वा कृते कत्यङ्गः किंप्रमाणश्च उत्पन्:? अस्य प्रयोगश्च कीदृशः? भगवन् !एत्त सर्वं यथातत्वं वक्तु अर्हसि।

शब्दार्थ: -भगचता=आप श्रीमान् के द्वारा। योऽयम्=जो यह वेदसम्मितः नाट्यवेदः=वेद के सदृश पवित्र नाट्यवेद। सप्यक् ग्रथितः =सुन्दरतम वस्तु समायोजना से गुम्फित। कथम् =क्यों। कस्य वा कृते=अथवा किसके लिए। कत्यङ्गः=कितने अंगों वाला। किं कैसे किया जाता है। भगवन्= भगवन्। एतत् सर्वम्=यह सब कुछ। यथातत्वम्=तत्व-विवेचनपूर्वक। वक्तुम् अर्हसि= कहने में समर्थ हैं।

अनुवाद:-ब्रह्मन् आपने जो यह वेद के समान नाट्यवेद सुन्दरतम वस्तु योजना से गुम्फित किया है, वह क्यों और किसके लिए उत्पन्न किया है? इसके कितने अंग हैं? क्या प्रमाण है अथवा कितनी संख्या हैं? भगवन् !यह सब आप ही तत्व विवेचनपूर्वक हमको बतलाने में सक्षम हैं।

व्याख्या:-आत्रेयादि मुनिजन आचार्य भरत के समीप अपनी जिज्ञासा के शमनार्थ गये थे, इसलिए उन्हें गुरू मानते हुए उनके लिए 'भगवता' पद का प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि हम आप गुरूवत् पूज्य आचार्य से यह जानना चाहते हैं कि आपने इस नाट्यवेद की रचना क्यों की अर्थात् इसकी रचना का क्या कारण है? दूसरे, यह नाट्यवेद तो वेद है। वेद-पाठ के श्रवण का अधिकार केवल द्विजों को प्राप्त है। क्या इस नाट्यवेद का द्विजेतर लोग भी पठन-श्रवण कर सकते हैं, अन्यथा इसके रचने का क्या प्रयोजन है? तीसरे, इसके कितने अंग है, अर्थात् यह केवल अंगिरूप है अथवा अंग समुदाय मात्र? चौथा प्रश्न है कि यह किस प्रमाण वाला है? इस विषय में आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि **'दृश्यं श्रव्यं च यत्'** इस विषय में प्रश्न करना तो निरर्थक है। तब इस प्रश्न का क्या निहितार्थ है? इसका समाधान् प्रस्तुत करते हुए अभिनव भारतीकार कहते है कि उक्त प्रश्न का आशय है-नाट्य के जो कुछ अंग है, वे यदि विज्ञेय हैं तो उनकी अंगता किस प्रमाण से जानी जाती है? कुछ विद्वान् 'प्रमाण' शब्द का अर्थ, संख्या, बतलाते है। उनका मत है कि नाट्यगत रूपकादि की पाठ्य, अभिनय, रस और गीतों की क्या संख्या है? पाचवॉ प्रश्न है कि इसका प्रयोग कैसे किया जाता है

अर्थात् क्या इसके क्या इसके अंगों का एक-साथ प्रयोग किया जात है कि इसका प्रयाग किया जाता है अथवा भिन्न-भिन्न कलों में?

तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतो मुनिः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं नाट्यवेदकथां प्रति।।6।।

अन्वय:-भरतः मुनिः तेषां मुनीनां तु वचनं श्रुत्वा ततः नाट्यवेदकथां प्रति वाक्यं प्रत्युवाच।

शब्दार्थ:-भरतमुनिः=भरतमुनि। तेषां मुनीनाम्=उन मुनियों के। वचनं श्रुत्वा=वचन को सुनकर। ततः=तदनन्तर। नाट्यवेद कथां प्रति=नाट्यवेद की कथा से सम्बद्ध। वाक्यम्=वचन। प्रत्युवाच=प्रत्युत्तर देते हुए बोले।

अनुवाद:-उन मुनियों के वचन सुनकर भरतमुनि नाट्ययवेद कथा के प्रति उन्मुख होकर उत्तर वाक्य बोले।

व्याख्या:-उन मुनियों के वचन सुनकर भरतमुनि प्रत्युत्तर देने लगे। कारिका में 'तु' पद निश्चयात्मक है जिसका तात्पर्य यह है कि उनके वचन सुनकर अविलम्ब प्रत्युत्तर देने के लिए उन्मुख हैं। इस तत्व-निरूपण में मुनियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का यथाक्रम उत्तर देना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि उनका तत्व-विवेचनापूर्वक उत्तर देना, क्योंकि इस तत्व-निरूपण में प्रश्नों के प्रत्युत्तर का क्रम-भंग भी संभव है।

भव शुचिभिर्भूत्वा तथाऽवहित मानसैः।
श्रूयतां नाट्यवेदस्य सम्भवो ब्रह्मनिर्मित्तः।।7।।

अन्वय:-भव शुचिभिः तथा अवहितमानसैः भूत्वा ब्रह्मनिर्मित नाट्यवेदस्य संभवः श्रूयताम्।

शब्दार्थ:-भव=आप लोग। शुचिभिः=पवित्र। तथा अवहितमानसैः=एकाग्रचित वाले। भूत्वा=होकर ब्रह्मनिर्मितः=ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित। नाट्यवेदस्य =नाट्यवेद की। संभवः=उत्पत्ति। श्रूयताम्=सुनिये।

अनुवाद:-आप लोग पवित्र और एकाग्रचित्त वाले होकर ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित नाट्यवेद उत्पत्ति सुनिये।

व्याख्या:-भरतमुनि कहते हैं कि आप लोग अपने काय और मन से शुद्ध होइए तत्पश्चात् अपने चित्त को एकाग्र कीजिये जिसमें मैं आपको यह बतला सकू कि श्री ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित इस नाट्य की इस लोक में उत्पत्ति के विषय में बतला सकू, अर्थात् मैं आपकी इस शंका का समाधान कर सकू कि नाट्यवेद कैसे उत्पन्न हुआ।

पूर्वकृतयुगे विप्रा !वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगेऽथ सम्प्राप्ते मनोर्वैवस्वतय तु।।8।।
ग्राम्यधर्मप्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्या क्रोधादिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते।।9।।
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगेः।
जम्बूदीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते।।10।।
महेन्द्रप्रमुखैदैवैरूक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।।11।।
न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु ।
तस्मात् सृजाऽपरं वेदं पन्चमं सार्ववर्णिकम् ।।12।।

अन्वयः-विप्राः !पूर्वकृतयुगे स्वायम्भुवे अन्तरे वृत्ते अथ त्रेतायुगे सम्प्राप्ते वैवस्वतस्य मनोः अन्तरे प्राप्ते सति लोके तु ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते कामलोभवशगते ईर्ष्या क्रोधादि संमूढेसुखितदुःखिते सति लोकपाल प्रतिष्ठिते जम्बूदीपे देवदानवगन्धर्वयक्षर क्षोमहोरगैः समाक्रान्ते सति पितामहः नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय भरतमुनि महेन्द्रप्रमुखैः देवैः उक्तः किल-''(वंय (क्रींडनीयमक् इच्छामः यत् दृश्यं श्रव्यं च भवेत्। अयं वेदव्यवहारः शूद्रजातिषु न संश्राव्यः, तस्मात् अपरं सार्ववर्णिकपन्चमं सृज।

शब्दार्थः-विप्राः=हे ब्राह्मणो। पूर्वकृतयुगे=पूर्व सतयुग में। स्वायम्भुवे अन्तरे वृत्ते =स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर के समाप्त होने पर। अथ=और। त्रेतायुगे सम्प्राप्ते=त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर। वैवस्वतस्य मनोः अन्तरे सम्प्राप्ते=वैवस्वत मनु के मन्वन्तर के आने पर। लोके तु=और लोक् में। ग्राम्यधर्मे वृत्ते=ग्राम्य धर्म की प्रवृत्ति बढ़ने पर। काम लोभ वशंगते=काम और लोभ के वशीभूत हो जाने पर। ईर्श्याक्रोधादि संमूढे सुखित दुःखिते=ईर्ष्या क्रोधादि स मूढ होने के कारण सुखी-दुःखी होने पर लोकपाल प्रतिष्ठिते=इन्द्रादि लोकपालों द्वारा प्रतिष्ठित। जम्बू दीप में देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षेमहोरगैः समाक्रान्ते=देव, दानव, यक्ष राक्षस और बडे-बडे सर्पो से रौदि जाने पर। महेन्द्र प्रमुखै देवैः=देवराज इन्द्रादि देवों। पितामहः उक्तः=पितामह ब्रहा्रजी से कहा। क्रीडनायकम् इच्छामः=मनोरंजन की वस्तु चाहते है। यत्=जो दृश्यं श्रव्यं च भवेत्=दृश्य और श्रव्य हो। अयम्=यह। वेदव्यवहारः=वेदोपदेश। शूद्रजातिषु न संश्राव्यः= शुद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं है। तस्मात्=इसलिए। अपरः=अन्य। सार्ववर्णिकम्=सभी वर्णो के सुनाने योग्य नहीं है। वेदव्यवहारः=वेदोपदेश। शूद्रजातिषु न संश्राव्यः=शूद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं है। तस्मात्=इसलिए। अपरः=अन्य। सार्ववर्णिकम्=सभी वर्णो के लिए संश्राव्य। पञ्चमं वेदं सृज=पॉचवें वेद की रचना कीजिये।

अनुवाद-हे ब्राहा्रणो !पूर्व सतयुग में स्वायम्भूव मनु के अन्तर के समाप्त होने और त्रेता के प्रारम्भ में ववस्वत मनु के अन्तर के प्रारम्भ हो जाने पर तथा संसार में ग्राम्यधर्म की प्रवृत्ति बढ़ जाने पर काम और लोभ के प्राप्त होने तथा ईर्ष्या, क्रोधादि से मूढ़मति होने के कारण सुखी-दुःखी होने पर इन्द्रादि लोकपालों से प्रतिष्ठा-प्राप्त जम्बद्वीप को देव, दानव, यक्ष, राक्षस और क्रीडानीयक)मनोरंजन (की वस्तु चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य हो। यह वेदोपदेश शूद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं हैं। इसलिए आप उनसे भिन्न पॉचवे वेद की रचना कीजिये।

व्याख्या:-सृष्टि के आदिकल्प के प्रथम सतयुग में सवायंभुव मनु का मन्वन्तर था। उसके समाप्त होते ही लोक में वेद-विरूद्ध जिसे ग्राम्य धर्म कहते हैं-की प्रवृत्ति पनपने लगी। परिणाम यह हुआ कि संसार के मनुष्य वेद-मर्यादा का उल्लंघन करते हुए काम और लोभ के वशीभूत हो गये ।इन दुर्गुणों के उत्पन्न होने से मनुष्यों में ईर्ष्या, क्रोध आदि अनेक विकार उत्पन्न हो गये जिनके कारण उनके अन्तः-करण मोहयुक्त हो गये और वे सुख-दुःख से ग्रस्त हो गये। पृथ्वी अपने वश में कर लिया। फलतः इन्द्र आदि लोकपालों द्वारा प्रतिष्ठित इस पुण्य जम्बूदीप में सर्वत्र अत्याचार, अनाचार और अशान्ति का साम्राज्य स्थापित हो गया और धर्म का लोप होने लगा। सतयुग में सत्वगुण के उत्कर्ष के कारण सभी लोग अपने-अपने धर्म का अनुपालन करते थे, किन्तु त्रेतायुग में रजोगुण का उत्कर्ष हो जाने के कारण सभी लोग काम-लोभ के वशीभूत होकर अपने धर्म के अनुकूल आचरण से विमुख हो रहे थे। वे शास्त्र के आदेश की अवज्ञा करने लगे। इस प्रकार वेदव्यवहार के अधिकारी द्विजवर्णो के लोग भी स्वच्छाचारिता की ओर उन्मुख होने लगे थे। इससे देवता चिन्तित हो गये। इस लिए उन्होंने ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि वे ऐसे पॉचवे वेद की रचना करें जो सभी वर्णो के लिए व्यवहरणीय हो और जिसका सभी वर्णो के लोग समान रूप से आस्वादन कर अपने-अपने धर्म-पालन का सहज उपदेश प्राप्त कर सकें। इस वेद की विशेषता क्रीडनीयकता है। 'क्रीडनीय' शब्द की व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने इस प्रकार की है-**क्रीड्यते चित्तं विक्षिप्यते विह्रियते येन तत्** अर्थात् जिसके द्वारा चित्त को अनुरंजित किया जाय। क्रीडनीयता के लिए इसका दृश्य और श्रव्य होना स्वाभाविक है क्योंकि दृश्य होने से यह हृद्य होगा और श्रव्य होने से ज्ञानप्रद। इस वेद की रचना के दो प्रमुचा लाभ है-प्रथम इसके दर्शन से दर्शकों का चित्त कुछ क्षणों के लिए आत्मविभोर हो जायेगा कि हृदय की आनन्दावस्था में वे शास्त्रोपदेश भी ग्रहण करते जायेगे। दूसरा लाभ यह होगा कि हृदय की आनन्दावस्था में वे शास्त्रोपदेश भी ग्रहण करते जायेगे।इसलिए वे इन देवों ने ऐसे क्रीडनीयक की रचना करने की प्रार्थना की जो दृश्य भी हो और श्रव्य भी।

4.4- श्लोक 13से 25 तक

एवमस्त्वति तानुक्त्वा देवाराजं विसृज्य च।
स्समार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्ववित्।।13।।

अन्वय:-तान् 'एवमसतु' इति उक्त्वा देवराजं विसृज्य तत्ववित् पितामहः (योगमायाम् आस्थाय

चतुरो वेदान् सस्मार।) यतः इमे वेदाः श्रीशुद्रजातिषु न श्राव्याः ततः सर्वश्राव्यम् अन्यत् पञ्चमं वेदं वक्ष्ये।

अनुवाद:-उन देवों को 'ऐसा ही हो' कहकर और देवराज को बिदा कर तत्वज्ञानी ब्रह्मा जी ने अपनी योगमाया में स्थित होकर चारों वेदों कस स्मरण किया। क्योंकि ये वेद सत्री और शूद्र जातियों में श्राव्य नहीं है, इसलिए मैं सब लोगों के लिए श्राव्य अन्य पॉचवें वेद को कहूंगा।

व्याख्या:-देवों द्वारा सार्ववर्णिक पन्चम वेद के सृजन की प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया। 'हे देवो !ऐसा ही होगा।' यह कहकर उन्होने देवराज सहित सभी देवों को विसर्जित कर दिया। सर्वलोकवेद के तत्वज्ञाता ब्रह्मा जी तदनन्तर अपनी योगमाया में स्थित होकर चारों वेदों का स्मरण करने लगे। योगमाया में स्थित होने का उद्देश्य चारों वेदों का एक साथा अवभास करना था।

ब्रह्मा जी ने विचार किया कि क्योंकि ये वेद स्त्रियों और शूद्रों के लिए वर्जित हैं, इसलिए मुझे ऐसे पॉचवें वेद की रचना करनी चाहिये जो सभी वर्णों के लिए व्यवहार्य हो। ब्रह्मा जी के इस संकल्प-वाक्य पर आचार्य अभिनवगुप्त ने कोई टिप्पणी नहीं की है, इसलिए इसे नाट्यशास्त्र के श्लोकों की संख्या में सम्मिलित नहीं किया गया है। हो सकता है, यह श्लोक प्रक्षिपत हो।

धर्म्यमर्थ्य यशस्यं सोपदेश्यं ससड्ग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वंकर्मानुदर्शकम्।।14।।

अन्वय:-अहं (धर्म्यम् अर्थ्य, यशस्यं, ससड्ग्रहं सोपदेश्यं च भविष्य तः लोकस्य च सर्वकर्मानुदर्शकम् नाट्याख्यं पन्चमं वेदं सेतिहासं करोमि।

शब्दार्थ:-धर्म्यम्=धर्मोपदेश में साधु। अर्थ्यम्=अथ-प्राप्ति कराने वाला, सबके लिए अभिलषणीय। यशस्यं=कीर्ति प्रदान करने वाला सोपदेश्यम=साथा-साथ उपदेश करता हुआ ससड्ग्रहम=सभी विद्याओं को लोकवृत्त के संग्रह के युक्त भविश्यतः लोकस्य= भावि पीढ़ीयों को। सर्वकर्मानुदर्शकम्=सभी कर्मो का मार्ग-दर्शन कराने वाला।

अनुवादः-ब्रह्मा जी ने संकलंप किया कि मैं धर्मोपदेश में साधु, अर्थ-प्रदान करने में समर्थ या अभिलषणीय यशः कीर्ति प्रदान करने वाले साथ-साथ उपदेश करते हुए तथा संकल विद्याओं और लोकवृत्त के संग्रह-स्वरूप नाट्याख्या पञ्चम वेद की रचना करूगॉ।

व्याख्याः -चारों वेदों के स्मरण करने के अनन्तर भरत ने नाट्यवेद की रचना का संकल्प किया। चारों वेदों को स्मरण करने का कारण यह था कि भरत उन चारों वेदों से ही पॉचवां नाट्यवेद रचना चाहते थे। वेदों से नाट्यवेद का सृजन होगा इससे वह धर्ममय होगा यह तो स्वतः सिद्ध है और धर्म चारों पुरूषार्थों का मूल है, जिनमें अर्थ भी सम्मिलित है, तो फिर भरत ने अलग से 'अर्थ्यम्' पद का प्रयोग क्यों किया है? क्या इससे पुनरावृत्ति दोष नहीं आता? नहीं, क्योंकि यह 'अर्थ्यम्' पद' अभिलषणीय' अर्थ का वाचक है तो धर्मोपदेश में साधु होने के कारण यह नाट्यवेद सबके लिए अभिलषणीय होगा और इससे वे यशस्वी बनेगे, क्योंकि धर्म का अर्जन करने वाले को यश की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। अब प्रश्न यह होता है कि क्या यह वेद केवल धर्म का उपदेशक ही होगा, जन-समान्य का चित्तनुरंजन करता हुआ यह यथावसर धर्म का उपदेश भी करता रहेगा। उसके द्वारा प्रस्तुत अभिनयों से घटना-वैविध्य से जनसमान्य को यह स्वीकार करने को विवश होना पडेगा की उससे रामादि सत्यपुरूषों के समान आचरण करना चाहिए, रावणादि सत्यपुरूषों की भॉति नहीं। इसलिए नाट्यवेद सोपदेश होगा। यही नहीं , इसमें नृत्य, संगीत, चित्रकला स्थापत्य आदि सकल ललित कलाओं, साहित्य आदि विद्याओं तथा लोकवृत्त का संग्रह भी होगा। इसप्रकार यह नाट्यवेद भावि सन्ततियों के लिए सन्मार्ग का प्रदर्शक होगा।

सर्वशास्त्रर्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं पन्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।।15।।

अन्वयः-अहम् सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नम् सर्वशिल्पप्रवर्तकम् नाट्याख्यम् पन्चमम् वेदम् सेतिहासम् करोमि।

शब्दार्थः-अहम्=मैं सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नम्=सभी शास्त्रों के अर्थो से परिपूर्ण। सर्वशिल्पप्रवर्तकम्=सभी शिल्पों का प्रवर्तन करने वाले। नाट्याख्यम्=नाट्य नामक। पन्चमं=पॉचवें। वेद को। सेतिहासम्=इतिहास सहित। करोम्=करूगा/रचूगा।

अनुवाद -मैं सभी शास्त्रों के अर्थो से परिपूर्ण और सभी शिल्पों का प्रवर्तन करने वाले नाट्य नामक पॉचवें वेद की रचना करूगा।

व्याख्या-'वेद' शब्द' विदि ज्ञाने' धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होने से ज्ञान का पर्याय है। इसमें सकल शास्त्रों, विद्याओं और कलाओं का ज्ञान समाविष्ट है। संसार में जो कुछ भी ज्ञान-विज्ञान दृष्टिगत होता है, उसका मूल वेद ही हैं। अतः वेद को ज्ञान का पर्याय मानना सर्वथा संगत है। ज्ञान को

ही सत्य, अनन्त औरब्रहा्र भी कहा गया है। जैसा कि **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** इत्यादि श्रुति वाक्य से प्रमाणित है। श्रुतियों में ही ब्रह्म को रस-स्वरूप भी जिस पञ्चम वेद का संकल्प किया था वह भी सर्वशास्त्रों के अर्थों से सम्पन्न तथा सकल शिल्पों कलाओं का प्रवर्तक है। सर्वशास्त्रों सम्पन्नता से इस नाट्यवेद की ज्ञानमयता और शिल्पप्रवर्तकता से उसकी रसमयता का बोध होता है।

एवं संङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेद ततशचक्रे चतुर्वेदाङ्ग-सम्भवम्।।16।।

अन्वय:-एवं संकल्प्य भगवान् चतुर्वेदाननुसमरन् तत् चतुर्वेदांसम्भवं नाट्यवेदं चक्रे।

शब्दार्थ:-एवम् संकल्प्य= ऐसा संकल्प करने के अनन्तर। भगवान्=भगवान् भरत। चतुर्वेदाननुस्मरन्=चारों वेदों का अनुस्मरण करते हुए। ततः=तदनन्तर। चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्=चारों वेदों से उत्पन्न अंगों वाले। नाट्यवेदं चक्रे=नाट्यवेद की रचना करने लगे।

अनुवाद:-मैं नाट्यवेद की रचना करूगा (ऐसा संकल्प करने के अनन्तर भगवान् ब्रह्मा तब चारों वेदों का अनुस्मरण करते हुए चार वेदों से उत्पन्न अंगों वाले नाट्यवेद की रचना करने लगे।

व्याख्या:-पूर्व के दो श्लोकों मे यह संकल्प कर कि धर्म आदि प्रयोजनों से युक्त पन्चम नाट्यवेद की रचना करूगा, महामना भरत वेदों के अनुस्मरण में दत्तचित्त रहे और उनसे अपने अभीष्ट ग्रन्थ चार अंगों-पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस-नाट्यवेद की रचना का उपक्रम करने लगे।

ज्ग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।17।।

अन्वय:-ब्रह्मा (ऋग्वेदात् पाठ्यम्, सामभ्यः गीतम् एव, यजुर्वेदात् अभिनयान् अपि च आथर्वणात् रसान् जाग्राह।

शब्दार्थ:-ऋग्वेदात्=ऋग्वेद से। पाठ्यम्=काकु, स्वर आदि पाठ्य संवाद को। सामभ्यः= सामवेद से। गीतमेव्=गीत को ही। यजुर्वेदात् =यजुर्वेद से। अभिनयान्=सात्विक आदि अभिनयों को। अपि च्=और। आथर्वणात्=अथर्ववेद को। रसान्=श्रृंगारादि रसों को। जाग्राह् =ग्रहण किया।

अनुवाद:-ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से काकु, स्वर आदि से युक्त पाठ्य या संवाद को, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से सात्विक आदि अभिनय को तथा अथर्ववेद से श्रृगारादि रसों को, ग्रहण किया।

व्याख्या:-नाट्याख्य पञ्चम वेद का सृजन करने का संकल्प कर ब्रह्मा जी ने चारों वेदों का अनुस्मरण किया और उनके एक-एक प्रमुख अंग को ग्रहण कर नाट्य-वेद की रचना की। चारों वेदों

के प्रमुख अंग कौन-कौन से हैं, जिनका उन्होंने ग्रहण किया, इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य को ग्रहण किया। 'पाठ्य का अर्थ है-जिसका पठन किया जा सके। इसे नाट्य में संवाद भी कहते हैं। यह गद्य- पद्य मिश्रित है। उनके अर्थ की प्रतीत काकु और उदात्तादि स्वर के ज्ञान से होती है, अतः ब्रह्मा जी के काकु, स्वर समन्वित पाठ्य को ऋग्वेद से ग्रहण किया जिससे संवादों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सके। नाटकों के संवादों में गीतों का आयोजन आवश्यक होता है। गीत या संगीत का मूल स्रोत सामवेद है, अतः ब्रह्मा जी ने सामवेदों से गीत-तत्व को ग्रहण किया। अभिनय चार प्रकार के होते हैं -सात्विक, वाचिक, आङ्गिक और आहार्य। यजुर्वेद में याज्ञिक क्रियाओं -प्रदक्षिणा आदि -में ये सभी अभिन आ जाते हैं।अतः चतुर्विध अभिनय को ब्रह्मा जी ने यजुर्वेद से ग्रहण किया। अथर्ववेद में मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि से सम्बन्धित मन्त्र हैं जिलमें वीर, भयानक, श्रृंगार गार आदि रसों के दर्शन होते हैं, अतः अथर्ववेद से ब्रह्मा जी ने रसों को ग्रहण किया। इन चार अंगों को ग्रहण कर लेने के अनन्तर ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद को चार तत्वों-पाठ्य, गीत, अभिनय और संवाद से परिपूर्ण कर दिया।

वेदोपवेदैः सम्बदो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्राणा सर्ववेदिना।।18।।

अन्वयः-एवं सर्ववेदिना महात्मना भगवता ब्रह्राणा वेदोपवेदैः नाट्यवेदः सृष्टः।

शब्दार्थ-एवम्= इस प्रकार। सर्ववेदिना्=सर्ववेत्ता। महात्मना भगवता ब्रह्राण्=महात्मा भगवान् ब्रह्मा जी ने। वेदोपवेदैः=चारों वेदो तथा आयुर्वेदादि उपवेदों से सम्बद्ध। नाठ्यवेदः सृष्टः =नाट्वेद रचा।

अनुवाद-एवम्) चारों वेदों से चार अगो को ग्रहण कर (सर्ववेत्ता महात्मा भगवान् ब्रह्मा जी ने चारों वेदों तथा आयुर्वेदादि उपवेदों से सम्बद्ध नाट्यवेद रचा।

व्याख्या-ब्रह्मा जी चूकि महात्मा थे तो सर्ववेदी भी या सर्ववेत्ता भी थे। उन्हें भगवान् इसलिए कहा गया किवे सर्वविद् होने के कारण किसी भी प्रकार का ग्रन्थ रचने में समर्थ थे। इसलिए उन्होने जो नाट्यवेद नामक पन्चम वेद रचा, वह न केवल चारों वेदों से सम्बद्ध था, अपितु उन वेदों के आयुर्वेदादि उपवेदों से भी सम्बद्ध था। कहने का तात्पर्य यह है नाट्यवेद एक वेदसम्मत रचना होती हुई भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती थी।

उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम्।
इतिहासो मया सृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम्।।19।।

अन्वयः-नाट्यवेदम् उत्पाद्य तु ब्रह्मा सुरेश्वरम् उवाच-मया इतिहासः सृष्टः स सुरेषु नयुज्यताम्।

शब्दार्थः-नाट्यवेदम् उत्पाद्य=नाट्यवेद की रचना करके। तु=तो। ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। सृष्टः=रच दिया है। स=उसको। सुरेषु=देवताओं में। नियुज्यताम्=नियोजित कीजिये।

अनुवादः-नाट्यवेद की रचना करके ब्रह्मा जी ने देवराज इन्द्र से कहा-मैंने दशरूपक रूपी इतिहास रच दिया है। उसको देवताओं में नियोजित कीजिये।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद तो रच दिया किन्तु उसका प्रयोग तो राज ही करा सकता है। इसलिए ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा कि मैंने एक इतिहास रचा है। यह इतिहास अभिनवगुप्त के अनुसार दशरूपक है जिसका नटों द्वारा रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है। इसके प्रयोग के लिए दक्ष नटों की आवश्यकता होती है। इसलिए ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा कि तुम अपने देवों में से ही ऐसे पात्रों का चयन करो जो ककुशलतापूर्वक इस दशरूपक के पाठय, नृत्त, गीत आदि का अभिनय कर सकें।

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः।
तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया।।20।।

अन्वयः-ये कुशलाः विदग्धाः प्रगल्भाः जितश्रमाश्च) सन्ति (तेषु हि अयं नाटय्संज्ञः वेदः त्वया संक्राम्यताम्।

शब्दार्थः -ये=जो नट। कुशलाः=नाट्य-कला प्रवीण। विदग्धाः=चतुर। प्रगल्भा=परिषद् में निर्भिकतापूर्वक बोलने की क्षमता रखने वाले। जितश्रमाः=कभी थकान का अनुभव न करने वाले। तेषु=उन्हीं में। अयं नाट्यसंज्ञो वेदः=इस नाट्यसंज्ञक वेद का। त्वया=तुम। संक्राम्यताम्=संक्रमण करो, प्रशिक्षण प्रदान करों।

अनुवादः-जो नट नाट्यकला-प्रवीण, चतुर, परिषद् में निर्भीकता से बोलने में सक्षम और कभी थकान का न अनुभव करने वाले हो, उन्हीं को तुम इस नाट्यसंज्ञक वेद के लिए प्रशिक्षित करो।

व्याख्याः-ब्रह्मा जी ने निर्देश दिया कि अपने देवों से, ऐसे पात्रों का चयन करो जो इस नाट्यसंज्ञक वेद के ग्रहण-धारण के योग्य हों, उसके विषय में ऊहापोह तर्क वितर्क करने में समर्थ हों, जिससे रंगमंच पर आकर वे दर्शकों के सामने बोलने में संकोच का अनुभव बिल्कुल न करें तथा जो जितश्रम हों, अर्थात् अभिनय करते-करते कभी थकान का अनुभव न करें। इसके लिए उनका व्यायामशील होना नितान्त आवश्यक हैं। उक्त गुणों से सम्पन्न नट ही इस नाट्यवेद का सम्यक व्यवहार कर सकाते हैं।

तच्छुत्वा वचनं शक्रो ब्रह्मणा यदुदाहृतम्।
प्रान्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम्।।21।।
ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।
अशक्ताः भगवन् देवा अयोग्याः नाट्यकर्मणि।।22।।

अन्वय:-शक्रः ब्रहा्रणा यदुदाहृतम् तत् वचनं श्रुत्वा प्रान्जलिः प्रणतः चे भूत्वा पितामहं प्रत्युवाच-'सत्तम भगवन्। देवाः अस्य ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयाकगे च अशक्ताः नाट्यकर्मणि च अयोग्याः।

शब्दार्थ:-शक्रः=इन्द्र ने। ब्रह्मणा यदुदाहृतम्=ब्रह्मा जी ने जो कहा था। तत् वचनं श्रुत्वा=उस वचन को सुनकर। प्रान्जलिः =हाथ जोडते हुए। प्रणतः भूत्वा=प्रणाम कर। पितामहं प्रत्युवाच=पितामह ब्रह्मा जी (को प्रत्युत्तर दिया। सत्तम भगवन्= हे श्रेष्ठ भगवान्। देवाः=देवलोग। ग्रहणे=गुरूमुख से श्रवण करने। धारणे=गुरूमुख से श्रवण कर उसका अविस्मरण करने। ज्ञाने=नाट्य के ऊहापपेह विचार। प्रयोगे च=और इसका परिषद् में प्रकटीकरण करने में। अशक्तः=असमर्थ हैं। नाट्यकर्मणि अयोग्याः=नाट्यकर्म के लिए अयोग्य है।

अनुवाद:-इन्द्र ने, ब्रह्मा जी द्वारा कहे गये, उस वचन को सुनकर हाथ जोड़ते हुए प्रणाम कर प्रत्युत्तर दिया-'हे श्रेष्ठ भगवन देवता लोग इस नाट्यवेद को ग्रहण करने)गुरूमुख से श्रवण करने, धारण करने गुरूमुख से सुनकर उसे निरन्तर स्मरण रखने(, ज्ञान में)ऊहापोह विचार में और परिषद के समक्ष प्रकट करने में असमर्थ हैं और वे नाट्यकर्म के लिए अयोग्य भी हैं।

व्याख्या:-ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद की रचना कर इन्द्र से अपने देवों के मध्य से उपयुक्त पात्रों का नियोजना करने के लिए कहा जो इस नाट्यवेद को सम्यक् जान कर उसका परिषद् में प्रकटीकरण करें। किन्तु ब्रह्मा जी ने इस वेद के व्यवहार के लिए नट में जिन योग्यताओं की अनिवार्यता बतायी थी, उनका देवों में अभाव जान कर और पितामह सकल विद्याओं के ज्ञात होने के कारण सर्वश्रेष्ट सत्तम (तथा सामर्थ्यवान्) भगवान् समझकर उनके समक्ष अज्जलिबद्ध हो प्रणाम कर विनीत भाव से प्रतिवचन कहा-'हे श्रेष्ठ भगवन् !देव लोग तो सुखोपजीवी हैं, अतः नट के लिए जिस साधन की अनिवार्यता आपने बतायी है, उसे वे कभी नहीं कर सकते। सुखी जीवन व्यतीत करने के स्वभाव वाले होने के कारण वे गुयमुख से इस नाट्यवेद का लम्बे समय तक श्रवण नहीं कर सकते और यदि किसी प्रकार श्रवण कर भी लें तो उसका निरन्तर स्मरण करते हुए नहीं रह सकते।

य इमे वेदगुह्यज्ञाः ऋषयः संशितव्रताः।
एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा।।23।।

अन्वय:-ये इमे वेदागुह्यज्ञाः संशितव्रताः च (ऋषयः) सन्ति एते अस्य ग्रहणे प्रयोगे तथा धारणे शक्ताः)सन्ति।

शब्दार्थ:-ये इमे=जो ये। वेदगुहा्रज्ञाः=वेद-रहस्य के ज्ञाता। संशितव्रताः=प्रशंसनीय व्रत से युक्त।

ऋषयः= ऋषिजन हैं। एते=ये ही। अस्य= इस नाट्यवेद के। ग्रहण=गुरूमुख से श्रवण करने। में। शक्ताः समर्थ हैं।

अनुवाद:-ये जो वेद-रहस्य के ज्ञाता तथा प्रशंसनीय व्रतधारी ऋषिजन है, ये ही इस नाट्यवेद को गुरूमुख से श्रवण करने, उसका सतत स्मरण रखने तथा परिषद में प्रकट करने में समर्थ हैं।

व्याख्या:-इन्द्र ने कहा कि भू-लोक में ये ऋषिगण प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहे हैं, वे वेदज्ञ हैं। अतः उनमें इस नाट्यवेद के ग्रहण-धारण की सामर्थ्य है। साथ ही वेद के गुहा्र ज्ञान के ज्ञाता हैं, अतः अध्यात्म तथा उपनिषदर्थ के ग्रहण-धारण के कौशल के कारण रसादि के लिए उपयोगी सात्विक भाव के सम्पादन में समर्थ हैं। ऋषि होने के कारण वे ऊहापोह विचार के भी योग्य हैं और व्रत के अभ्यास में सशक्त होने के कारण वे जितरम होकर इसका अभिनय भी कर सकते हैं। इस प्रकार ये उदार ऋषिगण ही इस नाट्यवेद की शिक्षा के सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं।

श्रुत्वा तु शक्रवचनं मामाहाऽम्बुज सम्भवः।
त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य महाऽनघ।।24
आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहान्।
पुत्रानध्यापयामास प्रयोगं चाऽपि तत्वतः ।।25।।

अन्वय:-शक्रवचनं श्रुत्वा तु अम्बुजसम्भवः माम् आह-महानघ !त्वं पुत्रशतसंयुक्तःन् अस्य प्रयोक्ता भव एवम् (आज्ञापितः अहं पितामहात् नाट्यवेदं विदित्वा पुत्रान् नाट्यवेदं प्रयोग चाऽपि तत्वतः अध्यापयामास।

शब्दार्थ-:शक्रवचनम्=इन्द्र के वच न। श्रुत्वा=सुनकर। अम्बुजसम्भवः=कमल योनि ब्रह्मा जी ने। माम् आह=मुझसे कहा । त्वम्=तुम। पुत्रशतसंयुक्तः=सौ पुत्रों वाले हो। अहम्=मै। पितामहान्=ब्रह्मा जी से। नाट्यवेदं विदित्वा= नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर। पुत्रान्=पुत्रों को प्रयोगं चापि=नाट्यलक्षणशास्त्र भीं अध्यापामास=प ढ़ाया।

अनुवाद:- इन्द्र के वचन सुनकर कमलयोनि ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा-हे महानघ !तू सौ पुत्रों वाले हो। तुम इस नाट्यवेद के प्रयोगकर्ता बनो। ब्रह्मा जी से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मैंने अपने पुत्रों को नाट्यवेद और उसके प्रयोगरूप नाट्यलक्षणशास्त्र को भी पढ़ाया।

व्याख्या:-इन्द्र द्वारा वेदगुह्यज्ञ ऋषियों को ही नाट्यवेद के ज्ञान और उसके प्रयोग में सर्वथा समर्थ बताये जाने पर ब्रह्मा जी ने मुझसे भरत से कहा। 'तू पद के प्रयोग से ध्वनित होता है कि उन्होंने अन्य ऋषियों से भी कहा, किन्तु मुझसे विशेष रूप से कहा-हे महानघ! तुम परिषद् में सम्मान प्राप्त हो और बडें परिवार वाले भी हो। अतः तुम इस नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग करने में सर्वथा हो, इसलिए तुम्हीं इसका ज्ञान प्रापत करो। सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और फिर अपने सौ पुत्रों को पहले नाट्यवेद पढ़ाया, तदनन्तर उसके प्रयोरूप नाट्यलक्षण शास्त्र का तात्तिवक ज्ञान भी कराया। कहने का

आशय यह है कि मैंने अपने पुत्रों को नाट्यवेद का सैद्धान्तिक जीमवतपजपबंस और प्रायोगिक चतंबजपबंस दोनों प्रकार का तात्विक ज्ञान कराया।

4. 5श्लोक 26 से 53 तक

शाण्डिल्यं चैव वात्स्यं च कोहलं दत्तिलं तथा।
जटिलाम्बष्टकौ चैव तण्डुमग्निशिखं तथा।।26।।
सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा।
कपिन्जलिं बादरिं च यमधूम्रायणौ तथा।।27।।
जम्बुध्वजं काकजङ्घं स्वर्णकं तापसं तथा।
केदारिं शालिकर्ण च दीर्घगात्र च शालिकम्।।28।।
कौत्सं ताझडायनिं चैव पिङ्गलं चित्रकं तथा।
बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम्।।29।।
तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।
अबुधं बुधसेनं च पाण्डुकर्णे सुकेरलम् ।।30।।
ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वन्जुलं तथा।
मागधं सरलं चैव कर्त्तारं चौग्रमेव च।।31।।
तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्।
विशालं शबलं चैव सुनामं मेषमेव च।।32।।
कालियां भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम्।
नखकुट्टाष्मकुट्टौ च षट्पदं सौत्तमं तथा।।33।।
पादुकेपानहौ चैव श्रुतिं चाषस्वरं तथा।
अग्निकुण्डाज्यकुण्डौ च वितण्ड्यं ताण्ड्यमेव च।।34।।
कर्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुस्सहं तथा।
लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम्।।35।।
पुण्ड्रानासं पुण्ड्रनासं चाप्यसितं सितमेव च।
विद्युज्जिह्वं महाजिहह्वं शालड्कायनमेव च।।36।।
श्यामायनं माठरं च लोहिताङ्ग तथैव च।
संवर्तकं पन्चशिखं त्रिशिखं शिखमेव च।।37।।
शड्खवर्णमुखं षण्डं शड्कुकर्णमथापि च।
शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा।।38।।
विद्युतं शातजङ्घं च रौद्रं वीरमथापि च।

पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया।।39।।
प्रयोजितं पुत्रशतं यथा भूमिविभागशः।
यो यस्मिन् कर्मणि यथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः।।40।।

अनुवादः-पितामह) ब्रह्मा जी की आज्ञा और लोक की गुणग्राहकता के कारण हमने शाण्डिल्य से लेकर वीरपर्यन् 105पुत्रों तथा शिष्यों को नाट्यवेद की भूमिकाओं का विभाजन करते हुए नाट्यवेद का अध्यापन किया और उसके प्रयोगरूप नाट्लक्षण शास्त्र को भी पढ़ाया तथा जो जिस कार्य के लिए योग्य था उसे उसमें नियोजित कर दिया।

व्याख्या:-ब्रह्मा जी की आज्ञा तो शिरोधार्य की ही, साथ ही भरत ने यह भी ध्यान में रखा कि इस नाट्यवेद के प्रयोग से प्रजाजन का अनुरंजन भी होना चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण रखते हुए उन्होंने अपने सौ पुत्रों को नाट्यवेद की शिक्षा दी। पुत्रों के नाम ये हैं-शाण्डिकोण, कोहल, दत्तिल, जटिल, अम्बाष्टक, तण्डु, अग्निशिखा, सैन्धव, पुलोमन, शाड्वलि, विपुल कपिन्जलि, बादरि, यम, धूम्रायण, जम्बुध्वज, काकजङ्घ, स्वर्णक, तापस, केदारि, शालिकर्ण, सैन्धवायन, तैतिल, भार्गव, शुचि, बहुल, अबुध, बुधसेन, पाण्डुकर्ण सुलेरल, ऋजुक, मण्डक, शम्बर, गौतम, बादरायण, कालिय, भ्रमर, पीठमुख, मुनि, नखकुट्ट अश्मकुट्ट, षट्पद, उत्तम, पादुक, उपानह, श्रुति, चषस्वर, अग्निकुण्ड, आज्यकुण्ड, वितण्ड्य ताण्ड्य कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुःसह, लाज, भयानक, वीभत्स, विचक्षण, पुण्ड्राक्ष पुण्ड्रनास, असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व शालङ्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताङ्ग संवर्तक, पन्चशिख, त्रिशिख, शिख, शङ्खवर्णमुख, षण्ड, शङ्कुकर्ण, शक्रनेमि, गर्भस्ति, अंशुमालि, शठ, विद्युत, शातजङ्घ, रौद्र, और बीर। इन पुत्रों की संख्या 105होती है जो जो शतक में ही गणना करने योग्य हैं। किन्तु ये सभी भरत के औरस पुत्र थे, ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इनमें ऐसे अनेक नाम हैं जिनमें अपत्यार्थक इञ् इ (तथा चकञ्) आयन (प्रत्यय लगे हुए हैं, जैसे-बादरि, ध्रूमायण, ताण्डायनि, बादरायण आदि। ये निश्चित रूप से भरतेतर पुरूषों के पुत्र थे, किन्तु भरत ने नाट्यवेद का तात्विक ज्ञान कराया फिर प्रायोगिक रूप में उनसे दशरूपक का अभिनय कराया। इसमें जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त समझा-जैसे कोई हर्ष की अभिव्यक्ति करने में सक्षम था, तो कोई शोक की अभिव्यक्ति करने में-उन्हें उसी के अनुसार नियोजित किया।

भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटीं तथा।
समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मया द्विजाः।।41।।

अन्वयः- द्विजाः !मयातु भारतीं सात्वतीम् आरभटी चैव वृत्तिं समाश्रितः प्रयोगः वै प्रयुक्तः।

शब्दार्थ-द्विजा=हे ब्राहा्राणो!। मया=मैंने।तु=तो भारतीं सात्वतीम् आरभटी चैव वृत्तिं समाश्रितः=भारती, सात्वती और आरमही वृत्तियों पर आधारित।

अनुवादः-हे ब्राहा्रणो !मैने तो भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों के आधार पर ही नाट्य का अभिनय करवा दिया।

व्याख्या-जिस प्रकार धर्मादि रूपी साध्य चार है, उसी प्रकार उसके साधन रूपी वागड्गसत्व चेष्टाए भी चार है। इन्हें वृत्तियॉ कहते हैं। किन्तु इसके विषय में अज्ञ और साधनहीन होने के कारण आचार्य भरत ने उसे छोड़ दिया। इसीलिए उन्होंने अपने'तु' कथन का प्रयोग किये। किन्तु इन वृत्तियों के प्रयोग से नाट्य-प्रयोगों में सरसता नहीं आ सकी, अतः उनका जनरंजन का प्रयास भी विफल रहा। यह कथन उनके 'कै'शब्द से ध्वनित होता है।

प्रिगृहा्र प्रणम्याऽथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया।
अथाऽऽह मां सुरगुरूः कैशिकीमपि योजय।।42।।
यच्च तसयाः क्षम द्रव्यं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम।
एवं तेनाऽस्म्यभिहितः प्रयुक्तश्च मया प्रभुः।।43।।

अन्वयः-अथ मया परिगृहा्र प्रणम्य च ब्रह्मा विज्ञापितः। अथ मां सुरूगुयः आह-कैशिकीम् अपि योजय। द्विजसत्तम !यच्च तस्याः क्षमं द्रव्यं तद् ब्रूहि। एवं तेन अभिहितः अस्मि, मया च प्रभुः प्रत्युक्तः।

शब्दार्थ-अथ=तदनन्तर। मया=मैंने। परिगृहा्र प्रणम्य= परिग्रहपूर्वक प्रणाम करके। ब्रह्मा विज्ञापित=ब्रह्मा जी को नाट्यप्रयोग की सूचना दी। अथ=तब। सुरूगुयः= देवों के गुरू ब्रह्मा जी ने। मामाह=मुझसे कहा। कैशिकीमपि=कैषिकी वृत्ति को भी। योजय= जोड़ लो, सम्मिलित कर लो। यच्च=और जो। तस्य= उसके लिए। क्षमम्=आवश्यक। द्रव्यम्=सामग्री हो। तद् ब्रूहि=वी मुझे बताओ। एवम्=इस प्रकार। मया च= और मैंने। प्रभुः=भगवान् ब्रह्मा जी को। प्रत्युक्तः=प्रत्युत्तर दिया।

अनुवाद-तदनन्तर मैंने परिग्रहपूर्वक प्रणाम करके ब्रह्मा जी को)अपने नाट्य प्रयोग की सूचना दी। तब देवों के गुरू ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा-कैशिकी वृत्ति को भी सम्मिलित कर लो। उसके लिए जो आवश्यक सामग्री हो उसे मुझको बतायें। उन्होंने मुझसे ऐसा कहा। और मैंने भगवान् ब्रह्मा जी को प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्या-भरत ने जिस नाट्य प्रयोग की ब्रह्मा जी को सूचना दी थी, उसमें केवल भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों का ही प्रयोग था, नाट्य की प्राणीभूता कौशिकी वृत्ति को समायोजित नहीं किया था। कैशिकी के अभाव में तो वह सम्पूर्ण प्रयोग नीरस होने के कारण निष्फल ही था। अतः ब्रह्मा जी ने भरत को आदेश दिया कि अपने नाट्य-प्रयागक में कैशिकी वृत्ति को भी समायोजित कर लें। ब्रह्मा जी यह भली-भॉति जानते थे, कैशिकी वृत्ति व्ययसाध्य है और इसके लिए स्त्री-पात्रों का

होना अनिवार्य है, इसलिए उन्होंने भरत से कहा कि इस वृत्ति को भी समायोजित करने के लिए जिन वस्तुओं की तुम्हें आवश्यकता हो, उनके लिए मुझसे कहो, मैं पूरा करूगा।

दीयतां भगवन् द्रव्यं कैशिक्याः सम्प्रयोजकम्।
नृत्ताङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका।।44।।
दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।
कैशिकी श्लक्ष्णनैपथ्याः श्रृङ्गाररससम्भवा।।45।।
अशक्या पुरूषैः सा तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनाद् ऋते।
ततोऽसृजन्महातेजा मनसाऽसरसो विभुः विभुः।।46।।

अन्वयः-भगवान् !कैशिक्याः सम्प्रयोजकं द्रव्यं दीयाताम्। मयानृत्यतः भगवतः नीलकण्ठस्य नृत्ताङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका श्लक्ष्ण नेपथ्या श्रृंगार रस सम्भवा कैशिकी दृष्टा। सा तु स्त्रीजनाद् ऋते पुरूषैः प्रयोक्तुम् अशक्या। ततः महाराजाः विभुः मनसा अप्सरसः असृजन्।

शब्दार्थ-भगवान्=हे प्रभो !कैशक्याः सम्प्रयोजकं द्रव्यम्=कैशिकी वृत्ति के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले द्रव्य को। दीयताम्=प्रदान करें । मया=मैंने। नृत्यतः=नृत्त के लिए धारण किये गये अंगहारों से सम्पन्न। रसभावक्रियात्मिका=रसों को अभिव्यक्ति देने वाली । कैशिकी दृष्टा =कैशिकी के साक्षात् दर्शन किये हैं। सातु= किन्तु वह। स्त्रीजनाद्ऋते=स्त्री पात्रों के बिना। प्रयोक्तुम्=प्रयोग किये जाने के लिए। ततः=तब। महातेजाः=महातेजस्वी। विभः=सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्मा ने। मनसा=अपने मन से। अप्सरसः असृजन्=अप्सराओं की उत्पत्ति की।

अनुवाद-भरत ने कहा (हे भगवान्) !आप मुझे कैशिकी वृत्ति के लिए प्रयोज्य द्रव्य दीजिये। मैंने नृत्य करते हुए भगवान् शिव की नृत्त के लिए अपेक्षित अङ्गहारों) अङ्गभूषणों (से सम्पन्न, रसों के भावों की अभिव्यंजक, श्लक्षण चिकने तथा कोमल (नेपथ्य वाली तथा श्रृंगार रस को जन्म देने वाली कैशिकी के साक्षात् दर्शन किये हैं। वह स्त्री-पत्रों के बिना पुरूष-पात्रों द्वारा प्रयोग की ही नहीं जा सकती। तब महा तेजसवी और सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने मन से अप्सराओं को उत्पन्न किया।

व्याख्या-ब्रह्मा जी के वचन सुनकर भरत ने उनसे कैशिकी के लिए प्रयोज्य द्रव्य देने की प्रार्थना की। किन्तु क्या द्रव्य दिया जाय? इस अभिप्राय से वे कैशिकी के साक्षात्करण का वृत्तान्त सुनाते हुए कहने लगे-एक बार जब भगवान् शिव नृत्त के लिए उपयोगी आभूषणों से अपने अंग-प्रत्यंग को सुसज्जित किये हुए थे। उसके क्रिया-कलाप सहृदय सामाजिकों के अन्तःकरण में विविध रसों के भावों का उद्बोदन कर रहे थे। वह श्लेष चिकने तथा कोमल वस्त्रों से सुसज्जित थी और विशेष रूप से श्रृंगार रस को उत्पन्न कर रही थी। इस कैशिकी वृत्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका प्रयोग

केवल स्त्री-पात्रों द्वारा ही संभव है, पुरूष-पात्र तो इसका किसी भी दशा में मंचन नही कर सकते।' भरत के इस कथन से उनका यह आशय स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें मुख्य रूप से दक्ष स्त्री-पात्रों की आवश्यकता हैं, क्योंकि भरत ने जिन शिष्यों तथा पुत्रों को नाट्य-प्रयोग का प्रशिक्षण दिया था, उनमें सभी पुरूष-पात्र थे, जिनके द्वारा कैशिकी का प्रदर्शन सर्वथा असंभव था।

नाट्यालङ्कारचतुराः प्रादान्मह्यां प्रयोगतः।
मन्जुकेशी सुकेशीं च मिश्रकेशीं सुलोचनाम्।।47।।
सौदामिनीं देवदत्तां देवसेनां मनोरमाम्।
सुदतीं सुन्दरीं चैव विदग्धां विपुलां तथा।।48।।
सुमालां सन्ततिं चैव सुनन्दां सुमुखीं तथा।
मागधीमर्जुनीं चैव सरलां केरलां धृतिम्।।49।।
नन्दां सपुष्कलां चैव कलमां चैव मे ददौ।
स्वातिर्भाण्डनियुक्तस्तु सह शिष्यैः स्वयम्भुवा।।50।।
नरदाद्याश्च गनधर्वा गानयोगे नियोजिताः।
एवं नाट्यमिदं सम्यग् बुद्ध्वा सर्वैः सुतैः सह।।51।।
स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्गकारणम्।
उपस्थितोऽहं ब्रह्मा णं प्रयोगार्थं कृतान्जलिः।।52।।

अन्वयः-पितामहः (नाट्यालङ्कारचतुराः) अप्सरसः(महा्रं प्रयोगतः प्रादात्। मज्जुकेशीम् आरम्भ(कलमां) यावत् मे ददौ। स्वयम्भुवा शिष्यैः सह स्वातिः भाण्डनियुक्तः, नारदाधरः गन्धर्वाः च गानयोगो नियोजिताः। एवम् अहं सर्वैं च गानयोगो नियोजिताः। एवम् अहं सर्वैः सुतैः सह वेद वेदाङ्ग कारणम्। इदं नाट्यं सम्यग् बुद्ध्वा स्वाति नारद संयुक्तः सन् कृतान्जलिः प्रयोगार्थ ब्रह्मा णम् उपस्थितः।

शब्दार्थ-नाट्यालङ्कारचतुरः=नाट्यालंकार में चतुर। महा्राम्=मुझको। प्रयोगतः=नाट्यरूपकों का प्रयोग) मंचन(करने के लिए।प्रदात=प्रदान की। स्वयम्भुवा तु=उनके साथ ही भगवान् ब्रह्मा ने। स्वातिः=स्वाति नामक मुनि को। शिष्यैः सह=शिष्यों के साथ। भाण्डनियुक्तः=आपूरक, पणव, मृदङ्ग, झल्लर आदि वाद्यों के लिए नियुक्त किया। नारदाद्याः गन्धर्वाश्च=नारदादि गन्धर्वों को। गान योगे=कंठ संगीत के लिए नियोजिताः=नियुक्त किया गया। सर्वैः सुतैः सह=अपने सभी पुत्रों के साथ। वेदवेदाङ्गकारणम्=वेद और वेदांग के साधनभूत। इदंनाट्यम्=इस नाट्यवेद को। सम्यग् बुद्ध्वा=भली-भॉति जानकर। स्वातिनारदसंयुक्तः=स्वाति और नारद के साथ। प्रयोगार्थम्=प्रयोग मंचन (के लिए। ब्रह्मा णम् उपस्थितः=ब्रह्मा जी के समक्ष उपस्थित हुआ।

अनुवाद-पितामह ने (मुझे नाट्यलङ्कार में प्रवीण) अप्सराए (कैशिकी वृत्ति के प्रयोग के लिए प्रदान की। उन्होंने मुझे मनजुकेशी से लेकर कलमा पर्यन्त चौबीस अप्सराए (दीं।) एतदनन्तर (स्वयम्भुव ब्रह्मा जी (ने स्वाति नामक ऋषि को शिष्यों के सहित भाण्डों) आपूरक, पणव, मृदंग, झल्लर आदि वाद्यों (के लिए नियुक्त किया तथा नारदादि गन्धर्वो को गायन के लिए नियोजित किया। इस प्रकार वेद और वेदङ्गों के साधन भूत इस नाट्यवेद का अपने सभी पुत्रों के साथ सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर मैं स्वाति और नारद के साथ हाथ जोड़कर अभिवादन करता हुआ (ब्रह्मा जी के सम्मुख नाट्यके प्रयोगार्थ उपस्थित हुआ।

व्याख्या-भारत द्वारा याचना किये जाने पर ब्रह्मा जी ने उन्हें चौबीस अप्सराएं प्रदान की जो नाट्यलंकार में चतुर या प्रवीण थी। 'नाट्यालंकार' शब्द का अर्थ आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्य का अलंकार अर्थात् कैशिकी वृत्ति है, किन्तु अन्य आचार्य नाट्यलंकार वे है। जो सामान्य अभिनय देखे जाते है। जिनका आचार्य भरत ने बाईसवें अध्याय में वर्ग्न किया है। ये दो प्रकार के होते हैं-स्वभावज जिसके अन्तर्गत लीला, विलास इत्यादि दश अलंकार हैं, दूसरे यत्नज जिसके अन्तर्गत शोभा, कान्ति इत्यादि सात अलंकार हैं। आचार्य अभिनवगुपत के अनुसार इस कर्म में मुनि-कन्याएं पूर्णतः अयोग्य हैं अतएव ब्रह्मा जी को नाट्यालंकार में दक्ष अपसराएं देनी पड़ी। कैशिकी वृत्ति के सफल प्रदर्शन के लिए स्त्रियों की संख्या की अधिकता अपेक्षित है, ऐसा जानकर विभु ब्रह्मा जी ने चौबीस अपसराएं प्रदान की जिनके नाम इस प्रकार हैं)-1 (मन्जुकेशी, (2)सुकेशी, (3)मिश्रकेशी, (4) सुलोचना, (5) सौदामिनी, (6) देवदत्ता, (7) देवसेना, (8) मनोरमा, (9) सुदती, (10) सुन्दरी, (11) विदग्धा, (12) विपुला, (13) सुमाला, (14) सन्तति, (15) सुनन्दा, (16) सुमुखी, (17) मागधी, (18) अर्जुनी, (19) सरला, (20) केरला, (21) धृति, (22) नन्दा, (23) पुष्कला, (24) कलमा। एतदनन्तर ब्रह्मा जी ने स्वाति नामक गन्धर्व को दिया जिन्होंनं वर्षा-काल में गिरती हुई जलधारा के वैचित्र्य को दर्शाने के लिए 'पुष्कर' नामक वाद्य का निर्माण किया था। उन स्वाति को उनके शिष्यों के साथ नाट्योपयोगी वाद्यों-आपूरक, पणव, झल्लर आदि के वादन के लिए नियुक्त किया और गीतों का गायन करने हेतु नारदादि देवर्षियों को भी भरत के संरक्षण में दे दिया। इस प्रकार आचार्य भरत नाट्य के लिए आवश्यक सभी उपकरणों-नृत्त, गीत, वाद्य-से पूर्णतः संयुक्त हो चुके थे। तब उन्होने अपने पुत्रों के साथ चारों वृत्तियों-सहित नाट्याभिनय में दक्षता प्राप्त की। तदनन्तर आचार्य भरत अपने पुत्रों को लेकर नारद और स्वाति के साथ पितामह के पास चले और विनीत वेश से उनके सम्मुख उपस्थित हुए। श्लोक के 'ब्रह्मा णम् उपस्थितः' का अर्थ आचार्य अभिनवगुप्त ने यह किया है-'नाट्य प्रयोग के ब्रह्मा जी को आमंत्रित किया।' मेरे मत में, वे ब्रह्मा जी से केवल यह कहने के लिए उपस्थित हुए थे कि उन्होंनं नाट्य-प्रयोग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अब वे उसके मंचन की स्वीकृति प्रदान करें। यह बात अगले श्लोकों में कही भी गयी है, अतः आमंत्रण की यहॉ कोई बात नहीं है।

नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम्।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः।।53।।

अन्वयः- मया (नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तम्, ग्रहणं, ब्रूहि-अहं कि करवाणि? एतत् वचनं श्रुत्वा तु पितामहः प्रत्युवाच।

शब्दार्थ-नाट्यस्य=नाट्यवेद की। ग्रहणम्=पूरी शिक्षा। एतत्=इस। वचनम्=वचन को। श्रुत्वा=सुनकर। तु=तो। पितामहः=ब्रह्मा जी ने। प्रत्युवाच=प्रत्युत्तर दिया।

अनुवाद- भरत ने कहा-हे पितामह !मैंने 'नाट्य का पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है, 'अब आप बतायें कि मैं क्या करूगा 'इस वचन को सुनकर तो पितामह)ब्रह्मा जी (ने प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्या-भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों के साथ कैशिकी को भी समायोजित कर भरत ने अपने पुत्रों-सहित चारों वृत्तियों में नाट्य-प्रयोग का पुर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि अब वे किसी भी स्थान पर नाट्यवेद का पूर्ण प्रयोग करने में समर्थ हो गये हैं। कृपया उन्हें अब भविष्य में क्या करना है, इसके लिए दिशा-निर्देश प्रदान करें। 'किं करवाणि' (क्या करूगा कहने में उनका यह आशय छिपा हुआ है कि अब वे इस नाट्यवेद का कहॉ प्रयोग करें। इस वचन को सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया। श्लोक में 'तु' पद से यह सूचित होता है कि ब्रह्मा जी जान गये कि इस समय भरत नाट्य के पूर्ण प्रयोग में सक्षम हो गयें है।

4 .6.(श्लोक सं0 54- 74तक) अर्थ व्याख्या (54-74)

म्हानयं प्रयोगस्य समयः प्रत्युपस्थितः।
अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते।।54।।
अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्।
ततस्तमिन् ध्वजमहे निहतासुरदानवे।।55।।
प्रहृष्टामरसंकीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे।
पूर्व कृता मया नान्दी ह्याशीर्वचनसंयुता।।56।।
अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता।

अन्वयः-अयं प्रयोगस्य महान् समयः प्रत्युपस्थितः। अयं महेन्द्रस्य श्रीमान् ध्वजमहः प्रवर्तते। अत्र इदानीम् अयं नाट्यसंज्ञः वेदः प्रयुज्यताम्। ततः तस्मिन ध्वजमहे निहितासुरदानवे प्रहृष्टामरसङ्कीर्णे महेन्द्र विजयोत्सवे मया हि पूर्वम् आशीर्वचन संयुता अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता नान्दी कृता।

शब्दार्थ-अयम्=यह। प्रयोगस्य= प्रयोग का। महान् समयः समुपस्थितः=अच्छा समय आ गया है। अयम्=यह। महेन्द्रस्य= देवराज इन्द्र का। श्रीमान् ध्वजमहः प्रवर्तते=वैभव-सम्पन्न ध्वज पूजन का समय है। अत्र=इस स्थान पर। इदानीम्=इस समय। अयम्=यह। नाट्यसंज्ञः वेदः=नाट्यसंज्ञक वेद। महेन्द्र विजयोत्सवे ध्वजमहे =महेन्द्र के विजयोत्सव रूप ध्वजमह में। मया=मैंने। पूर्वम्=सर्वप्रथम। आशीर्वचन संयुक्ता=आशीर्वादात्मक वचनों से युक्त। अष्टांगपदसंयुक्ता=आठ अंगों वाले पदों से युक्त। विचित्रा=अतएव विचित्र। वेदनिर्मिता=वेदो से निर्मित। नान्दी कृता=नान्दी का प्रयोग किया।

अनुवाद -ब्रह्मा जी बोले(-यह नाट्यप्रयोग का अच्छा समय आ गया है। यह देवराज इन्द्र का वैभव-सम्पन्नह ध्वजमह उत्सव (आ गया है। यहॉ पर इस समय इस नाट्य संज्ञक वेद का प्रयोग करो। तब उस दानव और असुरों से निर्विध्न तथा हर्षित देवों की भीड़ से परिपूर्ण महेन्द्र के विजयोत्सव पर मैंने सर्वप्रथम आशीर्वाद से युक्त तथा अष्टांगपदी होने के कारण विचित्र और वेद से निर्मित नान्दी का पाठ किया।

व्याख्या-भरत द्वारा नाट्यप्रयोग का उपयुक्त अवसर और स्थान पूछे जाने पर ब्रह्मा जी ने उनसे महा न इस नाट्यवेद के प्रयोग का उपयुक्त अवसर तो अब आ ही गया। देखो न, देवराज इन्द्र ने असुर-दानवों का वध करके सम्पूर्ण जगत् को निर्विध्न कर दिया है। आज उनकी विजय के उपलक्ष्य में इन्द्र ध्वज को पूजने का ध्वजमह नामक विजयोत्सव मनाया जा रहा है। तुम इसी अवसर पर यहीं पर अपने इस नाट्यवेद का प्रयोग करो। ब्रह्मा जी के ये वचन सुनकर आचार्य भरत ने पहले नान्दी का पाठ किया है। वह अष्टांग-पदसंयुक्ता थी। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार वह नान्दी सुप्तिड़तरूप आठ पदों वाले वाक्य अथवा महावाक्य से युक्त थी, अथवा आठ वाक्यों से युक्त थी, अथवा उभय प्रकार की थी, इसीलिए वह विचित्रा थी। किन्तु वह देव-निर्मिता थी, जैसा कि श्रुति वचन है-

आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रवर्तते।
देव,द्विजनृपा दीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।
तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः।।57।।

अन्वय:-तदन्ते यथा दैतयाः सुरैः जिताः तथा सम्फेट विद्रवकृता छेद्यमेद्याहवात्मिका अनुकृतिः बद्धा।

शब्दार्थ-तदन्ते=नान्दी की समाप्ति पर। यथा =जिस प्रकार। दैत्याः=दैत्यों को।सुरैः जिताः=देवों ने जीता था। तथा= (उस प्रकार। सम्फेट विद्रवकृता=रोषपूर्ण वचनों से युक्त तथा शंका, भय, त्रास उत्पन्न करने वाली। छेद्यभद्याहवात्मिका=शस्त्र युद्ध और मल्ल युद्ध से युक्त। अनुकृति=नाट्यनुकाररूपा प्रस्तावना। बद्धा=योजित की गयी।

अनुवाद-नान्दी की समाप्ति पर जिस प्रकार दैत्यों को देवों ने जीता था, उस प्रकार रोषपूर्ण वाक्यों से युक्त तथा शङ्का-भय-त्रास उत्पन्न करने वाली शस्त्र युद्ध तथा मल्ल युद्ध से युक्त प्रस्तावना आयोजित की गयी।

व्याख्या-नान्दी के समाप्त हो जाने पर भरत द्वारा देवों असुरों को पराजित करने की घटना पर आधारित अनुकृति आयोजित की। अभिनवगुपत ने अनुकृति को नाट्य कहा है, किन्तु इस स्थल पर वे अनुकृति का अर्थ नाट्य नहीं मानते। उन्होंने 'अनुकृतिः बद्धा' की व्याख्या इस प्रकार की है- ''अनुकृतिरिति नाट्यम्। तत्र च बद्धेति गुणनिका योजिता, न तु प्रयोग इत्येच्यासत्।'' अर्थात् अनुकृति नाट्य को कहते हैं, उसमें बद्ध की गयी अर्थात् गुणनिका)प्रस्तावना (आयोजित की गयी, प्रयोग नहीं आयोजित किया गया। जो ऐसा मानते हैं, वह असत्य है। इसलिए बद्धा का अर्थ है प्रतावित की गयी, निष्पादित नहीं कि गयी। प्रयोग तो आगे किया गया है जिसमें विध्नों का व्याघात देखने को मिलेगा। अतः यह मानता उचित है कि भरत ने नान्दी के अनन्तर प्रस्तावना आयोजित की। इसकी कथावस्तु देवासुर-संग्राम पर आधारित थी। इसमें देवों की असुरों पर विजय दर्शायी गयी थी। इस युद्ध के मध्य देवों और असुरों में किस प्रकार रोषपूर्ण वाक्यों में संवाद हुए, किस प्रकार एक-दूसरे शंका-भय-त्रास से ग्रसित करने का प्रयास किया गया और किस प्रकार दोनों पक्षों में शस्त्रयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए, ये सब प्रस्तावना में दर्शाये गये।

ततो ब्रह्मा दयो देवाः प्रयोगपरितोषिताः।।58।।
प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वोपकरणानि नः।

अन्वय:-ततः ब्रह्मा दयः प्रयोगपरितोषितः प्रहृष्टमनसः नः सर्वोपकरणानि प्रददुः।

शब्दार्थ-ततो=तब। ब्रह्मा दयः देवाः=ब्रह्मा दिक देवों ने। प्रयोगपरितोषिताः=इस प्रस्तावना के प्रयोग से सन्तुष्ट होकर हृष्टमनसः=हर्षित मन से। नः=हम लोगों को। सर्वोपकरणानि=सभी उपकरण। प्रददुः=प्रदान कर दिये।

अनुवाद-तब ब्रह्मा दिक देव प्रस्तावना के प्रयोग से सन्तुष्ट होकर हर्षित मन से हमको सभी उपकरण प्रदान कर दिये।

व्याख्या -भरत ने जब अपने पुत्रों के साथ देवों की विजय और असुरों की पराजय का ओजस्वी नाट्य-प्रयोग देवगण के समक्ष प्रस्तुत किया तो उसे देखकर ब्रह्मा जी जैसे सर्वज्ञ देव भी भावाभिभूत हो गये। उन सभी ने प्रसन्न होकर आचार्य भरत को नाट्य के लिए उपयोगी सभी उपकरण प्रदान कर दिये।

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान् स्वं ध्वजं शुभम्।।59।।

ब्रह्मा कुटिलकं चैव भृङ्गरं वरूणः शुभम्।
सूर्यश्छत्रं शिवः सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च।।60।।
विष्णुः सिंहासनं चैव कुबेरो मुकुटं तथा।
श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्यं ददौ देवी सरस्वती।।61।।
शेषा ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षससपन्नगाः।
तस्मिन् सदस्यभिप्रेतान् नानाजाति गुणाश्रयान्।।62।।
अंशाशैर्भाषितं भावान् रसान् रूपं बलं तथा।
दत्तवन्तः प्रहृष्टास्ते मत्सुतेभ्यो दिवौकसः।।63।।

अन्वयः-प्रथमं तु शक्रः प्रीतः सन् (स्वं शुभं ध्वजं दत्तवान्। ब्रह्मा चैव कुटिलकं वरूणः शुभं भृङ्गरं, सूर्यः छत्रं, शिवः सिद्धिं, वायुः व्यजनम् एव च, विष्णुः सिंहासनं तथा कुबेरो मुकुटं दत्तवान् सरस्वती देवी प्रेक्षणीयस्य श्राव्यत्वं ददौ। शेषाः ये देवगन्धर्वाः यक्षराक्षससपन्नगाःसर्वे ते दिवौकसः प्रहृष्टाः सन्तःमत्सुतेभ्यः तस्मिन् सदसि अभिप्रेतान् नानाजाति गुणाश्रयान् भावान् रसान् च (दत्तवन्तः तथा रूपं बलं च अंशाशैः भाषितम्।

शब्दार्थ-प्रथमम्=सर्वप्रथम। शक्रः=इन्द्र ने। तु=तो। प्रीतः=प्रसन्न होकर। स्वम्=अपने। शुभं ध्वजम्=मंगलध्वज को। दत्तवान्=दिया ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। कुटिलकम्=वक्रदण्ड दिया। वरूणः=वरूण ने। शुभं भृङ्गारम्=कल्याणकारी कमण्डलु दिया।सूर्यश्दत्रम्=सूर्यदेव ने छत्र दिया। शिवःअभगवान् शिव ने। प्रेक्षणीयस्य= दर्शनीय) नाट्य (को। श्राव्यत्वम्=श्रव्य गुण प्रदान किया। शेषाः ये=शेष जो। देवगन्धर्वाः=देव-गन्धर्व। यक्षराक्षस सपन्नगाः=यक्ष राक्षस और पन्नग योनियों के प्राणी थे। ते=उन्होंने तस्मिन् सदसि=उस सभा के लिए। नाना जातिगुणाश्रयन् भावन् रसान्=नाना जातियों और गुणों पर आश्रित भावों और रसों को। दन्तवन्तः=प्रदान किया। तथा अशांशैः=अपने-अपने अंशो द्वारा। रूपं बलं भाषितम्=रूप तथा बल का कथन किया।

अनुवाद-सर्वप्रथम तो इन्द्र ने प्रसन्न होकर अपने मंगल-ध्वज को प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने कुटिलदण्ड, वरूण ने कल्याणमय कमण्डलु, सूर्य ने छत्र, भगवान शिव ने दैवी और मानुषी सिद्धियॉ विष्णु ने सिंहासन तथा कुबेर ने मुकुट प्रदान किया। वाग्देवी सरस्वती ने भी (इस प्रेक्षणीय) दृश्य काव्य (को श्राव्यत्व प्रदान किया। शेष जो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नग योनियों के स्वर्ग के प्राणी थे, उन्होंने भी प्रसन्न होकर उस सभा के लिए अभिष्ट नाना जातियों और गणों पर आश्रित रसों और भावों को प्रदान किया, साथ ही अपने-अपने अंशो से भाषित)वाचिक अभिनय(रूप)सौन्दर्य-प्रसाधन (तथा बल) कायिक अभिनय की मेरे पुत्रों को) शिक्षा दी।

व्याख्या -देवों ने भरत को क्या-क्या नाट्योपकरण प्रदान किये थे, इसको स्पष्ट करते हुए आचार्य भरत कहते हैं कि सबसे पहलं इन्द्र ने अपने मंगल-ध्वज को प्रदान किया जो विजयसूचक होने के कारण विघ्न विनाशक था। तदान्तर ब्रह्माजी ने अपना कुटिलक या वक्रदण्ड प्रदान किया जो विदूषक के लिए उपयोगी था। सूर्य ने छत्र प्रदान किया जो मेघाकार था क्योंकि मेघ सूर्य से उत्पन्न होते हैं, जैसाकि कहा भी गया है -'ऋतवे वर्षान्ते महतो-मेघः सम्प्रवान वर्षा-ऋतु के लिए वर्षान्त में महत् सूर्य (से मेघ उत्पन्न हुआ। यह छत्र आतप-निवारण के लिए उपयोगी था। भगवान् शिव से दैवी और मानुषी सिद्धियॉ प्राप्त हुई जिससे नाट्य-प्रयोग सिद्धिरूप फल प्रदान करने में सक्षम हुआ। वायु से व्यंजन दिया जो आपत-पीड़ित पात्रों के पसोने सुखाने के लिए उपयोगी था। विष्णु ने सिहासन और कुबेर ने मुकुट प्रदान किये जो राजाओं के रूप में अभिनय करने वाले पात्रों के लिए उपयुक्त उपकरण थे। अब तक नाट्यवेद केवल दृश्य था। किन्तु सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर उसे श्रव्यगुण भी प्रदान कर दिया।

एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने।
अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गता।।64।।
विरूपाक्षपुरोगाश्च विघ्नान् प्रोत्साह्य तेऽबुवन्।
न क्षमिष्यामहे नाट्यमेतदागम्यतामिति।।65।।
ततरूतैरसुरै सार्धं विघ्ना मायामुपाश्रिताः।
वाक्चेष्टां स्मृतिंचैव स्तम्भयन्ति स्म नृत्यताम्।।66।।
तथा विध्वंसनं दृष्ट्वा सुत्राधारस्य देवराट्।
कस्मात् प्रयोगवैषम्यमित्युक्त्वा ध्यानमाविशट्।।67।।

अन्वयः-एवं दैत्यदानमाशने प्रयोग प्रारब्धे ये दैत्याः तत्र सङ्गताः) आसन् ते क्षुभिताः अभवन्। ते च विरूपाक्षपुरोगान् विघ्नान् प्रोत्साहार् अब्रुवन्-'एतत् वयं न क्षमिष्यामहे, आगम्यतामिति। 'ततः तैः असुरैः सार्ध मायाम् उपाश्रिताःविघ्नाः नृत्यतां वाक्चेष्टां स्मृति चैव स्तम्भयन्ति स्म। देवराट् सूत्रधारस्य तथा विध्वंसनं 'प्रयोगवैभ्यं कस्मात् उपस्थितम इति उक्त्वा ध्यानम् आविशत्।

शब्दार्थः-एवम्=इस प्रकार। प्रयोगे प्रारब्धे=नाट्य-प्रयोग के प्रारंभ होने पर। दैत्यदानवनाशने=दैत्यों और दानवों के विनाश पर आधारित। ये दैत्याः=जो दैत्य लोग। तत्र=उस नाट्य-परिषद् में। सङ्गताः=सम्मिलित हुए थे। सर्वे=वे सब। क्षुभिताः अभवन्=क्षुब्ध) क्रोद्ध हो गये। ते च=और उन्होंने। विरूपाक्षपुरोगान् विघ्नान्=विरूपाक्ष आदि विघ्नों को। प्रोत्सहार्=प्रोत्साहित कर। अब्रुवन=कहा। एतत् न क्षमिष्यामहे=हम इसको सहन नहीं कर सकेंगे। आगम्यताम्=तुम लोग इधर आओ। ततः=तब। तैः असुरैः सार्धम्=उन असुरों के साथ। मायाम् उपाश्रिताः=मायाधारी। विघ्नाः=विघ्नों ने। नृत्यताम्=नृत्य करने वाले पात्रों की। वाक्चेष्टाम्=बोलने की चेष्टा को। विध्वंसने

दृष्ट्वा=स्मम्भन देखकर। प्रयोग-वैषम्यं कस्मात्=नाट्य-प्रयोग में विषमता कैसे उपस्थित हुई। इति उक्त्वा=ऐसा कहकर। ध्यानम् आविशत्=ध्यानस्थ हुए।

अनुवाद:-इस प्रकार दैत्यों और असुरों के विनाश की घटना पर आधारित नाट्यप्रयोग के आरम्भ होने पर जो दैत्य उस नाट्य-परिषद् में सम्मिलित हुए थे, वे सब खुब्ध क्रुद्ध हो गये, और उन्होंने विरूपाक्षादि विघ्नों को प्रोत्साहित कर कहा-''हम इस नाट्य को सहन नहीं कर सकते, तुम सब इधर आओं।'' तब उन असुरों के मायाधारी विघ्नों ने नृत्य करते हुए पात्रों की वाणी की चेष्ठा और स्मरण-शक्ति को स्तम्भित कर दिया। देवराज इन्द्र सूत्रधार का इस प्रकार स्तम्भन देखकर'' प्रयोग में विषमता कैसे उपस्थित हो गयी''ऐस कहकर ध्यानस्थ हो गये।

व्याख्या-प्रस्तावना से परितुष्ट ब्रह्मा दिक देवों से नाट्य के लिए उपयोगी सभी उपकरणों को प्राप्त कर आचार्य भरत ने अपने पुत्रों के साथ नाट्य-प्रयोग प्रारम्भ किया। इस नाट्य की कथावस्तु देवासुर-संग्राम पर आश्रित थी जिसमें दैत्यों को क्रोध आने लगा। उन्होंने क्रोध में हमतमाते हुए विरूपाक्ष आदि विघ्नों को आमंत्रित किया और उनसे कहा कि हम इस नाट्य प्रयोग को देखना पसन्द नहीं करते। तुम सब लोग इस रंगशाला में जाकर व्यवधान उत्पन्न करो। असुरोंसे आज्ञप्त होकर विघ्नों ने अपनी माया का आश्रय लेकर सर्वप्रथम रंगमंच पर नृत्य करते हुए पात्रों की वाक्शक्ति पर विराम लगा दिया जिससे वे अभीष्ट गीत को ही भूल गये। उनके बाद उन्होंनं नाट्य के सूत्रधार को निष्क्रिय कर दिया। उसकी स्थिति तो मृत प्राणी की-सी हो गयी थी, इसीलिए श्लोक में उसका 'विघ्वसन' कहा गया है। ऐसा हो जाने पर ध्यानस्थ व्यक्ति को माया प्रभावित नही कर सकती और वह वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसलिए नाट्य में उपस्थित विषमता के वास्तविक कारण का पता लगाने के निमित्त उन्होंने ध्यान की मुद्रा धारण की थी।

अथाऽपश्यत् सदो विघ्नैःसमन्तात् परिवारितम्।
सहेतरैः सूत्रधारं नष्टसंज्ञं जड़ीकृतम्।।68।।
उत्थाय त्वरितं शक्रो गृहीत्वा ध्वजमुत्तमम्।
सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किन्चिदुद्वत्तलोचनः।।69।।
रङ्गपीठगतान् विघ्नानसुरांश्चैव देवराट्।
जर्जरीकृत देहांस्तानकरोज्जर्जरेण सः।।70।।

अन्वय:-अथ देवराट् विघ्नैः समन्तात् परिवारितं सदः इतरै सह नष्टसंज्ञं जड़ीकृतं सूत्रधारम् अपश्यत्। सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किन्चिद् उद्वृत्तलोचनः देवराट् सशक्रः त्वरितम् उत्थाय, उत्तमं ध्वजं गृहीत्वा रङ्गपीठगतान् तान् विघ्नान् असुरान् चैव जर्जरण जर्जरीकृतदेहान् अकरोत्।

शब्दार्थ-अथ=तदनन्तर। विघ्नैः=विघ्नों द्वारा। समन्तात्परिवारितम्=सब और घेरे लिये गये।

सदः=परिषद् के। इतरैः सह=अन्यपात्रों के साथ। नष्टसंज्ञम्=संज्ञा-शून्य। जड़ीकृतम=जड़ बना दिये गये। सूत्रधारम्=सूत्रधार को। अपश्यत्=देखा। सर्वरत्नोज्जवलतनुः=समस्तरत्नों से उज्ज्वल शरीर वाले। किन्चिद् उद्धत्तलोचनः=कुछ ऊपर को भौंहें चढ़ाये हुए। त्वरितम् उत्थाय =तुरन्त उठ खड़े होकर। उत्तमं ध्वजं गृहीत्वा=अपने उत्तम ध्वज)ध्वजमह (को पकड़ कर। रङ्गपीठगतान्=रंगमंच पर गये हुए। तान्विघ्नान्=उन विघ्नों को। असुरॉश्चैवं=और असुरों को जर्जरेण=जर्जर असत्र से। जर्जरीकृतदेहान्=जर्जर हुए शरीर वाले। अकरोत्=कर दिया।

अनुवाद-ध्यानस्थ होने के अनन्तर देवराज ने विघ्नों द्वारा सब ओर घेर लिये गये परिषद् के अन्य पात्रों के साथ संज्ञा-शून्य तथा जड़ बने हुए सूत्रधार को दखा। सभी रत्नों से उज्जवल शरीर वाले उन देवराज इन्द्र ने तुरन्त उठ खड़े होकर हाथ में ध्वज पकड़ कर कुछ-कुछ ऊपर को भौहें चढाते हुए रंगमंच पर गये हुए उन विघ्नों तथा असुरों को अपने जर्जर अस्त्र से जर्जर हुए शरीर वाले कर दिया।

व्याख्या-नाट्य-प्रयोग में वैषम्य देखकर देवराज इन्द्र ने ऐसा ध्यान लगाया जिस पर असुरों की माया अपना प्रभाव नहीं डाल सकती थी। उस ध्यान में उनहोंने सूत्रधार सहित सभी पात्रों को सब ओर अपने घेरे में ले लिया है। इसके कारण उनकी संज्ञा नष्ट हो गयी है और वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। कार्य-सिद्धि के विघातकों को राजा द्वारा दण्ड मिलना चाहिए, ऐसा सोचकर देवराज इन्द्र ने तुरन्त अपने आसन से उठकर अपने मंगल-ध्वज को ग्रहण किया। देवराज इन्द्र अनेक रत्नों से जटित आभूषण धारण किया हुए थे जिनके कारण उनका शरीर अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था, किन्तु असुरों और उनके सहयोगी विघ्नों की धृष्टता से क्षुब्ध होने के कारण उनके नेत्रों की भौहें कुछ ऊपर की ओर तनी हुई थी। वे झपट कर रंगमंच पर पहुॅचे और अपने जर्जरणशील ध्वज से उन सिद्धि-विघातक असुरों तथा विघ्नों पर प्रहार करने लगे। उनके सतत् प्रहारों से असुरों और विघ्नों के शरीर जीर्ण-शीर्ण होगये। यद्यपि शरीर के जर्जरीकरण से वे असुर और विघ्न विनाष को प्राप्त तो न हुए थे, किन्तु उस समय वे विघातक-कार्यो से विरत हो गये जिससे नाट्य-प्रयोग निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।

निहतेषु च सर्वेषु विघ्नेषु सह दानवैः।
सम्प्रहृष्य ततो वाक्यमाहुः सर्वे दिवौकसः।।71।।
अहो प्रहरणं दिव्यमिदमासादितं त्वया।
जर्जरीकृतसर्वाङ्गा येनैते दानवाः कृता।।72।।
यसमादनेन ते विध्नाः सासुराः जर्जरीकृताः।
तस्माज्जर्जर एवेति नामतोऽयं भविष्यति।।73।।
शेषा ये चैव हिंसार्थमुपयास्यन्ति हिंसकाः।
दृष्ट्वै जर्जर तेऽपि गमिष्यन्त्येवमेव तु ।।74।।

अन्वयः -ततः दानवैः सह सर्वेषु च विघ्नेषु निहतेषु सत्सु (सर्वे दिवौकसः सम्प्रहृष्य वाक्यम् आहुः-'अहो !त्वया इदं दिव्य प्रहरणम् आसादितं येन एतेदानवाः जर्जरीकृतसर्वाङ्गाः कृताः। यस्मात् अनेन ते विघ्नाः सासुराः जर्जरीकृताः तस्मात् अयं' जर्जरः' एव नामतः भविष्यति। शेषाः भविष्यति। शेषाः च ये हिंसकाः हिसार्थम् उपयास्यन्ति, तेऽपि जर्जरं दृष्ट्वैव एवमेव तु गमिष्यन्ति।

शब्दार्थ-ततः=तब। दानवै सह=दानवों के साथ। सर्वेषु च विघ्नेषु निहतेषु=सभी विघ्नों के मृतप्राय होने पर। सर्वे दिवौकसः=सभी देवता। सम्प्रहृष्य= हर्षित होकर। वाक्यम् आह=वचन बोले। अहो=अति प्रसन्नता का विषय है कि। त्वया=आपने। इदं दिव्यं प्रहरणम्=यह दिव्य प्रहार। आसादितम्=किया था। येन=जिससे। एते दानवाः=ये दानव। जर्जरीकृत सर्वाङ्गाः=सभी अंगो से जर्जर। कृताः=कर डाले। यस्पात्=क्योंकि। अनेन=इस ध्वज ने। ते विघ्नाः=उन विघ्नों को।सासुराः=असुरों-सहित। जर्जरीकृताः=जर्जर कर दिया है। तस्मात्=इसलिए। अयम्=यह जर्जरं दृष्ट्वै व=जर्जर को देखकर ही। एवमेव तु=इसी प्रकार। गमिष्यन्ति=चले जायेंगे।

अनुवाद-तब दानवों के साथ विघ्नों का विनाश कर दिये जाने पर सभी देवगण हर्षित होकर यह वचन बोले-'अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है कि आपने यह दिव्य प्रहार किया जिससे ये दानव सभी अंगों से जर्जर कर दिये गये, नाम से ही प्रसिद्ध होगा और जो शेष हिंसा करने वाले असुर आदि हिंसा करने के लिए इस नाट्य-प्रयोग के समीप आयेंगे वे भी जर्जर को देखकर ही इसी प्रकार पलायन कर जायेंगे।

व्याख्या-इन्द्र ने अपने उत्तम ध्वज से दैत्यों और विघ्नों को अंग-प्रत्यंग से जर्जर कर दिया था जिससे वे मृतप्राय हो गये थे, मरे नहीं थे, किन्तु वे विघ्न उत्पन्न करने मे सर्वथा अशक्य हो गये थे, अतः रंगपीठ से धीरे-धीरे खिसक गये थे। इस प्रकार नाट्य की रंगशाला सर्वथा निर्विघ्न हो गयी थी। श्लोक में 'निहित' शब्द का अर्थ मरे हुए नहीं है, अपितु मृतप्राय है, किन्तु देवों के 'उपयास्यन्ति' कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपनी अक्षमता के कारण वहॉ से चले गये थे। इन्द्र के इस पराक्रममपूर्ण कृत्य से हर्षित देवगण कहने लगे -''अहो !अर्थात् हम यह जानकर अत्यधिक हर्षित हैं कि आपने जिस ध्वजरूप अस्त्र से इन हिंसक असुरों का विघ्नों सहित क्षय किया है, उसको आज के बाद 'जर्जर' नाम से ही प्रसिद्ध कर दिया जाये, तथा जो शेष हिंसक प्राणी इस नाट्य में विघ्न उत्पन्न करने के लिए उपस्थित होने का प्रयास करेंगे वे इस विजय-ध्वज को देखते ही पलायन कर जायें ऐसी हमारी अभिलाषा है।''

4.7. श्लोक सं0 (75-से 82तक) अर्थ व्याख्या (75-82)

एवमेवास्त्विति ततः शक्रः प्रोवाच तान् सुरान्।
रक्षाभूतश्च सर्वेषां भविष्यत्येष जर्जरः।।75।।

अन्वय:-ततः शक्रः तान् सुरान् प्रोवाच-''एवमस्तु इति, एष जर्जरः सर्वेषांरक्षाभूतः भविष्यति।

शब्दार्थ-ततः=तब देवों के वचन सुनकर (शक्रः=इन्द्रदेव ने। तान् सुरान्=उन देवो को। प्रोवाच=प्रत्युत्तर दिया। रक्षाभूतः=रक्षा-स्वरूप या रक्षक। भविष्यति=होगा।

अनुवाद-तब देवों के वचन सुनकर इन्द्र ने प्रत्युत्तर दिया- ''ऐसा ही हो। यह जर्जर सभी नटों और परिषदों का रक्षाभूत किंवा रक्षक होगा।''

व्याख्या -प्रहृष्टमना देवों ने पूर्व श्लोक में यह कहा कि भविष्य में यह इन्द्र-ध्वज 'जर्जर' नाम से ही प्रसिद्ध होगा। यों तो प्रत्येक देव में किसी वस्तु को कुछ वस्तु को कुछ बनाने की सामर्थ्य है किन्तु इन्द्र-ध्वज तो इन्द्र का था, अतः उसका 'जर्जर' नाम इन्द्र की अनुमति के बिना संभव नहीं था, क्योंकि इन्द्रदेव सभी देवों से अधिक माहात्म्य-युक्त हैं, अतः उन्होंने देवों के वचन सुनकर उन्हें अनुमति प्रदान करने के भाव से कह ही दिया-'एवमस्तु' अर्थात् तुम जो नाम देना चाहते हो, वही नाम इस ध्वन का होवे।

प्रयोगे प्रस्तुते ह्येवं सफीते शक्रमहे पुनः।
त्रासं जन्जनयन्ति स्म विघ्नाः शेषास्तु नृत्यताम्।।76।।

अन्वय:-नुनः स्फीते शक्रमहे एवं प्रयोगे प्रस्तुते) सति (शेषा विघ्नाः तु नृत्यतां त्रासं सज्जनयन्ति स्म।

शब्दार्थ-:पुनः=दोबारा। सफीते=विशाल। शक्रमहे=इन्द्र के ध्वजमह उत्सव पर। एवम्=इसी प्रकार के। प्रयोगे प्रस्तुते=प्रयोग के प्रस्तुत किये जाने पर। शेषाः=बचे हुए। विघ्नाः तु=विघ्न तो। नृत्यताम्=नृत्य करने वाले, नटों में। त्रासं सन्जन्यन्तिस्म=भय उत्पन्न करने लगे।

अनुवाद-दूसरी बार उपस्थित इन्द्र के ध्वजमह महोत्सव पर इसी प्रकार के नाट्य का प्रयोग प्रस्तुत किये जाने पर बचे हुए विघ्न तो नृत्य करने वाले नटों में भय उत्पन्न करने लगे।

व्याख्या-प्रथम बार जब दैत्यासुरविनाशन नाट्य का प्रयोग किया गया था तो उसमें दैत्यों ने विघ्नों के साथ मिलकर सूत्रधार-सहित सभी नटों की वाणी और आंगिक क्रियाओं का स्तम्भन कर दिया था जिन्हें इन्द्र ने 'जर्जर' से नष्टप्राय कर नाट्य-प्रयोग को निर्विघ्न कर दिया।

दृष्ट्वा तेषां व्यवसितं दैत्यानां विप्रकारजम्।
उपस्थितोऽहं ब्रह्मा णं सुतैः सर्वैः समन्वितः।।77।।
निश्चिता भगवन् !विघ्ना नाट्यस्यास्य विनाशने।
अस्य रक्षाविधिं सम्यगाज्ञापय सुरेश्वर।।78।।

अन्वयः-तेषां दैत्यानां विप्रकारजं व्यवसितं दृष्ट्वा अहं सर्वैः सुतैः समन्वितः सन् ब्रह्माणम् उपसिथतः उवाच च ''भगवन् !अस्य नाट्यस्य विनाशने विघ्नाः निश्चिताः। सुरेश्वर !अस्य रक्षाविधिं सम्यग् आज्ञापय।

शब्दार्थ -तेषां दैत्यानाम्=उन दैत्यों के। विप्रकारजम्=अनादर से उत्पन्न। व्यवसितम्=विघ्नरूप कृत्य को। ब्रह्मा णम्=ब्रह्मा जी के सन्मुख। उपस्थितः=उपस्थित हुआ। भगवन्=हे प्रभो !अस्य नाट्यस्य =इस नाट्य के। विनाशने=नष्ट करने में। विघ्नाः निश्चिताः=विघ्न निश्चित हैं। सुरेश्वर=हे देवों के स्वामी। अस्य= इसकी। रक्षाविधिम्=रक्षा का उपाय। सम्यक्=भली-भॉति। आज्ञापय= आदेश करें।

अनुवाद-उन दैत्यों के अपमान से उत्पन्न विघ्नरूप कृत्य को देखकर मैं अपने सभी पुत्रों के साथ ब्रह्मा जी के सम्मुख उपस्थित हुआ और उनसे कहा-''हे प्रभो !इस नाट्य के नष्ट करने में विघ्न निश्चित हैं; इसलिए हे देवों के स्वामिन् !इसकी रक्षा का उपाय भली-भॉति) सोच-समझकर निर्दिष्ट करें।

व्याख्या-भरत ने दुबारा ध्वजमह उत्सव आने पर जिस नाट्य का प्रयोग किया था उसमें भी सत्स्वरूप देवों की विजय और असत्-स्वरूप दैत्यों की पराजय दर्शायी जा रही थी। इसे देखकर दैत्य लोग अपने आपकों अपमानित अनुभव कर रहे थे; अतः वे गतवर्ष की भॉति इस वर्ष भी नाट्य-प्रयोग में विघ्न उत्पन्न करने लगे। यह देखकर आचार्य भरत अपने तथा देवताओं के गुरू ब्रह्मा जी के पास अपने पुत्रों के साथ पहुचें और उनसे निवेदन करने लगे कि हे सुरेशवर !यह निश्चित है कि कहीं भी नाट्य-प्रयोग किया जायेगा तो उसमें विघ्न उपस्थित होंगे, इस लिए मैं आपसे ऐसा निर्देष चाहता हूँ जिससे इन विघ्नों का स्थायी निराकरण हो सके। पया आज्ञा दें कि मैं क्या करू।

ततश्च विश्वकर्माणं ब्रह्मोवाच प्रयत्नतः।
कुरू लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म महानत।।79।।

अन्वयः-ततः च ब्रह्मा विश्वकर्माणम् उवाच-''महामतो !लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म प्रयत्नः कुरू।

शब्दार्थ-ततश्च=और तब। ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। विश्वकर्माणम् उवाच=विश्वकर्मा से कहा। महामते=हे महाबुद्धिमान। लक्षणसम्पन्नम्=सभी लखणों से सम्पन्न। नाट्यवेश्म=नाट्य-गृह, नाट्यशाला। कुरू =निर्मित करो। प्रयत्नतः=सावधानीपूर्वक।

अनुवाद: -और तब ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा से कहा-''है कुशाग्रबुद्धे !तुम सभी लक्षणों विशेषताओं से सम्पन्न नाट्य-गृह का सावधानीपूर्वक निर्माण करों।

व्याख्या-आचार्य भरत के विनीत वचन सुनकर ब्रह्मा जी ने विचार किया कि नाट्य-प्रयोग तो तभी निर्विघ्न सम्पन्न हो सकता है जब कोई वास्तु विद्या तत्वविद् एक सर्वगुणसम्पन्न नाट्यशाला का निमार्ण कर दे। इसके लिए देवों के स्थपति विश्वकर्मा से अधिक कुशल कोई नहीं था; अतः उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर निर्देश दिया कि वह एक ऐसा नाट्य-गृह बनायें जो सभी विशेषताओं से सम्पन्न हो तथा जिसमें किसी विघ्न के लिए काई अवकाश न रहें। किन्तु इस नाट्य-गृह के निर्माण में कोई छिद्र न रह जाये जिसमें होकर कोई विघ्न प्रवेश कर सके। इसके लिए विशेष सावधानी बरतनी होगी, अतः नाट्यशाला का निर्माण 'प्रयत्नतः' किया जाना चाहिए।

तोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा महच्छुभम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहंतु सः।।80।।
प्रोक्तवान् दुहिणं गत्वा सभायां तु कृतान्जलिः।
सज्जं नाट्यगृहं देव तदवेक्षितुमर्हसि।।81

अन्वयः-ततः सः विश्वकर्मा अचिरेण कालेन महच्छुभं सर्वलक्षणसम्पन्नं नाट्यगृहं कृत्वा सभायां द्रुहिणं गत्वा तु कृतान्जलिः प्रोक्तवान्-''देव !नाट्यगृहं सज्जम् अस्ति तद् अवेक्षितुम् अर्हसि।

शब्दार्थ-ततः=तब । सः विश्वकर्मा =उस विश्वकर्मा ने। अचिरेण कालेन=अल्प काल में ही। महच्छुभम् =अत्यधिक कल्याणकारी। सर्वलक्षणसम्पन्नम्=सर्वागुणसम्पन्न। द्रुहिणं गत्वा=ब्रह्मा जी के पास जाकर। कृतान्जलिः=हाथ जोड़कर। प्रोक्वान्=कहा देव=हे देव। नाट्यगृहंसज्जम्=नाट्य-गृह तैयार है। तत् अवेक्षितुम् अर्हसि=उसे आप देख सकते हैं।

अनुवाद-तब उसे विश्वकर्मा ने अल्पकाल में ही अत्यधिक कल्याणकारी तथा सर्वगुणसम्पन्न नाट्यगृह का निर्माण कर देव-सभा में ब्रह्मा जी के पास जाकर हाथ जोड़कर कहा-''देव !नाट्यगृह तैयार है; उसे आप देख सकते हैं''

व्याख्या-ब्रह्मा जी का यह निर्देश पाकर कि वह प्रयत्नपूर्वक एक सर्वगुणसम्पन्न नाट्य-गृह बना दे, सुरस्थपति विश्वकर्मा ने अल्पकाल में ही एक मण्डप बना दिया जो सभी विशषेताओं से युक्त तथा नटों और सामाजिकों-दोनों के लिए शुभ या कल्याणप्रद था। इतनी शीघ्रता से नाट्य-गृह का निर्माण कर दिये जाने से यह सूचित होता है विश्वकर्मा उस समय के कुशलतम वास्तुविद् थे। अल्पावधि में प्रयत्नपूर्वक एक भव्य नाट्य-गृह का निर्माण उनकी वास्तुविद्या विशारदता की पराकष्ठा को ही दर्शाता है।

ततः सह महेन्द्रेण सुरैः सर्वैश्च सेतरैः।
आगतस्त्वरितो द्रुष्टुं द्रुहिणो नाट्यमण्डपम्।।82।।

अन्वय:-ततः द्रुहिणः महेन्द्रेण सेतरैः सर्वोः च सह नाट्यमण्डपं द्रष्टुं त्वरितः आगतः।

शब्दार्थ-ततः=तब। द्रुहिणः=ब्रह्मा जी। महेन्द्रण सेतरैः सर्वैं सुरैश्च सह=देवराज इन्द्र तथा अन्य सभी देवों के साथ। त्वरितः=शीघ्रता से आगतः=आये।

अनुवाद-तब विश्वकर्मा के वचन सुनकर ब्रह्मा जी देवराज इन्द्र तथा अन्य देवों के साथ शीघ्रतापूर्वक नाट्यमण्डप को देखने आ गये।

व्याख्या-ब्रह्मा जी के आदेश से एक भव्य तथा कल्याणकारी नाट्य-गृह को देखने आये। श्लोक में 'आगतः क्रिया के प्रयोग से यह ध्वनित होता है कि विश्वकर्मा ने नाट्यमण्डप भूलोक में निर्मित किया था जिसे देखने के लिए सुरगुरू ब्रह्मा जी स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आये थे।

अभ्यास के प्रश्न -

एक शब्द में उत्तर दीजिए-

- नाट्यशास्त्र की रचना किसने की -
- ब्रह्मा ने भरत को नाट्य का उपदेश कब दिया था।
- नाट्य के समय किसका स्मरण किया गयाः
- नाट्यशास्त्र को कौन सा वेद कहते है।
- विदग्ध का क्या अर्थ है।
- प्रगल्भ का क्या तात्पर्य है।
- गुरूमुखात का क्या अर्थ होता है।
- इन्द्र न किन ऋषियो को नाट्य वेद का ज्ञाता समझा।
- ब्रह्मा के कितने पुत्र बताये गये।
- शाण्डिल्य कौन है।

4-8- सारांश

नाट्यशास्त्र के श्लोकार्थ द्वारा सम्यक् अध्ययन करने की इस इकाई में आपने आत्रेय आदि मुनियों के प्रश्न करने परे आर्चाय भरतमुनि द्वारा उपदेषित नाट्य विधा का अवलोकन कर उसकी समस्त पृष्ठ भूमि की जानकारी प्राप्त किया। यह एक अत्यन्त प्राचीन बात है कि आचार्य भरत

नाट्य के विशेषज्ञ थे उन्होंन अपने शिष्यों को और पुत्रों को नित्य रूप से नाट्यवेद पढाया उस नाट्य वेद के प्रयोग का प्रशिक्षण निरन्तर दिया। एक समय प्रात :काल जब वे अपने जप को समाप्त कर अध्ययन अध्यापन से विरत होकर अपनेपुत्रों के बीच में बैठे हुए थे, उसी समय आत्रेय आदि ऋषियों ने उनके समक्ष जाकर शिष्यत्व प्रस्तुत करते हुए उनसे पॉच प्रकार के प्रश्न पूछा -

1. आप ने जिस नाट्य वेद को सुन्दरतम् वस्तुओं के समाहरण के लिए गुम्फित किया है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी।
2. इस नाट्य वेद कि रचना किसकें लिए की गयी।
3. नाट्य वेद के कितने अंग है।
4. नाट्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस प्रमाण की आवश्यकता है।
5. इसके कितने प्रकार है और इसका प्रयोग किस प्रकार होता है।

इन समस्त प्रश्नों के उत्तर में ब्रह्मा द्वारा जो भी कहा गया है वह प्रथम अध्याय की दोनों इकाईयों में वर्णित है। उनका यह उत्तर है वही नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के समस्त श्लोंको मे निबद्ध है। मंगलाचरण से लेकर श्लोक संख्या 127तक के समस्त वर्णन में नाट्य की उत्पत्ति प्रेक्षागृह की पूजा और नाट्य की विशेषताओं प्रयोजनों के वर्णन किये गये। ये सब दोनों इकाईयों प्राप्य है जिनके अध्ययन से आप नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित मूल भूत तथ्यों का ज्ञान करा सकेंगे।

4.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

- भरत
- आदिकल्प
- चारों वेदों का
- पंचम वेद
- चतुर
- धैर्य पूर्वक बोलने वाला
- महर्षियों
- 105
- ब्रह्मा के पुत्र

4.10संदर्भग्रन्थ सूची

1. पारसनाथ द्विवेदी, भरतमुनि- नाट्यशास्त्रम्-सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृतव्याकरणम् - अभिषेकप्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3.श्रीवरदराजाचार्य (सं02017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

4.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृतरचनानुवादकौमुदी, हंसाप्रकाशन, चांदपोलबाजार, जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5.महर्षिपतंजलि(1969 ई0) व्याकरणमहाभाष्य - मोतीलाल बनारसीदास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6.शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर, वारणसी।

7.डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिकव्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

4.12निबन्धात्म क प्रश्न

- नाट्यशास्त्र के मंगलाचरण की व्याख्या कीजिए।
- नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय के अनुसार नाट्यमण्डप की विवेशषेता लिखिए।
- ब्रह्मा के 105पुत्रों के नाम लिखिए।

इकाई -5 नाट्यशास्त्र (प्रथम अध्याय उत्तरार्ध) अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

51. प्रस्तावना
5.2. उद्देश्य
5.3 श्लोक संख्या 83से लेकर श्लोक सं0 94 तक (अर्थ, व्याख्या)
5.4. श्लोक सं0 95 से 110 तक (अर्थ व्याख्या)
5.5. श्लोक सं0 111 से 127 तक (अर्थ व्याख्या)
5.6. सारांश
5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ
5.9. सहायक ग्रन्थ
5.10. निबन्धात्मक प्रश्न।

5.1. प्रस्तावना-

नाट्यशास्त्र के समयक अध्ययन से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य उसके प्रमुख टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का भति भॉति अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई के ठीक पूर्व की इकाई में आपने मंगलाचरण से लेकर देवराज इन्द्र एवं अन्य देवताओं द्वारा नाट्यमण्डप के दर्शन तक के श्लोकों की अनुवाद सहित व्याख्या का अध्ययन किया है।

प्रस्तुत इकाई में नाट्यमण्डप की रक्षा हेतु देवताओं को प्रेरित करना एवं नाट्यमण्डप के माप से सम्बन्धित श्लोकों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस इकाई में नाट्यमण्डप की अनेक विशेषताओं तथा उसके सुरक्षा हेतु देवताओं के बीच में जो संवाद हुए उनका अध्ययन करते हुए नाट्यशास्त्र के प्रयोजन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात रंगदेव के पूजन एवं उसके महात्म्य में पितामह ब्रह्मा द्वारा दिये गये आदेश का वर्णन भावार्थ सहित प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्यशास्त्र के महत्व को बताते हुए ब्रह्माद्वारा बताये गये नाट्यनियमों एवं उसकी महत्ताओं को समझा सकेगें।

5.2उद्देश्य-

नाट्यमण्डप की माप एवं विशेषताओं, प्रयोजनों तथा रंगदेवता के पूजन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ब्रह्मा द्वारा दिये गये उपदेशों का ज्ञान कर उन्हें बता सकेगें।
- नाट्यमण्डप की विशेषताओं को समझा सकेंगे।
- रंगपीठ की माप को सम्यक् रूप से बता सकेगे।
- नाट्यशास्त्र के प्रमुख प्रयोजन की व्याख्या कर सकेगें।
- नाट्य के अध्ययन से प्राप्त लाभों को बात सकेगें।
- ब्रह्मा द्वारा दिये गये नाट्य ज्ञानकी व्याख्या कर सकेगें।

5.3श्लोक संख्या 83 से94 तक-अर्थ एवं व्याख्या

दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा प्राह सर्वान् सुरास्तत:।
अंषभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योयं नाट्यमण्डप:।।83।।

अन्वय -नाट्यगृहम् तथा दृष्टवा ब्रह्मा सर्वान् प्राह-भवद्भि :तु अंशभागै :अयम् नाट्यमण्डप :रक्ष्य:।

शब्दार्थ-नाट्यगृहम् नाट्यगृह को। तथा=वैसा, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित। दृष्ट्वा=देखकर। ब्रह्मा=ब्रह्माजी ने। सर्वान्=सब। सुरान्=देवों से। प्राह=कहा। भवद्भि= :आप लोगों को। तु=तो। अंशभागै= :अपने अंश भागों से। आयम्=इसा नाटद्यमण्डपम्=नाट्यमण्डप की। रक्ष्य=:रक्षा करनी चाहिए।

अनुवाद-विश्वकर्मा द्वारा निर्मित उस नाट्य मण्डप को देखकर ब्रह्माजी ने सभी देवताओं से कहा- आप लोगों को अपने अंश भागों द्वारा इस नाट्यमण्डप की रक्षा करनी चाहिए।

व्याख्या-असुसरों तथा विघ्नों द्वारा नाट्यभिनय में निरन्तर व्यवधान उत्पन्न करते रहने के कारण भरतमुनि ने ब्रह्माजी से पहला कार्य तो यह किया कि उन्होंने विश्वकर्मा को एक सर्वलक्षसम्पन्न नाट्यगृह का निर्माण करने का आदेश दिया जिससे असुरों और उनके द्वारा प्रेरित विघ्नों का उसमें सहज प्रवेश न हो सकें। जब विश्वकर्मा ने वैसा नाट्य मण्डप बना दिया तो ब्रह्माजीने दूसरा कार्य यह कियाकि उन्होंने सभी प्रमुख देवताओं को निर्देश दिया कि वे अपने अंशभागों से नाट्य-मण्डप के विभिन्न सथलों पर प्रतिष्ठित होकर उसकीरक्षा करें। सुरक्ष-व्यवस्था चौकस हो जायेगी तो असुर और उनके द्वारा प्रेरित विरूपाक्षादिविघ्नगण उधर आने का साहस ही नहीं जुटा पायेगे।तीसरे उपाय के रूप में ब्रह्माजीने साम नामक नीति का आश्रयलेकर उन असुरों को समझाने का प्रयास किया जिससे वे नाट्यप्रयोगों में विघ्न उपस्थित करने से विरत हो जायँ। इस उपाय का विवेचन अगले श्लोक में किया गया है

रक्षणे मण्डपस्याथ विनियुक्तसतुचन्द्रमा:
यथादिग्लोकपालाश्च विदिक्ष्वपि च मारूत :।।84।।
नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु निखिप्तो वरूणोम्बरे।
वेदिकारक्षणे वह्निर्भाण्डे सर्वदिवौकस:।।85।।
वर्णाश्चत्वार एवाथ स्तम्भेषु विनियोजिता:
आदित्याश्चैव रूद्राश्च स्थिता :स्तम्भान्तरेष्वपि।।86।।
धारणीष्वथ भूतानि शालास्वप्सरसस्तथा।
सर्ववेश्मसु यक्षिण्यों महीपृष्ठे महोदधि:।।87।।

अन्वय -:अथ मण्डपस्य रक्षणेतु चनद्रमा :विनियुक्त :यथादिग्लोकपाला:च विदिक्ष्वपि च मारूत : विनियुक्त :नेपथ्य भूमौ मित्र:, वरूण :तु अम्बरे निक्षिपत:, वेदिकारक्षणे वह्नि :भाण्डे च दिवौकस : निक्षिप्ता, अथ धरणीषु विनियोजिता :आदित्या :रूद्रा :च स्तम्भान्तरेषु अपि स्थिता:।अथ धरणीषु भूतानि तथा शालासु अप्सरस:, सर्ववेश्मसु यक्षिण्य :महीपृष्ठे) च (महोदधि) :निक्षिप्त।

शब्दार्थ-अथ=तब। मण्डपस्य रक्षणे=मण्डप की रक्षा के लिए। चन्द्रमा :विनियुक्त= :चनद्रमा को नियुक्त किया गया। मारूत च= और पवन देव को। विदिक्ष्वपि= विदिशाओं दिशाओंके कोणों में। मित्र तु=सूर्य को तो। नेपथ्यभूमौ निक्षिप्त = :नेपथ्य की भूमिमें नियुक्त किया गया। कुबेर = :कुबेर को। अम्बरे=आकाश में। वेदिकारक्षणे वह्नि=वेदी की रक्षामेघ नियुक्त किये गये चत्वार : वर्णा=:ब्रह्माणादि चारों वर्णोके देवताओं को स्तम्भेषु=चारों स्तम्भों पर। नियोजिता = :नियुक्त किया गया। आदित्याश्चैव रूद्राश्च=बारह आदितयों और एकादश रूद्रों को । स्तम्भान्तरेश्वपि =अन्य सतम्भों पर भी नियुक्त कर दिया गया।

अनुवाद-तब नाट्यगृह की रक्षार्थ देवों को प्रेरित करने के अनन्तर नाट्य-मण्डप की रक्षाके लिए चन्द्रमा को नियुक्त किया गया। इन्द्रादि दिक्पालोंको अपनी-अपनी दिशाओंके अनुसार नाट्य-मण्डप की प्रत्येक दशा में (नियुक्त किया गया । नेपथ्य) पर्दे की पीछे प्रसाध-कक्ष में सूर्य, आकाश में वरू, वेदी की रक्षा के लिए अग्नि तथा त्रिपुष्करादि वाद्यो के रक्षणके लिए सभी मेघों के नियुक्त किया गया तथा अन्य सतम्भों पर द्वादश आदित्यों तथा एकादश रूद्रो को नियुक्त किया गया। धारणियों धरनों (पर पृथ्वी आदि पञ्च भूतोंको, शालाओं दो स्तम्भों के मध्य के कक्षों में अप्सराओं को, नाट्य-गृह के सभी कक्षों में यक्षिणियों को तथा पृथ्वीतल पर महासागरको नियुक्त किया गया।

व्याख्या -'अपने-अपने अंश भागों से आप लोगों को इस नाट्य-गृह की रक्षाकरनी चाहिए, ऐसा कहकर पितामह ने सभी प्रमुख देवों को नाट्य गृह के रक्षार्थ नियुक्त किया।उन्होंने चन्द्रमा को सौम्य प्रकृति का जानकर उन्हें नाट्य-मण्डप के रक्षणकार्यके लिए नियुक्त कर दिया। दिशाएँ दस होती हैं। उनमें से आठ दिशाओं के दिक्पाल इस प्रकार हैं**"-दन्द्रो वह्नि :पितृपतिनैर्ऋतोवरूणो मरूत् ।कुबेर इश :पतय :पूर्वादीनां दिशां क्रमात्"**।।अर्थात् पर्व दिशा के दिक्पाल या लोकपाल इन्द्र हैं, आग्नेय कोण के अग्नि,दखिण दिशा के यम, नैर्ऋव, पश्चिम दिशाके वरूण, वायव्य कोण के वायु, उत्तर दिशाके कुबेर और ईशान कोण के ईश लोकपाल हैं। इन्हें नाट्य गृह की उन्हीं दिशाओं में नियुक्त किया गया जिसके कि वे अधिपति हैं।

द्वारशाल नियुक्तौ तु कृतान्त :काल एव च।
स्थापितौ द्वारपत्रेषु नागमुख्यौ महाबलौ।।88।।
देहल्यां यमदण्डस्तु शूलं तस्योपरि स्थितम्।
द्वारपालौ स्थितौ चौभौ नियतिर्मृत्युरेव च ।।89।।
पार्श्वे च रंगपीठस्य महेन्द्र :सिथतवान् स्वयम्।
स्थापिता मत्तवारण्यां विद्युद् दैत्यनिषूदनी।।90।।
सतम्भेषु मत्तवारण्या :स्थापिता :परिपालने।
भूतयक्षपिशाचाश्च गुह्यकाश्च महाबला:।।91।।
जजीरे तु विनिक्षिप्तं वज्रं दैत्यनिबर्हणम्।

तत्पर्वसु विनिक्षिप्तं सुरेन्द्रा :ह्यमितौजस:।।92।।
शिर :पर्वस्थितों ब्रह्मा द्वितीये शड्करस्तथा।
तृतीये च स्थितो विष्णुश्चतुर्थे स्कन्द एव च।।93।।
पन्चमे महानागा :शेषवासुकितक्षका:।
एवं विघ्नविनाशायस्थापिता जर्जरे सुरा:।।94।।

अन्वय -:कृतान्त :काल :एवं च द्वारशालानियुक्तौ, द्वारपत्रेषु महाबलौ नामुख्यौ स्थापितौ, देहल्यां तु यमदण्ड :तस्योपरि शूलं स्थितम् नियति :मृत्यु :एव च उभौ द्वारपालौ नियुक्तौ, रड्गपीठस्य महेन्द :स्थिवान् दैत्यनिषुदिनी विद्युत् च (मत्तवारण्यां स्थापिता। मत्तवारण्या :परिपालने स्तम्भेषुमहाबला :भूतपिषाचा :गुहा्रका:च स्थपिता:। जर्जर तु दैत्यनिबर्हणंवज्रं विनिक्षिप्तम् तत्पर्वसु च अमितौजस :सुरेन्द्रा :हि विनिक्षिप्ता:। ब्रह्मा शिर :पर्वस्थित :तथा द्वितीये शड्कर :तृतीये च विष्णु चतुर्थे च स्कन्द :एव सिथत :पन्चमे च शेषवासुकि तक्ष्का :महानागा :स्थिता:। एवं विघ्न विनाशाय जर्जरे सुरा :स्थापिता:।

शब्दार्थ-कृतान्त :काल :एव च=यम और काल।द्वारशाला नियुक्तौ =द्वारशाला पर नियुक्त किये गये। द्वारापत्रेषु =द्वारों के पत्रों पर। महाबलौ नागमुख्यौ=महाबलशाली अनन्त और गुलिक नामक प्रधाननागराज। तस्योपरि =उसके ऊपर।शूलं स्थितम् = भगवन् शिव का त्रिशूल रखा गया। नियति:मृत्यु :एव च= नियति और मृत्यु। उभौ=दोनोंको द्वारपालौ नियुक्तौ= द्वारपाल नियुक्त किये गये। रड्गपीठस्य पार्श्वे च=और रंगपीठ के पार्श्व भाग में ।स्वयं महेन्द्र :स्थितवान्=स्वयं देवराज इन्द्र अपने एक अंश से स्थित हुए। दैत्यनिषुदनी विद्युत् =दैत्यो की संहारकारिणी विद्युत्। मत्तवारण्यां स्थापिता=मत्तवारणीमें स्थापितकिया गया। मत्तवारण्या :परिपालने=मत्तवारणी की रक्षा के लिए। स्तम्भेषु=स्तम्भों पर।महाबला :भूतपिशाचा :गुह्यकाश्च=महाबली भूत पिशाचों और गुहा्रकों को। स्थापिता= :स्थापित किया गया। जर्जरे तु= जर्जर नाम ध्वजदण्ड पर तो। तत्पर्वसु=उसके पर्वो) गाठों पर। अभितौजस= :अपार ओजस्वी। सुरेन्द्रा :हिविनिक्षिप्ता= :देवेश्वरों को ही स्थापित किया गया। ब्रह्माशिर :पर्वस्थित = :ब्रह्माजी सबसे ऊपर के पर्वपर स्थित हुए। तथा द्वितीयेशड्कर= :इसी प्रकार दूसरे पर्वपर भगवान् शिव स्थित हुए। तृतीये विष्णु= :तीसरे पर्व पर भगवान् विष्णु स्थितहुए। चतुर्थेस्कन्द= :चौथे पर्व पर स्वामी कार्तिकेय स्थितहुए।पन्चमे च =और पॉचवें पर्व पर। शेषवासुकितक्ष्ाका = :शेष, वासुकि तथा तक्षक नामक नागराजोंको स्थापित किया गया । एवम् =इस प्रकार।विघ्न विनाशाय= विघ्नो के विनाश के लिए।जर्जरे =जर्जर पर सुरा : स्थापिता= :देवों को स्थापित किया गया।

अनुवाद -नाट्यगृह की (द्वारशाला) द्वारसे सम्बद्ध कक्ष पर यम और काल को ही नियुक्त किया गया। द्वारपत्रों कपाटों पर महाबलशाली प्रधाननागों-अनन्त और गलिक-को स्थापित किया गया।

देहली द्वार के सबसेनीचे काष्ठ (पर यमदण्ड और उसके ऊपर) ऊर्ध्व काष्ट पर त्रिशुल रखा गया।नियति और मृत्य-इन दोनों को द्वारपालोंके रूप में स्थापित किया गया रङ्गपीठ के पार्श्व भाग बंगल में स्वयं देवराज इन्द्र स्थित हो गये । मत्तवारणी पर वज्रायुधरूपा होने के कारण दैत्य– विनाशिनी विद्युत को स्थिापित किया गया मत्तवारणी की रक्षाके लिए उसके स्तम्भों पर महाबलशाली भूतपिशाचों तथा गुहा्रकों यक्षों को स्थापित किया गया ।जर्जर नाम ध्वज– दण्ड पर तो दैत्य विनाश वज्र को रखा गया उसके पर्वो गॉठो पर अपारओजसवी सुरेश्वरों को स्थापित किया गया। ब्रह्माजी उसके (शिर:पर्व) सबसे ऊपर की गॉठ पर स्थित हुए। दूसरे पर्व पर भगवान शंकर, तीसरे पर भगवान विष्णु , चौथे पर स्वामी कार्तिकेय, और पॉचवें पर शेष, वासुकि तथा तक्षक नामक महानाग स्थित हुए।इस प्रकार विघ्नों के विनाशके लिए जर्जर पर देवों को स्थापित किया गया।

व्याख्या -भरत के लिए विश्वकर्मा ने जो नाट्यगृह बनाया था, वह पूरा का पूरा काष्ठ–निर्मितथा, किनतु उसमें अनेक कक्ष थे और प्रत्येक में एक या दो जोडी कपाट लगे हुए थे। इस तरह यह नाट्य मण्डप अत्यन्त विशाल और विविध भागों से युक्त था। पूर्व के चार श्लोकों में नाट्यगृह के अन्तर्भाग के रक्षणमें विविध देवताओं की नियुक्ति कर दी गयी। प्रस्तुत सात श्लोकों मे नाट्यगृह के बाह्य-क्षेत्र में देवों को नियुक्ति करने का विवरण दिया गया है। ब्रह्माजी ने नाट्य गृह की द्वारशालापर यम और काल को नियुक्त किया। द्वारशाला नाट्यगृह के मुख्य द्वार का कक्ष होता है जिसमें होकर सामाजिक रंगशाला में पहुॅचते है। यहॉ से असुर और उनके सहयोगी विघ्न प्रवेश न पा सकें, इसलिए यहॉ ब्रह्माजी ने यम और काल को रक्षक रूप में स्थापित कर दिया था। द्वारपत्र नाट्य गृह के कपाटों को कहतेहैं। इनकी संख्या के बहुत्व के कारण ही श्लोक में 'द्वारपत्रेषु' पद का प्रयोग हुआ है। इनकी रक्षार्थ ब्रह्मा जी दो महाबली प्रधान नागों –अनन्तऔर गुलिक को नियुक्त कर दिया। था, द्वार के सबसे नीचे काष्ठ को देहली कहते हैं । उसके ऊपर यमराज के दण्ड को रख दिया गया था, ताकि उस पर पैर रखतेही विघ्नों को प्रताडितकिया जा सके। उसके ऊपर अर्थात् ऊर्ध्व काष्ठ पर भगवान शिव का त्रिशूल निक्षिप्त कर दिया गया था जो असुरों और विरूपाक्षादि विघ्नों के शिरों का उच्छेद करने में सशक्त था जिन्हे दूर से ही देखकर असुर पलायनकर सकते थे। रंगपीठ रंगमंच के पार्श्व भाग बगल में स्वयं देवराज इन्द्र अपनेएक अंश से स्थित हुए । श्लोक में 'च' के प्रयोग से यह सूचित होता है कि वे अपनी दिशा पूर्व तो एक अंश से नियुक्त थे ही, रंगमंच के पार्श्व में भी एक अंश से प्रतिष्ठित हो गये। राजादि के लिए उपयुक्त स्थान रंगमंच के पास होता ही है, इसलिए इन्द्र का यहॉ पर आसीन होना आवश्यक था। नाट्यगृह के बाहर चारों की गयी चारदीवारी को मत्तवारणी कहते है। इसके रक्षणार्थी ब्रह्माजी ने वज्रायुध रूपाविद्युत को नियुक्त किया गया जो दैत्यों का स्पर्श पाते ही उनका विनाश करने में सक्षम थी। उस मत्तवारणीके स्तम्भों के रक्षण के लिए उन पर महाबली भूतों, पिशाचों और गुह्यकों यक्ष- विशेषों को स्थापित किया गया था।

5.4 श्लोक संख्या 95 से 110 तक अर्थ, व्याख्या

रंगपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित:।

इष्ट्यर्थं रंगमध्ये तु क्रियते पुष्पमोक्षणम् ।।95।।

पातालवासिनो ये च यक्षगुह्यकपन्नगा:।

अधस्ताद् रंगपीठस्य रक्षणे ते नियोजिता:।।96।।

नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां च सरस्वती ।
विदूषकमथोड्.कार :शेषास्तु प्रकृतीर्हर:।।97।।
यान्येतानि नियुक्तानि दैवतानीह रक्षणे।
एतान्येवाधिदैवानि भविष्यन्तीत्युवाच स:।।98।।
एतस्मिन्नतरे देवै :सवैरूक्त :पितामह :।
साम्ना तावदिमे विघ्ना :स्थाप्यतां वचसा त्वया।।99।।
पूर्व साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च।
तयोरूपरि भेदस्तु ततो दण्ड :प्रयुज्यते।।100।।
देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विघ्नानुवाच ह।
कस्माद् भवन्तो नाट्यस्य विनाशाय समुत्थिता:।।101।।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षोऽब्रवीद्वच:।
दैत्यैर्विघ्नगणै :सार्ध सामपूर्वमिदं तत:।।102।।
योऽयं भगवता सृष्टो नाट्यवेद :सुरेच्छया।
प्रत्यादे शोऽयमस्माकं सुरार्थ भवता कृत:।।103।।
तन्नैतदेवं कर्त्तव्यं त्वया लोकपितामह।
यथा देवास्तथा दैत्यास्त्वत्त :सर्वेविनिर्गता:।।104।।
विघ्नानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अलं वो मन्युना दैत्या!: विषादस्त्यज्यतामयम् ।।105।।
भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पक:।
कर्मभावान्वयापेक्षीनाट्यवेदो मया कृत :।।106।।
नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम् ।
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यंभावानुकीर्तनम्।।107।।
क्वचिद्धर्म :क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थ :क्वचिच्छम:।
क्वचिद्धास्यं क्वचिद् युद्धं क्वचित्काम :क्वचिद्वध:।।108।।

धर्मो धर्मप्रवृततानां काम :कामोपसेविनाम्।
निग्रहो दुर्विनीतानां काम :कामोपसेविनाम् ।।109।।
क्लीवानां धार्श्ट्यजननमुत्साह :शूरमानिनाम्।
अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।।110।।

अन्वय - **:**रंगपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित :रंड्गमध्ये तु इष्टयर्थ पुष्पमोक्षणं क्रियते। ये च पातालवासिन:यक्षगुह्यक पन्नगा :ते रड्.गपीठस्य रक्षणे अधस्तात् नियोजिता:। इन्द्र :तु नायकं रक्षति, नायिकां च सरस्वती रक्षति, अथ विदूषकम् ओंकार :शेषा :प्रकृति :तु हर:रक्षति 'यानि एतानि दैवतानि इह रक्षणे नियुक्तानि, एतानि,एव अधिदैवानि भविष्यन्ति'इति स :उवाच। एतसिमन् अन्तरे सर्वै :दवै :पितामह :उक्त- :''त्वयातावत् इमे विघ्ना :साम्ना वचसा स्थाप्यताम् । पूर्व साम प्रयोक्ताव्यं, द्वितीयं दानमेवच, तयोरूपरि तु भेद :तत :दण्ड :प्रयुज्यते'' देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्माविघ्नान् उवाच-''भवन्त:नाट्यस्य विनाशाय कस्मात् समुत्थिता:।'' ब्रह्मण:वचनं श्रुत्वा तत : विरूपाक्ष :विघ्नगणै:सार्ध दैत्यै :सामपूर्वम् इदं वच :अब्रवीत् -'योऽयं नाट्यवेद :भगवता सुरेच्छया सृष्ट:अयं भवता सुरार्थकृत) :सन् अस्माकं प्रत्यादेश:। लोक पितामह यथा देवा :तथा सर्वेदैत्या : त्वत्त :विनिर्गता :तत् त्वया एतदेवंन कर्त्तव्यम् । विघ्नानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनम् अब्रवीत् - 'दैत्या:। व :मन्युना अलम्, अयं विषाद :त्यजताम। मया भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पक : कर्मभावान्वया पेक्षी नाट्यवेद :कृत:। अत्र एकान्तत :भवताम् वानाम् देवानाम् च अनुभावनम् न अस्ति अपितु नाट्यम् अस्य सर्वस्य त्रैलोक्स्य भावानुकीर्तनम् वर्तते। क्वचिद्धर्म:क्वचित् क्वचिद् क्रीडा , क्वचिद् अर्थ:शम :क्वचिद् हास्यं , क्वचिद्युद्धं क्वचित् काम:, क्वचितद् वध :धर्म– प्रवृत्तानां धर्म –प्रवृत्तानां धर्म:कामोपसेविनां काम:, दुर्विनीतां निग्रह:विनीतानां दम क्रिया क्लीबानां धार्ष्ट्यमजनम् शूरमानिनाम् उत्साह:, अबुधानांच विबोध:, विदुषाम् अपि वैदुष्यम।

शब्दार्थ-रंगपीठस्य मघ्ये तु= रंगमंच के मध्य में तो ।स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित= :स्वयं ब्रह्माजी प्रतिष्ठितहो गये। इष्ट्यर्थम् =नाट्यप्रयोग की सिद्धि के लिए ।पुष्पमोक्षणं क्रियते = पुष्प चढाये जाते हैं। अधस्तात् नियोजिता= :रंगपीठ के नीचे नियुक्त कर दिये गये। ओकार= :ओंकार प्रणव । शेषा : प्रकृती= :शेष प्रजाओं सामाजिकों की। अधिदैवानि भविष्यन्ति= अधीश्वर देवता होगे । इति स : उवाच= ऐसा उन्होंने ब्रह्मा ने कहा । एतस्मिन् अन्तरे= इसी बीच। पितामह :उक्त= :पितामह से कहा। स्थाप्यताम् =स्थापित करें शान्त करें। दानमेव च =दान का दण्ड :प्रयुज्यते= दण्ड का प्रयोग किया जाता है। देवानाम् =देवोंके। विघ्नान् उवाच =विघ्नों से कहा ।विनाशाय =विनाश के लिए। कस्मात् =क्यों। समुत्थिता= :उठ खडे.हुए थे। ब्रह्मण= : ब्रह्माजी के।विघ्नागणै :दैत्यै :च सार्धम् =विंघ्नगणों और दैत्यों के साथ ।विरूपाक्ष= :विरूपाक्ष ने। सामपूर्वम् =सामनीति का अनुसरण करतेहुए। योऽयम् नाट्यवेद= : जो यह नाट्यवेद। सुरेच्छया =देवों की इच्छा से लोकपितामह =हे सभी प्राणियों के पिता। त्वत्त :विनिर्गता= :देवलोगआपसे उत्पन्न हुए हैं। एतदेवं न कर्त्तव्यम् =ऐसा

नहीं करना चाहिए था। एकान्तत= : केवल । भवताम् =आप लोगों दानवों भावानुभावनम्= भावों का अनुभाव होता है। क्वचिद्धर्म= : कहीं पर धर्म । क्वचित् क्रीडा = कहीं पर क्रीडा। क्वचित् शम : =कहीं शभ शान्ति धर्मप्रवृत्तानां धर्म= :धर्म में प्रवृत्ति रखनेवालों के लिए धर्म। कामोपसेबिनां काम : =काम की आराधना करने वालों के लिए काम । दुर्विनीतानां निग्रह= : अविनीत जनों का निग्रह।

व्याख्या-ऊपर के सभी श्लोकों का भावार्थ व्याख्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रंगपीठ के मध्य में तो स्वयं ब्रह्माजीप्रतिष्ठित हुए, क्योंकि रंगपीठ के मध्य में नाट्य प्रयोग की सिद्धि के लिए पुष्प चढाये जाते हैं। पाताल में निवास करने वाले जो यक्ष गुह्यक, और सर्प थे उन्हें रंगपीठ के रक्षणार्थ नीचे की ओर स्थापित कर दिया गया। नाट्य प्रयोगके समय नायक की रक्षा तो इन्द्र करते हैं और नायिका की सरस्वती।इसी प्रकार विदूषक की रक्षा ओंकार प्रणव तथा शेष प्रजाओं सामाजिकों की रक्षा भगवान् शिव करते हैं।जो ये देवताइस नाट्यगृहकी रक्षण में नियुक्त किये गये है वे ही इसके अधिष्ठाता देवता होंगे ऐसा उन्होंने ब्रह्माजी ने कहा। इसी बीच सभी देवों ने पितामह से कहा-आपकों तब तक इन विघ्नों को सामपूर्ण वाणी से स्थापित या शान्त करें पहले साम का प्रयोग किया जाय,दूसरे दान का उन दोनों के ऊपर भेद का प्रयोग किया जाता है और सबसे अन्त में दण्ड का प्रयोग किया जाता है। देवों के वचन सुनकर ब्रह्माजी ने देवो से कहा -आप लोग नाट्यके विनाश के लिए क्यों उठ खडे .हुए थे। ब्रह्मा जी के वचन सुनकर दैत्यों और विघ्नों के साथ विरूपाक्ष ने सामनीति का अनुपालन करते यह वचन कहा-आपने देवों की इच्छा से जो यह नाट्यवेद रचा है वह देवों के लिए आपके द्वारा रचा हुआ होने के कारण हमारे लिए अपमानजनक है। हे सम्पूर्ण लोक के पितामह! जिस प्रकार ये देवताआपसे उत्पन्न हुए हैं उसी प्रकार हम सभी दैत्य आपसे उत्पन्न हुए है अत :आपको ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए था। विघ्नों के वचन सुनकर बह्मा जी वचन बोले-'हे दैत्यों ! आप क्रोध को शान्त कीजिये, विषाद का परित्याग कीजिये । मैने आप लोगों तथा देवों के शुभ तथा अशुभ कर्मोके फल का विकल्पक तथा कर्म-भाव'अन्वय वर्ण-कुल के सहकारी नाट्यवेद की रचना की है। इस नाट्य में केवल आप लोगों असुरों तथा देवताओं के भावों का अनुकरण नहीं है अपितु (यह नाटक) तो (इस समस्त त्रिलोक)के व्यकित्यों के भावों का अनुभावन होता है।

मैंने जो यह नाट्यवेद रचा है इसमें (कही तो धर्म है, कहीं क्रीडा है, कहीं अर्थ तो कहीं शम शान्ति या निर्वेद है । कहीं हास्य है, कहीं युद्धहै तो कहीं काम और कहीं वध का प्रदर्शन (है।) इसमें धर्म में प्रवृत्ति रखने वालों के लिए धर्महै,काम रति (का सेवन करने वालों के लिए काम है, दुर्विनीत या अशिष्ट आचरण करने वालों के लिए दमन और विनीत जितेन्द्रिय जनों के लिए इनिद्रय-निग्रहहै। नपुंसकों की धृष्टता-जन्य हास्य, शूरवीरों और स्वाभिमानियों का उत्साह, मूर्खो के लिए ज्ञान तथा विद्वानों के लिए विद्वत्ता का प्रदर्शन भी है ।

5.5. श्लोक सं0 111 से 127 तक अर्थ व्याख्या

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्य दु:खार्दितस्य च।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरूद्विग्नचेतसाम्।।111।।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।112।।
उत्माधम माध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।
हितोपदेशजननं धृति क्रीडासुखादिकृत्।।113।।
एतद्रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियास्वथ ।
सर्वोपदेशजननं नाट्यं लोके भविष्यति।।
दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।114।।
धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विबर्द्धनम।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविश्यति।।115।।
अभिवादनशीलस्य नित्यंवृद्धोपसेविन:।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।
न तन्ज्ञानं नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।116।।
अध्ययनमध्यायनं यजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ष्ट्कर्माण्यग्रजन्मन:।।
उच्छं प्रतिग्रहो भिक्षा वाणिज्यं पशुपालनम्।
कृषिकर्म तथा चेतिषद्कर्माण्यग्रजन्मन:।।
तन्नाऽत्र मन्यु :कर्त्तव्यो भवद्भिरमरान् प्रति।
सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमेतद् भविष्यति।।117।।
देवानामसुराणां च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।
ब्रह्मर्षीणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्।।118।।
योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दु:खसमन्वित:।
सोऽड्.द्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।119।।
'त्रैलोक्यस्यासयसर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।
वेद विद्येति हासानामाख्यानपरिकल्पनम्।
विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।
श्रुति स्मृति सदाचार परिशेषार्थ कल्पनम्।
विनोदजवनं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

एतस्मिन्नतरे देवान् सर्वानाह पितामह:।
क्रियतामद्य विधिवद् यजनं नाट्यमण्डपे।।120।।
बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितै:।
भोज्यैर्मक्ष्यैश्च पानैश्च बलि :समुपकल्पयताम्।।121।।
मर्त्यलोकगता :सर्वे शुभां पूजामवाप्स्यथ।
अपूजयित्वा रंग तु नैव प्रेक्षां प्रवर्तयेत्।।122।।
अपूजयित्वा रंड्.तु य :प्रेक्षां कल्पयिष्यति।
निष्फलं तस्य तज्ज्ञानं तिर्यग्योनि चयास्यति।।123।।
यज्ञेन सम्मितं ह्येतर्ं रंड्.दैवतपूजनम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेनं कर्त्तव्यं नाट्ययोक्तृभि:।।124।।
नर्तकोऽर्थपतिर्वाऽपि य :पूजां न करष्यिति।
न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयं तु स:।।125।।
यथाविधि यथादृष्टं यसतु पूजां करिष्यति।
स लप्स्यते शुभानर्थान्सवर्गलोकं च यास्यति।।126।।
त्रैविद्या मां सोमपा :पूतपाप
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान्दिविदेव भोगान्।।
एवमुक्त्वा तु भगवान् द्रुहिण:सह देवतै:।
रड्.गपूजा कुरूष्वेति मामेवं समचौदयत्।।127।।

अन्वय-:ईश्वराणां च विलास :दु:खार्दितस्य च स्थैर्यम् , अर्थोपजीविनाम् अर्थ :उद्विग्नचेतसां धृति : इति एतत् नानावसथान्तरात्मकं लोकवृत्तानुकरणं नाट्यं मया कृतम्। उत्तमाध्ममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयं,भविश्यति। एतत् नाट्यम् रसे भावेषु सर्वक्रियासु अथ सर्वोपदेशजनं भविष्यति। एतत् नाट्यम लोके दु:खार्तानाम्श्रमार्तानाम्शोकार्तानाम् तपस्विनाम् च विश्रान्तिजननम् उत्पन्न करने वाला। भविष्यति । एतत् नाट्यम् धर्म्यम् , यशस्यम् आयुष्यम् हितम् बुद्धिविवर्द्धनम् लोकोपदेशजननम् च भविष्यति । तत् ज्ञानम् न, तत् शिल्पम् न, सा विद्या न, कला न, स योग :न, तत् कर्म न अस्ति यत् असिमन् नाट्य न दृश्यते। तत् भवद्भि :अत्र अमरान् प्रति मन्यु :न कर्त्तव्य :। एतत् नाट्यं तु सप्त द्वीपानुकरणंभविष्यति। येन एतत् नाट्यम्, यत् मया कृतं तत् अनुकरणम। नाट्यम् देवानाम् असुराणाम्च राज्ञाम् अथ कुटुम्बिनाम् ब्रह्मर्षीणाम् च बृत्तान्तदर्शकम् विज्ञेयम्। य :अयम् लोकस्य सुख-दु:ख समन्वित :लोकस्य सवभाव) :अस्ति (स :अङ्गाद्यभिनयोपेत :सन नाट्यम् इति अभिधीयते।- एतत् नाट्यं लोके वेदविद्येतिहासानाम् आख्यानपरिकल्पनं विनोदकरणं च भविष्यति।

एतस्मिन् अन्तरे पितामह :सर्वान् देवान् आह -'अद्य नाट्यमण्डपे विधिवद् यजनं क्रियताम्।बलिप्रदानै :मन्त्रौषधि समन्वितै :, भोज्य :पानैश्च बलि :समुपकल्प्यताम् ।सर्वे मर्त्यलोकगता :जना: पूजाम् अवाप्स्यथ। रङ्.गं तु अपूजयित्वा प्रेक्षां न प्रवर्तयेत्।- रङ्.गम् अपूजयित्वा य :प्रेक्षां कल्पयिष्यति, तस्य तत् ज्ञानंनिष्फलम् भविष्यति स च तिर्यग्योनि यास्यति।- एतत् रंगदैवतपूजनंहि यज्ञेन सम्मितम्, तस्मात् नाट्ययोक्तृभि :सर्वप्रयत्नेन रंगदैवतपूजनं कर्त्तव्यम्। नर्तक :अथपति :वाऽपि य :पूजां न करष्यिति अन्यै वा न कारयिष्यति, स तु अपचयं प्राप्नोति। य :तु यथाविधि यथादृष्टं च पूजां करिष्यति स शुभान्अर्थान् लप्स्यते स्वर्गलोकं च यास्यति।-एवम् उक्त्वा तु भगवान् द्रुहिण :देवतै :सह मां 'रंगपूजां कुरूष्व ' इति एवं समचोदयत् ।

शब्दार्थ= - ईश्वराणां विलास= :ऐश्वर्यवान् लोगों के लिए विलास दु:खार्दितस्य स्थैर्यम्= दु:ख से अत्यन्त दु:खी व्यक्ति के लिए स्थैर्य या उत्साहपूर्णधैर्य। अर्थोपजीविनाम् अर्थ= :अर्थके लिए लालसा रखने वालों के लिए अर्थ धन ।उद्विग्नचेतसां धृति= :उद्विग्न चित्तवालों के लिए धैर्य। नानावस्थान्तरात्मकम् =सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद आदि नानाअवस्थाओं की अभिव्यक्ति करने वाला। उत्तमाधममध्यानां नराणाम्= उत्तम् मध्यम और अधम कोटि के मनुष्यों के हितोपदेशजननम् =हितकारी उपदेश देने वाला।धृति क्रीडा सुखादि =धैर्य,क्रीडा और सुखादि की सृष्टि करने वाला । रसेषु भावेषु सर्वक्रियासु अथ =रसों, भावों तथा सभी कर्मो के सम्पादन के प्रदर्शन में। सर्वोपदेश जननम्= सभी मनुष्यों के लिए उपदेश की सृष्टि करने वाला। एतद् = यह यशस्यम् =यश: प्रद। लोकोपदेशजननम् = लोक के लिए उपदेशदायक। शिल्पम् =शिल्प ।अस्मिन् = इस ।नाट्ये =नाट्य में। भवद्भि= : आप लोगों को । अमरान् प्रति =देवों के प्रति । मन्यु :ने कर्त्तव्य= : क्रोधनहीं करना चाहिए। सप्तद्वीपानुरणं भिवष्यति =सातों द्वीपों के लोकवृत्त का अनुकरण होगा । अनुकरणम् =अनुरण ही है । सुख-दु:खसमन्वित= : सुख और दु:ख से युक्त । अंगाद्यभिनयोपेत= :आंगिक आदि अभिनयों से युक्त होने पर अभिधीयते =कहा जाता है। वेद्य विद्येतिहासानाम्= वेदो, विद्याओं, इतिहासों के। आख्यानपरिकल्पनम् =आख्यानों का परिकल्पक। विनोदकरणम् =सामाजिकों का अनुरंजन करने वाला। भविष्यति =होगा। श्रुति स्मृति सदाचार परिशेषार्थ कल्पनम् =श्रुतियों तथा स्मृतियों पर आधारित सदाचारक चित्रण। विनोदजननम् =विनोद का जनक। सर्वान् देवान् आह =सभी देवों से कहा । मन्त्रौषधिसमन्वितै= : मन्त्रों और औषिधियों से युक्त । बलिप्रदानै :होमैश्च= बलि प्रदानकरते हुए। भोज्यै= : मोदकादि भोज्य पदार्थो।पानैश्च = और दूध आदि पेय पदार्थो द्वाराबलि :समुपकल्प्यताम्= बलि प्रदान करने का विधानकरें। मर्त्यलोकगता= :मृत्युलोक में रहने वाले । शुभां पूजाम् अवाप्स्यथ =इस शुभ पूजा –विधान को प्राप्त कर लोगे। रगंम् अपूजयित्वा =रंगशाला की पूजा किये बिना ।तु =तो । प्रेक्षां नैव प्रवर्तयेत् =प्रेक्षागृह में प्रवेश ही नहीं करना चाहिए। प्रेक्षाम् =प्रेक्षागृहमें। कल्पयिष्यति =नाट्य प्रस्तुत करेगा।तत् ज्ञानम् =वह ज्ञान ।निष्फलम् =निष्फल होगा। च =और वह। तियग्र्योनिं यास्यति = पशु-पक्षी, कीट-पतंगादिरूप तिर्यक योनि को

प्राप्त होगा। रंगदैवतपूजनम्= रंगदेवताका पूजन।यज्ञेनसम्मितम्= यज्ञकेसमानहै। नाट्ययोक्तृभि= : नाट्य के प्रयोक्ताओं को। सर्वप्रयत्नेन = सभी प्रयत्नों के साथ ।नर्तक:अर्थपति :वाऽपि= नर्तक हो या धन-कुबेर राजा-रईस आदि। अपचयं प्राप्नोति= ह्रास को प्राप्त होगा । यथादृष्टम् =शास्त्रोक्त नियमानुसार। स शुभान् अर्थान्लप्स्यते =वह शुभ वस्तुओं को प्राप्त करेगा। स्वर्गलोकं च यास्यति =और स्वर्गलोक गमन करेगा। भगवान् द्रुहिण= :भगवान्ब्रह्माजी ने। देवतै :सह= देवों के साथ । रंगपूजांकुरूष्व =रंगपूजा करो। समचोदयत् = प्रेरित किया।

व्याख्या-ऐश्वर्यवान् मनुष्यों का विलास,दु:ख से अत्यन्त पीडि.त व्यक्ति के लिए स्थैर्यय उत्साहवर्द्धन,अर्थ के लिए जीवनयापन करने वालों के लिए अर्थ और उद्विग्न चित्त वालों के लिए धैर्य भी है। इस प्रकार यह नाट्यवेद रति आदि नाना स्थायी भावों तथा ईर्ष्या , द्वेष हर्ष,असूया आदि व्यभिचारी भावों से सम्पन्न दु:ख– सुख,हर्ष शोक आदि अवस्थाओं का प्रदर्शनकरने वाला तथा लोकाचार का अनुकरण करने वाला है।- यह नाट्यवेद उत्तम, मध्यम और अद्यम विचार के मनुष्यों के कर्मो पर आधारित ,धैर्य , क्रीडा, सुख आदि भावों को उत्पन्न करने वाला और सामाजिकों के लिए कल्याणकारी उपदेश का जनक होगा।--वह ज्ञान नहीं, वह शिल्प नहीं वह विद्या नहीं , वह कला, वह योग नहीं, और कर्म भी नहीं जो इस नाट्यवेद में नहीं दिखाया जाता है।--इस नाट्यवेद को देवताओं, असुरों, राजाओं, इतना ही नहीं राजा के परिजनों तथा महषियों के वृत्तान्तों का दर्शन कराने वाला होता है इसे जानना भी चाहिए।--संसार के प्राणियों का सुख और दु:ख से युक्त जो स्वभाव है, वही आंगिक अभिनयों से युक्त होकर नाट्य कहलाता है।--यदि यह नाट्य उपर्युक्त गुणों वाला होगा तो इसी बीच ब्रह्मा ने सभी देवताओं से कहा -आज नाट्यमण्डप में जाकर उसकी विधि –विधान से पूजाकीजिए। मन्त्रों एवं औषधियों से युक्त बलि प्रदानकरते हुए, हवन करते हुए,मोदक आदि भोज्य प्रदार्थो से खीर दुग्ध आदि पदार्थो द्वारा बलि का विधानकीजिए । मृत्यु लोक में निवास करने वाले सभी लोग इस पूजा की विधि जानकर रंगपीठ की पूजा किये बिना प्रेक्षागृह में प्रवेश नहीं करेगे ।-- ब्रह्मा जी ने आचार्य भरत के सामने देवताओं से कहा रंगदेवता की पूजा किये बिना जो प्रेक्षागृह में जाकर नाट्य का आयोजन करेगा उसका सभी ज्ञान निसफल होगा। और वह पुशु पक्षीआदिकी तिर्यग्योनि में जन्म लेगा।--रंगदेव का पूजन एक यज्ञ के समान है। अत :सभी प्रयत्नों से नाट्य के प्रयोक्ताओं को रंगपूजन करना चाहिए। नर्तक हो या राजा जो कोई भी रंग पूजा नही करेगा अथवा किसी से नहीं करायेगा वह अवश्य ही हानि को प्राप्त होगा किन्तु जो विधि पूर्वक रंगपूजा करेगा वह शुभ फल को प्राप्त करेगा तथा स्वर्ग लोक जायेगा। ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने देवों के साथ मुझको 'रंग पूजा करों' कह कर प्रेरित किया।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश यहाँ प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर दिये गये है, जिनमें से एक सही है सही उत्तर का चयन कीजिए।

1. नाट्यवेद के उत्पत्ति-कर्ता कौन थे-

क. ब्रह्माजी ख. इन्द्र

ग. कोहल घ. दत्तिल

2.ब्रह्माजी ने नाट्यवेद का ज्ञान किसे प्रदानकिया-

क. इन्द्र ख. शिव को

ग. सरस्वती को घ. भरत को

3. भरत ने प्रथम नाट्य-प्रयोग में कितनी वृत्तियॉ प्रयुक्त की थी-

क. चार ख. तीन

ग. दो घ. एक

4. भरत के नाट्य-प्रयोग में उत्पात करने वाले कौन थे-

क. दैत्य ख. विघ्न

ग.दोनों घ. कोई नहीं

5. विघ्नों की आहत किसने किया-

क.बह्मा ने ख. भरत ने

ग. भरत पुत्रों ने घ.इन्द्र ने

6. ब्रह्माजी ने दैत्यों को सन्तुष्ट करने के लिए किस नीति का प्रयोग किया-

क. साम का ख.दाम का

ग.भेद का घ.दण्ड का

7. भरत द्वारा प्रदत्त अप्सराओं की संख्या कितनी थी -

क. सोहल ख. बीस

ग. चौबीस घ.अट्ठाईस

8. भरत के भाण्ड-वादन के लिए कौन नियुक्त किये गये थे-

क. सशिष्य स्वाति ख.नारद

ग. दत्तात्रेय घ. शाण्डिल्य

9. प्रेक्षा में प्रवेश करने से पूर्व क्या आवश्यक है-

क. रंगपूजा ख. यज्ञ

ग. नान्दी पाठ घ. नटों की साज-सज्जा

10. रंगपूजा का सर्वप्रथम अधिकारी कौन है-

क.कवि ख. आचार्य

ग.रंगकर्मी घ. नट

11. नाट्य का संचालक कौन होता है-

क. कवि ख.आचार्य

ग.नट घ.सूत्रधार

12. ब्रह्माजी ने किसकी विनय सुनकर नाट्यवेद की रचना की-

क.इन्द्र की ख.गन्धर्वों की

ग.कुबेर की घ. देवो की

13. नाट्य का प्राण क्या है-

क.सुत्रधार ख.रसचर्वणा

ग.संवाद घ.अभिनय

14. भरतमनि ने पहले नाटक को कितनी वृत्तियों के आधार पर तैयार किया-

क.दो के ख.तीन के

ग.चार के घ.पॉच के

15. भरतमुनि ने पाठ किस वेद से ग्रहण किया-

क.ऋग्वेद से ख.यजुर्वेद से

ग.अथर्ववेदसे घ.सामवेद से

5.6. सारांश

नाट्यशास्त्र के श्लोकार्थ द्वारा सम्यक अध्ययन करने की इस इकाई में आपने आत्रेय आदि मुनियों के प्रश्न करने परे आर्चाय भरतमुनि द्वारा उपदेषित नाट्य विधा का अवलोकन कर उसकी समस्त पृष्ठ भूमि की जानकारी प्राप्त किया। यह एक अत्यन्त प्राचीन बात है कि आचार्य भरत नाट्य के विशेषज्ञ थे उन्होंनअपने शिष्यों को और पुत्रों को नित्य रूप से नाट्यवेद पढाया उस नाट्य वेद के प्रयोग का प्रशिक्षण निरन्तर दिया। एक समय प्रात :काल जब वे अपने जप को समाप्त कर अध्ययन अध्यापन से विरत होकर अपने पुत्रों के बीच में बैठे हुए थे, उसी समय आत्रेय आदि ऋषियों ने उनके समक्ष जाकर शिष्यत्व प्रस्तुत करते हुए उनसे पॉच प्रकार के प्रश्न पूछा -

1. आप ने जिस नाट्य वेद को सुन्दरतम् वस्तुओं के समाहरण के लिए गुम्फित किया है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी।

2. इस नाट्य वेद कि रचना किसकें लिए की गयी।

3. नाट्य वेद के कितने अंग है।

4. नाट्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस प्रमाण की आवश्यकता है।

5. इसके कितने प्रकार है और इसका प्रयोग किस प्रकार होता है।

इन समस्त प्रश्नों के उत्तर में ब्रह्मा द्वारा जो भी कहा गया है वह प्रथम अध्याय की दोनों इकाईयों में वर्णित है। उनका यह उत्तर है वही नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के समस्त श्लोंको मे निबद्ध है। मंगलाचरण से लेकर श्लोक संख्या 127तक के समस्त वर्णन में नाट्य की उत्पत्ति प्रेक्षागृह की पूजा और नाट्य की विशेषताओं प्रयोजनों के वर्णन किये गये। ये सब दोनों इकाईयों प्राप्य है जिनके अध्ययन से आप नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित मूल भूत तथ्यों का ज्ञान करा सकेंगे।

5 . 7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

(1)क (2) .घ (3) .ख (4) .ग (5) .घ (6) .क (7) .ग (8) .क (9) .क (10) .ख (11) .घ (12).घ (13) .ख (14) .ख (15) .ख

5 .8संदर्भग्रन्थ सूची-

1. पारस नाथ द्विवेदी-भरतमुनि-नाट्यशास्त्र- सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि वाराणसी।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृतव्याकरणम्-अभिषेकप्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टेवामशिवराम(1939ई0)संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृतभाषाविज्ञान- ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर।

5.9सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0शिवबालक (2010 ई0) संस्कृतरचनाअनुवादकौमुदी, हंसाप्रकाशन, जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षिपतंजलि (1969 ई0) व्याकरणमहाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरणचन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

5 .10निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य भरत का नाट्य प्रयोग पर एक निबन्ध लिखिए।

2. आचार्य भरत ने अपना प्रथम प्रयोग किस प्रकार प्रस्तुत किया, विवेचना कीजिए।

3. नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय पर एक निबन्ध लिखिए।

प्रथम सेमेस्टर /SEMESTER-I

खण्ड 2. दशरूपक

इकाई 1: रूपक भेद एवं सामान्य परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इकाई की पाठ्य सामग्री
1.3.1 नाट्य, रूप एवं रूपक
1.3.2 रूपक भेद
1.3.3 नाटक
1.3.4 प्रकरण
1.3.5. भाण
1.3.6 प्रहसन
1.3.7 डिम
1.3.8 व्यायोग
1.3.9 समवकार
1.3.10 वीथि
1.3.11 अंक
1.3.12 ईहामृग
1.3.13 उपरूपक
1.3.14 नाटिका
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। यह इकाई धनञ्जय विरचित दशरूपकम् के 'रूपक भेद एवं सामान्य परिचय' पर आधारित है। इस इकाई में नाट्य, रूप एवं रूपक के अर्थ के साथ-साथ रूपकों के आधारभूत तत्व के विषय में चर्चा की गई है। 'वस्तु नेता एवं रस' इन तीन भेदक तत्वों के आधार पर संस्कृत के नाट्याचार्यों द्वारा मान्य रूपक के दस भेदों का लक्षण तथा स्वरूप क्या होता है? एतद्विषयक धनंजय के विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्य के दस प्रकारों-नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथि, अंक और ईहामृग के साथ-साथ प्रमुख उपरूपक भेद नाटिका के धनञ्जय के द्वारा मान्य लक्षणों को भलीभाँति जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि नाट्य, रूप, रूपक क्या है?
- समझा सकेंगे कि रूपक के भेदक तत्त्व कौन-कौन से हैं। रूपक किस पर आश्रित होते हैं तथा कितने प्रकार केहैं?
- बता सकेंगे कि 'नाटक' की विशेषताएँ क्या होती हैं?
- समझा सकेंगे कि 'प्रकरण किसे कहते हैं?
- समझा सकेंगे कि रूपक भेद 'भाण' का लक्षण क्या है?
- व्याख्यायित कर सकेंगे कि प्रहसन का लक्षण तथा उसके भेद क्या हैं?
- भलीभाँति समझा पाऐंगे कि रूपक भेद 'डिम' एवं व्यायोग क्या होते हैं?
- सम्यक् प्रकार से बता सकेंगे कि 'समवकार' एवं 'वीथि' रूपक भेद की क्या विशेषताएँ होती हैं?
- अच्छी तरह समझा सकेंगे कि 'अंक' और ईहामृग क्या होते हैं?
- यह भी भलीभाँति समझा सकेंगे कि उपरूपक कौन-कौन से हैं? तथा प्रमुख उपरूपक 'नाटिका' की क्या विशेषताएँ होती हैं?

1.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

1.3.1 नाट्य, रूप एवं रूपक:

आप इस बात को जानते ही होंगे कि साहित्याचार्यों द्वारा काव्य के दो भेद किए गए हैं- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। इनमें से अभिनयपूर्वक रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाने से हमारे नेत्रों का विषय बनने वाले नाटकादि दृश्य काव्य कहलाते हैं। इस दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक भी कहा जाता है, जो इसकी अलग विशेषताओं पर आधारित भिन्न-भिन्न नाम हैं। **'अवस्थानुकृतिर्नाट्म'** अभिनय करने वाले पात्र (नट आदि) के द्वारा राम, दुष्यन्त आदि नायक तथा सीता, शकुन्तला आदि नायिकाओं की सुख-दुख, हर्ष-शोक आदि अवस्थाओं का, अपने अभिनय कौशल से अनुकरण किया जाना ही नाट्य कहलाता है। नाट्य का अर्थ है अभिनय। अतः अभिनेय होने के कारण नाटकादि को नाट्य कहा जाता है। 'रूपं दृश्यतयोच्यते' वह नाट्य ही अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शित होने से हमारे नेत्रों के लिए दर्शनीय होता है। इसीलिए इसी को रूप भी कहा जाता है। जैसे कि प्रकृति में नीला, पीला, लाल, हरा आदि पदार्थ (वस्तुएँ) नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटकादि भी नेत्र ग्राह्य होने के कारण रूप कहलाता है। 'रूपक तत्समारोपात्' रंगमंच पर राम आदि का अभिनय करने वाले पात्र (नट) में सहृदय जन राम आदि का आरोप कर लेते हैं अर्थात् उसे राम आदि ही समझने लगते हैं। नट पर राम आदि का आरोप किए जाने के कारण जो पहले नाट्य और रूप कहा गया है वही रूपक भी कहलाता है। इस तरह नेत्रों का विषय बनने से जो काव्य दृश्य काव्य रूप है वही अभिनेयता के कारण नाट्य और रूपक भी है।

1.3.2 रूपक भेद:

आपकी जानकारी में होगा कि रूपक अनेक तरह के होते हैं। दशरूपककार धनंजय ने **"वस्तुनेता रसस्तेषां भेदक:"** कहकर वस्तु, नेता एवं रसभेद के आधार पर रूपक के दस भेदों का निरूपण किया है। **'दशधैव रसाश्रयम्'** से धनंजय ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि रूपक रस पर आश्रित होते हैं और इनकी संख्या दस ही है। तात्पर्य यह है कि शुद्ध रूप में दस प्रकार का ही नाट्य होता है जो कि रसाश्रित होता है। जहाँ रसों का संकर होता है वह शुद्ध रूपक न होकर संकीर्ण रूपक या उपरूपक कहलाता है। रस पर आधारित दस रूपक इस प्रकार इंगित किए गए हैं-

नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:।
व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा: इति।।"

नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि अंक और ईहामृग ये दस रूपक भेद

कहे गए हैं। इन दश रूपकों का समीक्षात्मक विववरण इस प्रकार है:-

1.3.3 नाटक:

नाटक को सभी रूपकों की प्रकृति कहा जाता है। क्योंकि यह सभी रूपकों में प्रमुख है। इसमें रसों की प्रचुरता होती है। रूपक के सभी लक्षण वस्तु नेता, एवं रस सम्बन्धी नाटकों में पाए जाते हैं। नाटक के प्रारम्भ में पूर्वरंग (मंगलाचरण) आदि का विधान किया जाता है। तत्पश्चात् प्रस्तावना के बाद नाटक का अभिनय अंकों के अर्न्तगत किया जाता है। नाटक का कथानक प्रख्यात अर्थात् इतिहास (रामायण, महाभारत, पुराणादि) से उद्धृत होता है। इसका नायक रमणीय गुणों से युक्त तथा प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ कोई राजा (राजर्षि) या दिव्य पुरूष होता है। उसे धीरोदात्त पराक्रमी, यश की अभिलाषा करने वाला, उत्साह सम्पन्न कृष्णादि की तरह दिव्य, रामादि की तरह दिव्यादिव्य दुष्यन्तादि की तरह अदिव्य होना चाहिए। नाटक का इतिवृत्त बनने वाली प्रख्यात कथा में यदि कोई अंश नायक की धीरोदात्तता की दृष्टि से या रसानुभूति की दृष्टि से अनुचित हो तो उसे हटा देना चाहिए या उसकी दूसरे प्रकार से कल्पना कर ली जानी चाहिए। नाट्यारम्भ से पूर्व यदि कोई वृतान्त ऐसा हो जिसे रंगमंच पर दिखाना संभव न हो किन्तु दर्शकों के लिए उसे जानना जरूरी हो तो अंकों से पहले विष्कम्भक की योजना करके उसकी सूचना दी जानी चाहिए।

कथानक के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ-बीज बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य तथा पाँच कार्यावस्थाएँ-आरम्भ, प्रयत्न या यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम होने चाहिए।

क्रमशः एक-एक अर्थ प्रकृति के क्रमशः एक एक कार्यावस्था के साथ होने वाले संयोग से पाँच सन्धियाँ मुख (बीज+आरम्भ), प्रतिमुख (बिन्दु+प्रयत्न), गर्भ (पताका+प्राप्त्याशा), विमर्श अथवा अवमर्श (प्रकरी+नियताप्ति) तथा निर्वहन (कार्य$फलागम) हैं। पताका एवं प्रकरी का नाटक में होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए गर्भ एवं विमर्श सन्धि में ये हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती है। नाटक में कभी भी कथा के मुख्य नायक का वध नहीं दिखाया जाना चाहिए। यह तथ्य संस्कृत नाटकों की सुखान्तता को इंगित करता है। नाटक का विभाजन अंकों में होना चाहिए तथा इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।

1.3.4 प्रकरण:

प्रकरण की कथा ऐतिहासिक न हो कर कवि की कल्पना से निर्मित एवं साधारण जन के जीवन पर आधारित होती है। इसका नायक मन्त्री, ब्राह्मण या वणिक् (वैश्य/व्यापारी) में से कोई एक

होता है। वह धीर प्रशान्त कोटि का होता है तथा सदैव धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि के लिए तत्पर रहता है। उसकी कार्यसिद्धि अनेकानेक विध्नों से बाधित होती है। इस रूपक भेद में श्रंगार अथवा वीर में से कोई एक अंगी रस होता है तथा अन्य रस गौण रूप में होते हैं। इसमें पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पंच कार्यवस्थाएँ, पंच सन्धियाँ तथा अंक संख्या, नाटक की तरह ही होती है। नायिका की दृष्टि से प्रकरण तीन तरह का होता है एक कुलजनिष्ठ, जिसमें केवल कुलजा (कुलीन वंशोत्पन्न) नायिका होती है। दूसरा जिसमें केवल गणिका नायिका होती है और तीसरा जिसमें कुलजा और गणिका दोनों ही नायिकाएँ होती हैं।

1.3.5 भाण:

भाण नामक रूपक भेद में कोई चतुर तथा बुद्धिमान (पण्डित) विट अपने या दूसरे के अनुभव के आधार पर किसी धूर्त के चरित्र का वर्णन करता है। भाण में एक ही अंक तथा (विट) एक अकेला पात्र होता है। वह विट आकाश भाषित के द्वारा स्वयं ही सम्बोधन और उत्तर प्रत्युत्तर करते हुए कथा को आगे बढ़ाता है। इस रूपक में शौर्य एवं सौभाग्य (विलासादि) के वर्णन से वीर तथा श्रृंगार रस की सूचना विट के द्वारा दी जाती है। इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। इसकी कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसमें मुख तथा निर्वहण ये दो संधियाँ अंगों सहित होती है। साथ ही लास्य के दस अंगों की योजना भी इसमें होती है।

1.3.6 प्रहसन:

हास्य रस प्रधान प्रहसन की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसमें एक या दो अंक होते हैं। अन्य आचार्य इसे भाण की तरह एकांकी मानते है। प्रहसन तीन प्रकार का होता है शुद्ध, विकृत और संकीर्ण। पाखण्डी कहलाने वाले धूर्त विप्र, एवं धूर्त दास-दासी आदि के चरित्र, वेश तथा भाषादि से युक्त प्रहसन शुद्ध प्रहसन है। कामुक की तरह वेश वाले तथा वैसी ही भाषा बोलने वाले नपुंसक, कंचुकी, तपस्वी आदि पात्रों का समावेश जिस प्रहसन में हो वह विकृत प्रहसन तथा धूर्त पात्रों के चरित्रांकन से युक्त प्रहसन संकीर्ण प्रहसन कहलाता है। यह रूपक हास्य उत्पन्न करने वाले कथनों से परिपूर्ण होता है। इसका नायक बौद्ध भिक्षु, शैव सन्यासी, तपस्वी या गृहस्थ हो सकता है। उसके परिहास पूर्ण संवादों से दर्शकों में हास्य उत्पन्न होता है। प्रहसन में मिथ्या आचरण करने वाले नायक को सुसंस्कृत भाषा में सभ्य जन की तरह बोलते हुए दिखाया जाता है। यहाँ नाटकीय कथानक के कुछ अंश में विशेष भाव को प्रकट करते हैं तथा शेष अंश में मिथ्याचारी नायक के जीवन के उन अंशों को दिखाया जाता है जिनका उपहास करना यहाँ लक्षित होता है। यह एक अंक वाला रूपक है। इसमें भी मुख तथा निर्वहण दो सन्धियाँ होती है। यहाँ वेशभूषा तथा भाषा

की विकृति से हास्य उत्पन्न होता है।

13.7 डिम:

डिम की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसमें स्त्री पात्रों के अभाव में कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्त्वती, आरभटी और भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। इसके नेता देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस तथा नाग आदि मानवेत्तर योनि के लोग होते हैं अथवा भूत, प्रेत, पिशाच आदि सोलह उद्धत नायक इसमें होते है। इसमें रौद्र रस अंगीरस होता है तथा श्रृंगार एवं हास्य को छोड़कर अन्य रस (करूण, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) अंग रूप में होते हैं। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त (उन्मत्त) आदि की चेष्टाओं तथा सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि के दृश्यों से युक्त होता हैं। इस रूपक में चार अंक होते है। इसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण ये चार संधियाँ होती हैं।

1.3.8 व्यायोग:

व्यायोग का इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है। इसका नायक कोई इतिहास प्रसिद्ध उद्धत व्यक्ति होता है। इसमें मुख प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन संधियाँ तथा श्रृंगार एवं हास्य के अलावा अन्य छः रस (करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) दीप्त होते हैं। इसमें ऐसे युद्ध का वर्णन होता है जिसके मूल में कोई स्त्री कारण न हो। जैसे- 'जामदग्न्य जय' नामक व्यायोग में प्रसिद्ध उद्धत नायक परशुराम ने पितृवध के कारण क्रोधित होकर सहस्रबाहु से युद्ध किया है। यह रूपक एक अंक का ही होता है, जिसमें एक ही दिन की कथा वर्णित होती है। कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्वती, आरभटी और भारती रूप तीन वृत्तियाँ इसमें होती। व्यायोग नामक रूपक भेद में पुरूष पात्रों की ही बहुलता होती है।

1.3.9 समवकार:

देवों और असुरों से सम्बद्ध पुराण प्रसिद्ध कथा ही समवकार का इतिवृत्त होता है। इसमें सात्वती, आरभटी, भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। कौशिकी वृत्ति इसमें स्वल्प रूप में होती है। इसमें बारह नायक होते हैं जो इतिहास प्रसिद्ध देवता और दावन होते हैं। इन सभी नायकों की फलसिद्धि भी पृथक होती है। ये सभी नायक वीर रस से पूर्ण होते हैं। जैसे समुद्रमन्थन में परिलक्षित होते हैं। समवकार में तीन अंक होते हैं प्रत्येक अंक में क्रमशः तीन प्रकार का कपट (वस्तुकृत, स्वभावकृत और दैवकृत) तीन प्रकार का विद्रव (नगरोपरोध युद्ध तथा वायु, अग्निकृत) तथा तीन प्रकार का श्रृंगार (धर्म, अर्थ एवं काम से युक्त श्रृंगार) होता है। इसमें बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक नही होता।

1.3.10 वीथि:

यह रूपक भेद भी एकांकी है। वीथि में कैशिकी वृत्ति होती है। इसमें श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक न होने के कारण वह बहुत से उपायों द्वारा केवल सूच्य मात्र होता है। अन्य रसों का भी स्वल्प मात्रा में स्पर्श किया जाता है अर्थात् अन्य रस भी इसमें सूचित मात्र होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण नामक दो संधियाँ होती हैं। यह प्रस्तावना के उद्घात्यक आदि अंगों से युक्त होती है। वीथि के 13 अंग होते है। इसमें पात्र संख्या एक या दो ही होती है।

1.3.11 अंक:

नाटक के अन्तर्विभाग (अंक) तथा इस रूपक भेद में किसी प्रकार का संशय न हो इसलिए इस रूपक भेद का दूसरा नाम 'उत्सृष्टिकांक' कहा जाता है। उत्सृष्टिकांक की कथावस्तु तो इतिहास प्रसिद्ध होती है किन्तु प्रख्यात कथा को ग्रहण करते हुए भी कवि अपने बुद्धि वैभव से उसमें परिवर्तन कर लेता है। इसका अंगी रस करूण रस है। इसके नायक सामान्य जन होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण संधि एवं भारती वृत्ति तथा उसके अंगों की योजना की जाती है। इसमें एक ही अंक होता है। करूण रस प्रधान होने के कारण यह रूपक भेद स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है। अर्थात् इसमें शोकग्रस्त विह्वल स्त्रियों का विशेष रूप से चित्रण होता है। इसमें वाक् युद्ध तथा मौखिक जय-पराजय का वर्णन किया जाता है। कोई-कोई आचार्य इसमें एक से तीन तक अंको का विधान करते हैं।

1.3.12 ईहामृग:

मृग की तरह अलभ्य (अप्राप्य) किसी नायिका की ईहा (अभिलाषा) के वर्णित होने के कारण ही इस रूपक भेद को ईहामृग कहा जाता है। इसका इतिवृत्तइतिहास तथा कवि कल्पना का मिश्रित रूप होता है। इसमें चार अंक तथा मुख, प्रतिमुख, निर्वहण रूप तीन सन्धियाँ होती हैं। इसमें देवता तथा मनुष्य में से कोई एक नायक तथा दूसरा प्रतिनायक होता है। वे धीरोदात्त कोटि के होते हैं। इसमें प्रतिनायक भ्रमात्मक एवं विपरीत बुद्धि के कारण अनुचित कार्य करने वाला होता है। वह किसी दिव्य स्त्री (जो उससे प्रेम नही करती) का अपहरण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में कवि उस प्रतिनायक के आश्रय से श्रृंगाराभास का कुछ कुछ वर्णन इस रूपक में करता है। नायक प्रतिनायक का विरोध पूर्णता पर पहुँच कर भी किसी न किसी बहाने से इसमें युद्ध को रोक दिया जाता है। प्रतिनायक के वध की स्थिति आ जाने पर भी उसका वध टाल दिया जाता है। रूपक के मूल कथानक में महापुरूष के वध का वर्णन भले ही अंकित हो, किन्तु रूपक में उसे कदापि प्रदर्शित नही किया जाता है अर्थात् इसके इतिवृत्त में प्रतिनायक का वध नहीं दिखाया जाता।

1.3.13 उपरूपक:

इन दस रूपकों के अलावा नाट्याचार्यो ने अट्ठारह उपरूपक भेद भी बताए हैं जो इस प्रकार हैं - 1. नाटिक 2. त्रोटक 3. गोष्ठी 4. सट्टक 5. नाट्यरासक 6. प्रस्थानक 7. उल्लास्य 8. काव्य 9. प्रखण 10. रासक 11. संलापक 12. श्रीगदित 13. शिल्पक 14. विलासिका 15. दुर्माल्लिका 16. प्रकरणिका 17. हल्लीश 18. भाणिका इनमें से नाटिका, त्रोटक, सट्टक, रासक एवं भाणिका ही प्रमुख है। दशरूपककार धनंजय ने दशरूपकम मे अन्य संकीर्ण या उपरूपक भेदों का निराकरण करने के लिए केवल नाटिका का लक्षण मात्र दे दिया है जो निम्न प्रकार है-

1.3.14 नाटिका:

नाटिका की कथावस्तु प्रकरण नामक रूपक भेद के समान अर्थात् कवि कल्पित होती है। इसका नायक नाटक के समान कोई राजा होता है। इस तरह नाटिका में नाटक एवं प्रकरण के लक्षणों का मिश्रण होने से यह संकीर्ण रूपक है। इसे प्रमुख उपरूपक माना गया है। इसका नायक प्रख्यात एवं धीर ललित कोटि का होता है। नाटिका का अंगीरस श्रृंगार होता है। नाटिका में कैशिकी वृत्तितथा स्त्री पात्रों की बहुलता होती है। इसमें चार अंक होते हैं तथा प्रत्येक अंक में कैशिकी वृत्ति के चार अंग नर्म, नर्मस्फिंज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ क्रमशः होते हैं अर्थात् प्रत्येक अंक में क्रमशः एक-एक अंग होता है।

नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं जेष्ठा एवं कनिष्ठा। ज्येष्ठा राजवंश में उत्पन्न हुई, प्रगल्भा, गम्भीरा तथा मानिनी होती है। उसी के अधीन होने के कारण कनिष्ठा नायिका के साथ नायक का मिलन बड़ी कठिनाई से होता है। कनिष्ठा नायिका भी राजवंश में उत्पन्न कोई राजकन्या तथा मुग्धा अर्थात् नवयुवती तथा नवीन कामभाव वाली होती हैं। नायक के अन्तःपुर में वास अथवा संगीत आदि के संबन्ध से वह नायक के निकट होती है। उस नवीन नायिका के विषय में सुनकर अथवा उसे देखकर नायक का उसके प्रति उत्तरोत्तर नवीन अनुराग होता है। इसमें नायक देवी अर्थात् ज्येष्ठा नायिका के भय से शंकापूर्वक नवीन नायिका की ओर प्रवृत्तहोता है। हर्ष द्वारा रचित 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' नाटिका के उदाहरण है।

1.4 सारांश

दृश्य काव्य वह है जो दर्शनीय हो। कोई काव्य दर्शनीय तभी हो सकता है जबकि उसे रंगमंच पर पात्र (नट) अपने अभिनय द्वारा प्रस्तुत करें। इस तरह अभिनेयता रूप विशेषता के कारण ही दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक की संज्ञा भी दी जाती है। रूपक रसाश्रित होते हैं। इनकी संख्या दस

मानी गई है। नाटिका आदि की गणना रूपक में न करके उपरूपकों के अन्तर्गत की गई है। नाटक को सभी रूपकों की 'प्रकृति' अर्थात मूल माना जाता है। इसमें नाट्य के सभी प्रमुख तत्वों वस्तु, नेता एवं रस का सांगोपांग निरूपण होता है। नाटक तथा प्रकरण ही मात्र ऐसे रूपक भेद हैं जिनमें कथावस्तु का विकास पंच अर्थ प्रकृतियों पंच कार्यावस्थाओं तथा पंच संन्धियों के आयोजन के साथ होता है। रूपकों के वे भेद, जो एक, दो या तीन अंक वाले होते है अभिनय में सुविधाजनक होते है। इनमें पात्र संख्या कम होती है। अतः इनके आयोजन हेतु अधिक तामझाम की जरूरत नहीं होती। कतिपय रूपक भेद समाज के कुत्सित रूप पर व्यंग्य करने या हास्योत्पादक होने के कारण बेहद लोकप्रिय रहे हैं। 'प्रहसन' तो आज भी 'कॉमेडी' के रूप में रंगमंच की लोकप्रिय विधा है। इसी तरह प्रकरण भी अत्यन्त लोकप्रिय नाट्य विधा है। शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' पर बनी फिल्म 'उत्सव' प्रकरण नामक रूपक भेद की लोकप्रियता को दर्शाता है। नाटक के विषय में तो कहा ही गया है **''काव्येषु नाटकं रम्यं।''**इनके अलावा नाटिका एक ऐसा उपरूपक भेद है जो नाटककारों को विशेष प्रिय रहा है। अतः दस रूपकों के अन्तर्गत न गिने जाने पर भी हमने उसका लक्षण निरूपण इकाई में किया है।

अभ्यास प्रश्न।

लघु उत्तरीय

टिप्पणी:

I. डिम
II. प्रहसन
III. भाण

बहुविकल्पीय प्रश्न:

प्रश्न 1. दशरूपकम् का विभाजन किसमें है?

(क) सर्ग (ख) उच्छवास

(ग) उल्लास (घ) प्रकाश

प्रश्न 2.दशरूपकम् में कुल कितने विभाग है?

(क) चार (ख) आठ

(ग) बारह (घ) सोलह

प्रश्न 3.धनंजय के अनुसार सर्वप्रमुख रूपक भेद कौन सा है?

(क) प्रकरण (ख) नाटिका

(ग) नाटक (घ) प्रहसन

प्रश्न 4.नाटक का नायक कैसा होना चाहिए?

(क) धीरललति (ख) धीरशान्त

(ग) धीरोदात्त (घ) धीरोद्धत

प्रश्न 5.कुलजनिष्ठ, गणिकानिष्ठ एवं उभयनिष्ठ निम्नलिखित में से क्या होता है?

(क) भाण (ख) प्रकरण

(ख) नाटक (घ) वीथि

प्रश्न 6.शुद्ध, विकृत एवं संकीर्ण किसके भेद हैं?

(क) प्रकरण के (ख) भाण के

(ग) प्रहसन के (घ) डिम के

प्रश्न 7.समवकार का इतिवृत्त कैसा होता है?

(क) प्रख्यात (ख) उत्पाद्य

(ग) मिश्र (घ) दिव्य

प्रश्न 8.प्रहसन का अंगीरस क्या होता है?

(क) श्रृंगार (ख) हास्य

(ग) करूण (घ) अद्भुत

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

प्रश्न 1. .....रस्तेषां भेदकः।

प्रश्न 2.अंक नामक रूपक भेद का दूसरा नाम .....है।

प्रश्न 3.प्रकरण का नायक विप्र .....या आमात्य में से कोई एक होना चाहिए।

प्रश्न 4.दशधैव.....।

प्रश्न.5.....नाट्य।

प्रश्न 6.रूपकं तत्.....।

अतिलघुत्तरीय:

प्रश्न 1.दशरूकम् का लेखक कौन है?

प्रश्न 2.दशरूपकम् का वृत्ति भाग किसने लिखा है?

प्रश्न 3.व्यायोग की कथावस्तु कैसी होती है?

प्रश्न 4.प्रकरण का अंगीरस क्या होता है?

प्रश्न 5.स्वानुभूत या परानुभूत धूर्त चरित्र का वर्णन किस रूपक में होता है?

प्रश्न 6.उपरूपकों की संख्या कितनी मानी गई है?

प्रश्न 7. नाटक की पाँच अर्थप्रकृतियाँ कौन सी है?

प्रश्न 8.नाटक की पाँच कार्यावस्थाएँ क्या मानी गई हैं?

सत्य/असत्य बताइये:

1. व्यायोग नामक रूपक में स्त्रीहेतुक युद्धवर्णन होता है।
2. नाटक का अंगीरस वीर अथवा श्रृंगार में से कोई एक होता है।
3. नाटक में चार सन्धियाँ होती है।
4. भाण नामक रूपक में एक ही पात्र 'विट' होता है।
5. नाटिका की गणना उपरूपक में की जाती है।
6. नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।

7. प्रकरण का नायक कोई राजा या दिव्य पुरूष होता है।
8. डिम नामक रूपक की कथावस्तु प्रसिद्ध (प्रख्यात) होती है।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री को भली भाँति पढ़कर स्वयं लिखे, इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर पाऐंगे। उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं किन्तु हमारा सुझाव है कि आप स्वमूल्यांकन हेतु उनसे अपने उत्तरों का मिलान करके देखें।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

नाट्य: **"अवस्थानुकृतिर्नाट्यं"** काव्य के नायक-नायिका (राम-सीता) आदि की सुख:दुख आदि अवस्थाओं का रंगमंच पर नट के द्वारा किया गया अनुकरण ही नाट्य कहलाता है। इस तरह नाट्य शब्द का तात्पर्य है अभिनय, जो इस कुशलता से किया गया हो कि दर्शक को नट तथा राम आदि नायक में तादात्म्य (एकरूपता) की प्रतीति होने लगे।

रूप: 'रूपं दृश्यतोच्चते' नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण नाट्य को 'रूप' कहा जाता है। जैसे नीले पीले आदि रंगों से युक्त लौकिक पदार्थ नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटक आदि भी देखे जाने के कारण रूप है।

रूपक: "रूपकं तत्समारोपात्" नाटक आदि में रंगमंच पर रामादि का अभिनय करने वाले नट या पात्र पर दर्शक राम आदि का आरोप कर लेते हैं। अतः जैसे कि रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्र का आरोप होने से रूपक अलंकार होता है वैसे ही नाट्य में नट पर राम आदि का आरोप होने से उसे रूपक भी कहा जाता है।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम् व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन वाराणासी
2. भरतमुनि, नाटयशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
3. धनंजय, दशरूपकम्, धनिक कृत अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार मेरठ
4. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्य भंडार मेरठ
5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी:

I. डिम के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.7 को देखें।
II. प्रहसन के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.6 को देखें।
III. भाण के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.5 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. घ
2. क
3. ग
4. ग
5. ख
6. ग
7. ख
8. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. वस्तुनेता
2. उत्सृष्टिकांक
3. वणिक्
4. रसाश्रयम्
5. अवस्थानुकृतिः
6. समारोपात्
7. तयोच्यते

अतिलघूत्तरीय:

1. धनंजय
2. धनिक ने
3. प्रख्यात
4. वीर अथवा श्रृंगार
5. भाण में
6. अट्ठारह
7. बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य
8. आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम

सत्य/असत्य:

1. असत्य

2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. असत्य
8. सत्य

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्य किसे कहते हैं?
2. दशरूपकों के नाम क्या है? तथा उनके भेदक तत्व क्या माने गए हैं?
3. दशरूपकम् के अनुसार नाटक का लक्षण क्या है?

इकाई 2: नृत्य, पंचसन्ध्यङ्गों का विवेचन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 इकाई की पाठ्य सामग्री
2.3.1 नृत्य
2.3.2 नृत्त
2.3.3 सन्धि का सामान्य लक्षण
2.3.4 सन्धियों के नाम
2.3.5 सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप
2.3.6 मुख सन्धि
2.3.7 मुख सन्धि के अंग
2.3.8 प्रतिमुख सन्धि
2.3.9 प्रतिमुख सन्धि के अंग
2.3.10 गर्भ सन्धि
2.3.11 गर्भ सन्धि के अंग
2.3.12 अवमर्श विमर्श सन्धि
2.3.13 अवमर्श सन्धि के अंग
2.3.14 निर्वहण सन्धि
2.3.15 निर्वहण सन्धि के अंग
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 निबन्धातमक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से संबंधित दूसरी इकाई है। यह इकाई धनंजय द्वारा लिखित दशरूपकम् के नृत्य तथा पंच सन्ध्यङगों पर आधारित है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक क्या है? रूपक के भेद कौन-कौन से हैं? तथा उनका लक्षण एवं स्वरूप क्या है।

इस इकाई में नृत्य के स्वरूप तथा उसके भेदों की चर्चा करते हुए नृत्त से उसकी भिन्नता का उल्लेख किया गया है। धनंजय को मान्य नाटक आदि की पंच सन्धियों तथा उनके चौसठ अंगों के विषय में प्रस्तुत इकाई में विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नृत्य तथा पंच सन्धियों एवं उसके अंगों के बारे में समझा सकेंगे एवं इस बारे में धनंजय के विचारों का भलीभाँति विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- बता पाएंगे कि नृत्य तथा नृत्त के स्वरूप एवं भेद क्या होते हैं?
- जान सकेंगे कि सन्धि का स्वरूप क्या होता है?
- जान जायेंगे कि नाट्यगत पाँच सन्धियों के नाम क्या हैं?
- समझा सकेंगे कि मुख सन्धि क्या है? तथा उसके कितने अंग होते हैं?
- बता सकेंगे कि प्रतिमुख सन्धि क्या है?
- प्रतिमुख सन्धि के अंगों की जानकारी पा सकेंगे?
- जान लेंगे कि गर्भ सन्धि का लक्षण क्या है?
- गर्भ सन्धि के अंगों के विषय में जान लेंगे।
- बता पाऐंगे कि विमर्श अवमर्श सन्धि का लक्षण क्या है?
- विमर्श सन्धि के अंगों को जान पाएंगे।

- जान सकेंगे कि निर्वहण सन्धि की परिभाषा क्या है?
- निर्वहण सन्धि के अंगों के विषय में जान सकेंगे।

2.3 इकाई की पाठ्य सामग्री: नृत्य, पंच सन्ध्यङ्गों का विवेचन:

2.3.1 नृत्य:

दशरूपकम् के रचयिता धनंजय ने रस पर आश्रित शुद्ध रूपक दस ही कहे हैं। तत्कालीन नाट्याचार्यों में किसी किन्हीं का मानना था कि-**"डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकः। काव्यं च सप्तं नृत्यस्य भेदाः स्यु भाणवत्।।"** अर्थात् डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य-नृत्य के ये सात भेद रूपक के एक भेद भाण के समान हैं। अतः नृत्य के इन भेदों की गणना भी रूपक के अन्तर्गत ही कर लेनी चाहिए। आचार्यों के इस मत का खण्डन करते हुए दशरूपककार कहते हैं - **"अन्यद्भावाश्रयं नृत्य" भावाश्रित नृत्य (रसाश्रित नाट्य से) भिन्न** हैं।

नृत्य भावों पर आश्रित होता है अर्थात् नृत्य में भावों को प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य शब्द नृत्त् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है अंग विक्षेप (शरीर का संचालन)। इस प्रकार स्पष्ट है कि नृत्य में आंगिक अभिनय की प्रचुरता होती है। इसमें नर्तक या नर्तकी अपने हाथ-पैर आदि अंगों एवं नेत्र,भ्रू आदि उपांगों के द्वारा पदार्थ रूप भावों को प्रदर्शित करते हैं। नृत्य में शास्त्रीय पद्धति के अनुसार पदार्थ का अभिनय होता है। यह नृत्य दो प्रकार का होता है-मधुर नृत्य एवं उद्धत नृत्य। दोनों ही प्रकार के नृत्यों में शास्त्रीय परम्परा का अनुकरण होता है। अतः नृत्य को मार्ग भी कहा जाता है। नृत्य के उदाहरण हैं:- कत्थक, मोहिनीअट्टम आदि। जिस शास्त्रीय नृत्य में नर्तक भयंकर मुखौटे आदि लगाकर उद्धत भावों की अभिव्यक्ति करते हैं वह उद्धत नृत्य होता है।

2.3.2 नृत्त:

नृत्य के प्रसंग से नृत्त के विषय में जानना भी आवश्यक है। **"नृत्तं तालल्याश्रम्"** नृत्त ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप (शरीर संचालन) है। हाथ की ताली आदि ताल है तथा द्रुत, मध्यम एवं विलम्बित लय है। अंग विक्षेप नृत्य एवं नृत्त दोनों में ही होता है। अतः दोनों में अन्तर यह है कि नृत्य का विषय भावप्रदर्शन है जबकि नृत्त में ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप मात्र ही होता है। जिस तरह शास्त्रीय परम्परा का अनुकरण करने वाले नृत्य को मार्ग कहा जाता है उसी तरह भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्त (लोकनृत्तं) पृथक-पृथक होता है। इसमें किसी प्रकार के शास्त्रीय मार्ग का अनुसरण नहीं किया जाता। अतः नृत्त को देशी कहा जाता है। नृत्त भी दो प्रकार का होता है- मधुर

नृत्त और उद्धत नृत्त। जैसे कुमाँऊ में प्रचलित झोड़ा, चांचरी, छपेली आदि मधुर नृत्त है तो जागर में ताल एवं लय पर आश्रित जो शरीर संचालन (अंग विक्षेप) होता है, उसे उद्धत नृत्त कहा जा सकता है। ये दोनों-नृत्य एवं नृत्त अपने दोनों भेदों मधुर एवं उद्धत के द्वारा लास्य एवं ताण्डव रूप में रूपकों के उपकारक होते हैं।

2.3.3 सन्धि का सामान्य लक्षण:

धनंजय के अनुसार सन्धि का लक्षण है-"किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। वे इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हैं और किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है। यही सम्बन्ध सन्धि कहलाता है।" सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़, जो दो या दो से अधिक तत्त्वों के मध्य हो सकता है। रूपक के संदर्भ में इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हुए भी किसी कथांश का अपने अवान्तर प्रयोजन के साथ होने वाले सम्बन्ध को ही सन्धि कहा जाता है।

2.3.4 सन्धियों के नाम:

धनंजय ने अपने दशरूपकम् में सन्धियों का इस प्रकार नामोल्लेख किया है- "**मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः**"अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ होती है।

2.3.5 सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप:

बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी एवं कार्य ये पाँच नाटक की अर्थ प्रकृतियाँ हैं। ये अर्थप्रकृतियाँ नाटक में प्रयोजन सिद्धि का हेतु कही गई हैं। नाटक में लक्ष्य या फल की प्राप्ति चाहने वाले नायकादि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति के लिए जो कार्य व्यापार किया जाता है उसकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं आरम्भ, यत्न, प्रात्याशा, नियताप्ति एवं फलागम।

सन्धियों के रचनात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए धनंजय कहते हैं- "बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य इन पाँच अर्थप्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम"-इन पाँच कार्यावस्थाओं के साथ संयोग (मिलन) होने पर मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श अवमर्श एवं निर्वहण या उपसंहृति नाम की पाँच सन्धियों की रचना होती है।" सन्धियों के इस रचनात्मक स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है-बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से होने वाली सन्धि को मुखसंधि कहते हैं। इसी तरह बिंदु तथा यत्न के संयोग से होने वाली सन्धि प्रतिमुख सन्धि है। पताका तथा प्राप्त्याशा मिलकर गर्भ सन्धि होती है तथा

प्रकरी एवं नियताप्ति मिलकर विमर्श अवमर्श संधि होती है। इनमें यह देखने वाली बात यह है कि किसी रूपक की कथा में पताका एवं प्रकरी का होना अनिवार्य नहीं है। अतः गर्भ एवं विमर्श सन्धि में ये हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती। किन्तु गर्भ सन्धि में प्राप्त्याशा तथा विमर्श सन्धि में नियताप्ति का होना आवश्यक है। गर्भ सन्धि में नाटक का फल छिपा रहता है इसलिए उसे गर्भ सन्धि कहते है।

रूपक के अंत में जहाँ कार्य नामक पाँचवी अर्थ प्रकृति और फलागम रूप पाँचवी कार्यावस्था का संयोग होता है वहाँ उपसंहृति या निर्वहण नामक पाँचवी सन्धि होती है। इन पंचसंधियों का लक्षण तथा इनके अंगों का विवरण निम्न प्रकार है-

2.3.6 मुख सन्धि का लक्षण:

"मुखं बीज समुत्पात्तिर्नानार्थरससम्भवाः।
अंगानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।।"

नाटक के प्रारम्भिक भाग में जहाँ पर अनेकानेक प्रयोजनों एवं रसों को निष्पन्न कराने वाली बीजोत्पत्ति दिखाई जाय वहीं पर मुख नामक प्रथम सन्धि होती है। मुख सन्धि में बीज को प्रदर्शित किया जाता है तथा कार्य की आरम्भ नामक कार्यावस्था को विशेष प्रकार से स्पष्ट किया जाता है। नाटक प्रकरणादि रूपकों में धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग की (फल के रूप में) नायक आदि को प्राप्ति होती है जबकि भाण, प्रहसन आदि रूपकों में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति कराना लक्ष्य या फल नहीं होता। वहाँ केवल रस की उत्पत्ति होती है। अतः इन रूपकों में रसोत्पत्ति के हेतु (रस के आलम्बन अथवा समाज के उपहास योग्य पक्ष) को ही बीज माना जाएगा। मुखसन्धि बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग (मिलन) से निष्पन्न होती है।

2.3.7 मुख सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

"अंगानि द्वादशैतस्य" इस मुख सन्धि के बारह अंग होते हैं। इन सन्ध्यंगों का विवरण निम्नलिखित है-(1) उपक्षेप (2) परिकर (3) परिन्यास (4) विलोभन (5) युक्ति (6) प्राप्ति (7) समाधान (8) विधान (9) परिभावना (10) उद्भेद (11) भेद (12) करण

किसी रूपक में यदि समस्त अंगों का विधान करना सम्भव न हो तो भी उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद एवं समाधान का तो अवश्य ही विधान करना चाहिए अन्यथा अंगहीन पुरूष की तरह रूपक भी शोभा हीन होगा। अतः मुख सन्धि के इन आवश्यकीय अंगों का लक्षण निम्नांकित है-

उपक्षेप: बीज का न्यास (रखना) ही उपक्षेप है। अर्थात् रूपक के इतिवृत्त को सर्वप्रथम शब्दों में अभिव्यक्त किया जाना ही उपक्षेप कहलाता है। जैसे किसान अन्न रूप फल की इच्छा से सर्वप्रथम भूमि में बीज का निक्षेप करता है उसी प्रकार नाटककार भी नाटक के धर्मार्थकाम रूप फल के हेतु रूप बीज का रूपक के आरम्भ में निक्षेप करता है। यही उपक्षेप कहलाता है।

परिकर: उपक्षेप का बाहुल्य ही परिकर है। इसमें बीज न्यास की वृद्धि होने लगती है। अर्थात नाट्यार्थ का विकास होने लगता है। पात्र बोए हुए बीज की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बीज को दृढ़ करता है।

परिन्यास: उस बीज न्यास की सफलता को परिन्यास कहते हैं। जिस प्रकार खेत में डाला गया बीज फूलकर अंकुर की उत्पत्ति में समर्थ हो जाता है उसी प्रकार नाट्य का बीज भी निक्षिप्त होकर तथा पुष्ट होकर फल की सिद्धि में समर्थ हो जाता है। यही बीज निष्पत्ति है। जिसे परिन्यास कहते हैं।

युक्ति: जहाँ पात्र के अभीष्ट अर्थों का निर्णय या समर्थन किया जाय वहाँ युक्ति नामक मुख सन्धि का अंग होता है। अर्थात् जब पात्र अतीत की घटनाओं का स्मरण करा कर अपने प्रयोजन का समर्थन करता है तब युक्ति होती है।

उद्भेद: किसी गूढ़ बात को प्रकट करना ही उद्भेद कहलाता है। अर्थात जहाँ पर अब तक गुप्त अवस्था में स्थित बीज को थोड़ा सा प्रकाशित कर दिया जाय वहाँ उद्भेद नामक मुख संधि का अंग होता है।

समाधान: पहले संक्षेप में कहे गये बीज को पुनः अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाना ही समाधान कहलाता है।

2.3.8 प्रतिमुख सन्धि:

बीज का कुछ-कुछ दिखायी देना और कुछ-कुछ न दिखायी देना ही प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि का निर्माण बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से होता है। दशरूपककार धनंजय ने प्रतिमुख सन्धि का लक्षण इस प्रकार दिया है-

"लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।"

मुख सन्धि में बीज स्थापित किया जाता है उसे पोषित होने के लिए समुचित वातावरण मिलता है और प्रतिमुख सन्धि में आकर वह प्रस्फुटित होने लगता है, किन्तु जिस तरह बीज का पहला अंकुर कुछ-कुछ अस्पष्ट सा होता है उसी तरह नाट्य के बीज का यह अंकुर भी कुछ अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में प्रकट होता है।

2.3.9 प्रतिमुख सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

"अंगान्यस्यत्रयोदश" पूर्व में संकेतित बिन्दु रूप अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से निष्पन्न प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग कहे गये है। (1) विलास (2) परिसर्प (3) विधूत (4) शम (5) नर्म (6) नर्मद्युति (7) प्रगमन (8) निरोध (9) पर्युपासन (10) वज्र (11) पुष्प (12) उपन्यास (13) वर्ण संहार। इनमें से परिसर्प, प्रशम, वज्र उपन्यास पुष्प को रूपकों में प्रमुख रूप में नियोजित करना चाहिए। शेष अंगों का आवश्यकतानुसार नियोजन किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

परिसर्प:- एक बार देखे गये किन्तु फिर नष्ट हुए बीज को खोजा जाना ही परिसर्प कहलाता है। अर्थात जहाँ बीज एक बार दिखायी पड़ गया हो और फिर नष्ट हो गया हो ऐसे दृष्टनष्ट बीज की खोज जहाँ पर की जाय वह अन्वेषण ही परिसर्प कहलाता है।

प्रशम: लक्ष्य के प्रति अरति (विरक्ति) के दूर हो जाने को शम कहते हैं।

वज्र: प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन बोलना ही वज्र है। अर्थात नायक आदि के प्रति जब कोई पात्र किसी कारण वश प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन बोलता है तो वह वचन वज्र के समान कठोर और हृदयविदारक होने के कारण वज्र कहलाता है।

उपन्यास:- उपाय युक्त या हेतु प्रदर्शक वाक्य को उपन्यास कहा जाता है। अर्थात उपाय से या व्यवहार कुशलता से बीज को प्रकाशित करना ही उपन्यास है।

पुष्प:- विशेषता युक्त वाक्य को पुष्प कहते हैं। अर्थात बीज को विशेष रूप से प्रकाशित करने वाला प्रशंसा युक्त वाक्य ही पुष्प कहलाता है।

2.3.10 गर्भ सन्धि:

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुदुः।
द्वादशाङ्ग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति संभवः।"

जो बीज प्रतिमुख सन्धि में कुछ-कुछ प्रकट होने के कारण कभी पनपता कभी मुरझाता (लक्ष्यालक्ष्य रूप में" रहता है वही बीज गर्भ सन्धि में विशेष रूप में उद्भासित होने के कारण विघ्नों

से बारम्बार नष्ट होता है। बार-बार उसका अन्वेषण किया जाता है। इस प्रकार प्रकट होने और नष्ट होने की स्थिति इस गर्भ सन्धि में निरन्तर बनी रहती है इसीलिए गर्भ सन्धि में फल प्राप्ति की आशा तो बनी रहती है किन्तु फल-प्राप्ति का दृढ़ निश्चय नहीं हो पाता। सामान्यतः पताका नामक अर्थप्रकृति और प्राप्त्याशा नामक कार्यवस्था के संयोग से गर्भ सन्धि होती है। लेकिन प्रत्येक नाटक में पताका का होना आवश्यक नहीं है इसलिए गर्भ सन्धि में पताका हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती। प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था इसमें अवश्यमेव होनी चाहिए।

2.3.11 गर्भ सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

भरत, विश्वनाथ की तरह दशरूपककार धनंजय ने भी गर्भ सन्धि के बारह अंग माने हैं उनका नामोल्लेख इस प्रकार है-(1) अभूताहरण (2) मार्ग (3) रूप (4) उदाहरण (5) क्रम (6) संग्रह (7) अनुमान (8) अधिबल (9) तोटक (10) उद्वेग (11) संभ्रम (12) आक्षेप। इनमें से अभूताहरण मार्ग, तोटक, अधिबल एवं आक्षेप प्रमुख हैं। शेष अंगों का यथासम्भव प्रयोग किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

अभूताहरण: कपट को अभूताहरण कहा जाता है। अर्थात कपट पूर्ण योजना के द्वारा इच्छित की प्राप्ति करने को अभूताहरण कहा जाता है।

मार्ग: यथार्थ बात का कथन मार्ग है। अर्थात किसी वस्तु या बात को ठीक उसी रूप में व्यक्त करना, जैसा कि वह वास्तव में है, मार्ग कहा जाता है।

तोटक: आवेगपूर्ण वचन ही तोटक कहलाता है। अर्थात हर्ष, कोप एवं अन्य कारणों से उत्पन्न आवेश युक्त कथन को तोटक कहा जाता है। तोटक कहीं अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति का कारण होता है, और कहीं प्राप्ति का कारण भी होता है।

अधिबल: "**तोटकस्यान्यथाभावं बुरवतेऽधिबलं बुधाः**" विद्वानों के अनुसार तोटक का विपरीतभाव अधिबल कहलाता है। धनंजय के मतानुसार क्रुद्ध वचन तोटक है और क्रुद्ध वचन का उल्टा अर्थात् विनीत व दीन वचन अधिबल है। अन्य नाट्याचार्य दीन वचनों को अधिबल कहते हैं। धनंजय के मत में "दीन या विनीत वचन बोलकर किसी की वंचना करना ही अधिबल है।"

आक्षेप: गर्भ सन्धि में स्थित बीज का प्रकाशन ही आक्षेप कहलाता है। अर्थात् गर्भ सन्धि में जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकाशित किया जाता है वहाँ आक्षेप नामक संध्यङ्ग होता है।

2.3.12 अवमर्श विमर्श सन्धि:

"क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।"

जहाँ क्रोध से व्यसन से या लोभ से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाता है तथा जहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा विभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया गया हो वहाँ अवमर्श/विमर्श सन्धि होती है। "जहाँ यह फल होना चाहिए इस प्रकार अवश्यम्भावी फल प्राप्ति का निश्चय कर लिया जाता है वहाँ अवमर्श या विमर्श होता है"।

2.3.13 अवमर्श विमर्श सन्धि के प्रमुख अंग एवं उनके लक्षण:

धनंजय ने गर्भ सन्धि के तेरह अंग कहे हैं। इन अंगों का नामोल्लेख इस प्रकार है- (1) अपवाद (2) संफेट (3) विद्रव (4) द्रव (5) शक्ति (6) द्युति (7) प्रसंग (8) छलन (9) व्यवसाय (10) विरोधन (11) प्ररोचना (12) विचलन (13) आदान। रूपक में इन अंगों का क्रमशः प्रयुक्त होना आवश्यक नहीं है। रूपकों में इनका निबन्धन आगे पीछे भी दिखायी देता है। इनमें से अपवाद, शक्ति, व्यवसाय, प्ररोचना और आदान ये प्रमुख अंग रूपक में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त किये जाने चाहिए। शेष अंगों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

अपवाद:- नाटक के किसी पात्र के दोषों का कथन करना ही अपवाद कहलाता है। अर्थात् नाटक के किसी पात्र की किसी न किसी रूप में बीज से संबंधित त्रुटि का वर्णन करना ही अपवाद है।

शक्ति:- विरोध का शान्त हो जाना ही शक्ति कहलाता है। नाट्य शास्त्र में विरोधी के शमन को शक्ति कहा जाता है। नाट्यदर्पण में क्रुद्ध पात्र को प्रसन्न करना ही शक्ति कहलाता है। जबकि दशरूपककार धनंजय के मतानुसार किसी पात्र के प्रति किसी नाटकीय पात्र के विरोध भाव का शान्त हो जाना ही शक्ति कहलाता है।

व्यवसाय: अपनी शक्ति का बखान करना ही व्यवसाय कहलाता है। अर्थात जहाँ कोई पात्र अपनी शक्ति सामर्थ के विषय में स्वयं वर्णन करे वहाँ व्यवसाय नामक अवमर्श सन्धि का अंग होता है।

प्ररोचना:- 'यह सिद्ध हो ही गया है' इस प्रकार के कथन से अथवा किसी सिद्ध पुरूष के कथन से जहाँ भावी अर्थ को प्रकटित किया जाय वहाँ प्ररोचना होता है। "यहाँ यह कार्य तो सिद्ध हो ही गया " इस प्रकार भावी कार्य की सिद्धि का निश्चय कराया जाता है। नियताप्ति से व्याप्त इतिवृत्त का यह भाग प्ररोचना कहलाता है।

2.3.14 निर्वहण सन्धि:

"बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णायथायथम।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।"

नाटक के अंतिम भाग में नाटक की नाट्य के कथावस्तु के बीज से युक्त मुख, प्रतिमुख, गर्भ एवं विमर्श सन्धियों में नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार यत्र-तत्र फैले हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का एक (प्रधान) प्रयोजन के लिए एक साथ संग्रह किया जाता है या उन्हें एक साथ समेटा जाता है। यही निर्वहण सन्धि है। निर्वहण सन्धि के अन्त में अनिवार्य रूप से अद्भुत रस का समावेश किया जाना चाहिए।

2.3.15 निर्वहण सन्धि के प्रमुख अंग एवं उनके लक्षण:

धनंजय ने निर्वहण सन्धि के चौदह अंग माने जो इस प्रकार हैं- (1) सन्धि (2) विबोध (3) ग्रथन (4) निर्णय (5) परिभाषण (6) प्रसाद (7) आनन्द (8) समय (9) कृति (10) भाषा (11) उपगूहन (12) पूर्वभाव (13) उपसंहार (14) प्रशस्ति। नाटक में प्रशस्ति नामक अंग की योजना अनिवार्य है। काव्य संहार तथा प्रशस्ति दोनों रूपक के अन्त में इसी क्रम में प्रयोग किये जाने चाहिए। अन्य अंगों का क्रम बदला भी जा सकता है। काव्यसंहार एवं प्रशस्ति का लक्षण इस प्रकार है-

काव्य संहार:- वरदान की प्राप्ति काव्य संहार कहलाता है। " मैं तुम्हारा और क्या प्रिय करू"? इस प्रकार के कथन द्वारा काव्य रूप वस्तु का उपसंहार किया जाना ही काव्य संहार नामक निर्वहण संधि का अंग है। संस्कृत के सभी नाटकों में काव्य संहार का अनिवार्य रूप से प्रयोग देखा जाता है।

प्रशस्ति:- शुभ अर्थ का कथन ही प्रशस्ति कहलाता है। अर्थात् नाट्य के अन्त में जब सर्वसाधारण के प्रति कल्याण की कामना व्यक्त की जाती है तो उसी को प्रशस्ति कहा जाता है। प्रशस्ति का भी संस्कृत नाटकों में उपनिबन्धन अवश्य किया जाता है। वस्तुतः प्रशस्ति रूपकों का

अन्त मंगल है। संस्कृत नाटक सुखान्त होते हैं। अतः उनके अन्त में कल्याण कामना या प्रशस्ति अनिवार्य है। संस्कृत नाटकों में इसी प्रशस्ति को भरतवाक्य भी कहा जाता है।

इस प्रकार मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श व निर्वहण इन पांच सन्धियों के कुल 64 अंग होते हैं। जिनमें से कुछ अंग अनिवार्य होते हैं कुछ अंग आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किये जाते हैं।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भलीभाँति यह जान चुके हैं कि दशरूपककार धनंजय ने नृत्य तथा नृत्त के लक्षण तथा भेद स्पष्टता के साथ बताए हैं। इन्हें प्रायः एक समान समझ लिया जाता है जबकि ये एक दूसरे से अलग-अलग हैं। यद्यपि दोनों में ही अंग संचालन की बहुलता होती है लेकिन नृत्य में भावों की अभिव्यक्ति होती है। जबकि नृत्त ताल एवं लय पर आश्रित अंग संचालन मात्र होता है। नृत्त तथा नृत्य दोनों ही अपने मधुर एवं उद्धत रूप में नाट्य के उपकारी होते हैं। नाट्य की कथावस्तु पंच सन्धियों के अर्न्तगत गुँथी हुई होती है। नाटक की रचना करने से पहले ही नाटककार कथा के आदि-अन्त तथा नाट्य के फल का निश्चय करके नाटक की कथा को पाँच सन्धि रूप भागों में विभक्त कर लेता है। प्रत्येक सन्धि में अर्थ प्रकृति तथा कार्यावस्था का संयोग होता है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श/अवमर्श तथा निर्वहण इन पांच सन्धियों के कुल 64 अंग होते हैं, जिनका नाटककार को यथासाध्य अपने नाटकों में प्रयोग करना चाहिए। इस इकाई के अध्ययन से आप नाट्यसन्धियों द्वारा नाटकीय इतिवृत्त के कलेवर निर्माण की प्रक्रिया को भली प्रकार समझकर अभिव्यक्त कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. अधिबल,
2. शक्ति

3. बहुविकल्पीय:

1.धनंजय के पूर्ववर्ती आचार्यों ने नृत्य के कितने भेद माने हैं?

(क) आठ, (ख) नौ,

(ग) छः, (घ) सात

2.शास्त्रीय परम्परा पर आधारित नृत्य को क्या कहा जाता है?

(क) देशी, (ख) अपमार्ग,

(ग) मार्ग, (घ) उन्मार्ग।

3.नृत्त किस पर आश्रित होता है?

(क) रस पर, (ख) भाव पर,

(ग) ताल एवं लय पर, (घ) इनमें से किसी पर नहीं।

4.मुख सन्धि के कितने अंग होते हैं?

(क) दस, (ख) ग्यारह,

(ग) बारह, (घ) तेरह।

5.मुख सन्धि में किस अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्था का संयोग होता है?

(क) बीज एवं आरम्भ (ख) बीज एवं प्रयत्न

(ग) बीज एवं प्राप्त्याशा (घ) बीज एवं नियताप्ति

6.प्रतिमुख सन्धि के कुल कितने अंग कहे गए हैं?

(क) ग्यारह (ख) बारह

(ग) तेरह (घ) चौदह

7.पताका किस सन्धि में हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती?

(क) मुख (ख) प्रतिमुख

(ग) निर्वहण (घ) गर्भ

8.निर्वहण सन्धि के कुल कितने अंग होते हैं?

(क) तेरह (ख) चौदह

(ग) पन्द्रह (घ) सोलह

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

1. मुख सन्धि का पहला अंग.....कहलाता है।
2. नृत्य शब्द की निष्पत्ति.....धातु से मानी जाती है।
3. नृत्य में .....का अनुकरण किए जाने के कारण इसे मार्ग भी कहा जाता है।
4. .....नृत्यं।
5. तालल्यायाश्रयं.....।
6. प्रतिमुख सन्धि में.....नामक अर्थप्रकृति तथा .....नामक।
7. कार्यावस्था का योग होता है।
8. निर्वहण सन्धि के अन्त में.....रस होना चाहिए।
9. तृतीय सन्धि .....होती है।

अति लघु उत्तरीय :

1. डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य किसके भेद हैं?
2. नृत्त के दो भेद कौन से हैं?
3. नृत्य और नृत्त में क्या अन्तर है?
4. नृत्त को क्या कहा जाता है।
5. धनंजय के अनुसार निर्वहण सन्धि में कौन सी अर्थप्रकृति तथा कौन सी कार्यावस्था होनी चाहिए।
6. संस्कृत नाटकों में निर्वहण सन्धि के अन्तिम अंग प्रशस्ति को क्या कहा जाता है।
7. नाटक में पंच सन्धियों के कुल कितने अंग माने गए हैं।

सत्य/असत्य बताइए:

1. नृत्य रस पर आश्रित होता है।
2. नृत्त में ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप होता है।
3. नाटक में आठ सन्धियाँ मानी गई हैं।
4. निर्वहण सन्धि के अंतिम दो अंग काव्यसंहार एवं प्रशस्ति हैं।
5. अवमर्श में नियताप्ति नामक कार्यावस्था होती है।

6. तोटक एवं अधिबल प्रतिमुख सन्धि के अंग हैं।
7. आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम ये पांच कार्यावस्थाएँ होती हैं।
8. अवमर्श सन्धि के ग्यारह अंग कहे गए हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का अच्छी तरह से अध्ययन करने के बाद स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर सकेंगे। यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव यही है कि आप पाठ्य सामग्री को पढ़ कर स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखे और बाद में उनका मिलान दिए गए उत्तरों से करें।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली:

नृत्य: 'भावाश्रयं नृत्यं' हाथ-पैर आदि अंगों तथा आँख-भौं आदि उपांगों के विक्षेप (संचालन) द्वारा जहाँ भावों की अभिव्यक्ति हो वही नृत्य है। नृत्य भावाश्रित होता है।

नृत्त: **'तालल्याश्रयं नृत्तं'** केवल ताल (हाथ की ताली आदि) तथा लय (विलम्बित, मध्यम, एवं द्रुत) पर आश्रित अंग विक्षेप (संचालन) ही नृत्त कहलाता है।

सन्धि: सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़। नाट्य के प्रसंग सन्धि को इस तरह समझा जा सकता है- किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने भिन्न-भिन्न प्रयोजन होते हैं। वे काथांश नाटक के प्रमुख प्रयोजन के साथ अन्वित होने के साथ ही किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी अन्वित होते हें। एक कथांश का प्रमुख प्रयोजन तथा अवान्तर प्रयोजन से एक साथ आन्वित होना ही सन्धि है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

लघुत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अधिबल के लिए गर्भ सन्धि के अंगों को, इकाई की उपखण्ड संख्या 2.3.11 को देखें।
2. शक्ति के लिए अवमर्श सन्धि के अंगों को, इकाई की उपखण्ड संख्या 2.3.12 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख

2. ग
3. ग
4. ग
5. क
6. ग
7. घ
8. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. उपक्षेप
2. नृत्
3. शास्त्रीय परम्परा
4. भावाश्रयं
5. नृत्तं
6. बिन्दु, प्रयत्न
7. अद्भुत
8. गर्भ सन्धि

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1) चौसठ ;
2) नृत्य के
3) मधुर एवं उद्धत नृत्त
4) नृत्य 'भावाश्रित' तथा नृत्त ताललयाश्रित है, यही दोनो में अन्तर है।
5) देशी
6) कार्य, फलागम
7) भरतवाक्य

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. सत्य

3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी

2. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्यभंडार, मेरठ

3. धनंजय, दशरूपक, व्याख्याकार, डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु. डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

5. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भंडार, मेरठ

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दशरूपकम् के अनुसार नृत्य की क्या विशेषताएँ हैं?
2. सन्धि का सामान्य लक्षण देते हुए स्पष्ट कीजिए कि धनंजय ने सन्धियाँ कितनी तथा कौन-कौन सी बताई हैं?
3. सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप क्या है

इकाई 3: अर्थोपक्षेपक, नायक नायिका निरूपण

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 खण्ड एक

3.3.1 कथावस्तु के भेद

3.3.2 अर्थोपक्षेक का अर्थ एवं उसके भेद

3.3.3 विष्कम्भक

3.3.4 प्रवेशक

3.3.5 विष्कम्भक एवं प्रवेशक में पाई जाने वाली समानता व असमानता

3.3.6 चूलिका

3.3.7 अङ्कास्य

3.3.8 अङ्कावतार

3.3.9 अङ्कास्य एवं अङ्कावतार में पाई जाने वाली समानता व असमानता

3.4 खण्ड दो

3.4.1 नायक की सामन्य विशेषताएँ

3.4.2 नायक के भेद

3.4.3 धीरललित नायक

3.4.4 धीरशान्त नायक

3.4.5 धीरोदात्त नायक

3.4.6 धीरोद्धत नायक

3.4.7 नायक की श्रृंगारिक अवस्थाएँ

3.4.8 दक्षिण

3.4.9 शठ

3.4.10 धृष्ट

3.4.11 अनुकूल

3.5. खण्ड तीन

3.5.1 नायिका के सामान्य गुण
3.5.2 नायिका भेद
3.5.3 स्वकीया नायिका
3.5.4 मुग्धा स्वकीया
3.5.5 मध्या स्वकीया नायिका
3.5.6 प्रगल्भा स्वकीया नायिका
3.5.7 परकीया नायिका
3.5.8 सामान्या नायिका
3.5.9 नायिकाओं की अवस्थाएँ
3.6 सारांश
3.7 पारिभाषिक शब्दावली
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। यह इकाई धनंजय द्वारा विरचित दशरूपकम् के "अर्थोपक्षेपक, नायक-नायिका निरूपण" पर आधारित है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि नृत्य और पंचसन्ध्यङ्ग क्या होते हैं।

नाट्याचार्यों ने नाटक आदि में सूच्य इतिवृत्त की सूचना देने के उपाय रूप पाँच अर्थोपक्षेपक बताएँ हैं जो नाट्य में अत्यन्त उपयोगी होते हैं। नाटक आदि के नायक-नायिका की सामान्य विशेषताओं तथा उनके भेद-प्रभेदों एवं अवस्थाओं आदि का प्रस्तुत ईकाई में विस्तार से विवेचन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाटक में प्रयुक्त होने वाले सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों के विषय में तथा नाटक के के नायक-नायिका के विषय में सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि अर्थोपक्षेपक क्या है?
- समझा सकेंगे कि अर्थोपक्षेपक के कितने भेद हैं तथा उनकी विशेषताएँ क्या होती हैं?
- भलीभांति बता सकेगे कि नायक के सामान्य गुण या विशेषताएँ क्या होती हैं?
- भली प्रकार समझा सकेंगे कि प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर नायक के कितने और कौन-कौन से भेद होते हैं? तथा उनके लक्षण क्या हैं?
- बता सकेंगे कि श्रंगारिक आधार पर नायक कितने प्रकार का होता है?
- बता सकेगे कि नायक के पुरूषोचित सात्विक गुण क्या है?
- समझा सकेंगे कि नायिका के भेद-प्रभेद क्या है?
- सम्यक् रूप से बता पाऐंगे कि नायिकाओं की अवस्थाएँ कौन-कौन सी होती हैं?
- बता सकेंगे कि स्त्रियों (नायिकाओं) में यौवन जन्य अलंकार क्या होते हैं?

3.3 खण्ड एक:

3.3.1 कथावस्तु के भेद:

आप इस बात से परिचित अवश्य होंगे कि किसी भी नायक के सम्पूर्ण जीवन वृत्त में सभी घटनाएँ या बातें ऐसी नहीं होती कि उन्हें रंगमंच पर ज्यों का त्यों दिखाया जाय। अतः इस दृष्टि से नाट्याचार्य मूलतः इतिवृत्त को दो तरह का मानते हैं-सरस इतिवृत्त और नीरस इतिवृत्त। इनमें सरस इतिवृत्त वह होता है जो दृश्य हो अर्थात् जिसे रंगमंच पर दिखाया जाय। नीरस इतिवृत्त वह होता है जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत तो नहीं किया जाता, पर उसकी सूचना अवश्य दी जाती है अर्थात् नीरस इतिवृत्त सूच्य होता है।

नाटककार नायक के जीवन के जिस अंश को नाटक की कथावस्तु बनाता है उसमें कोई-कोई कथांश या घटना ऐसी होती है, जो दर्शकों में नीरसता जगाने वाली (अर्थात् उबाऊ), नायक के चरित्रांकन की दृष्टि से अनुचित और सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से अशोभनीय होती है। अतः इन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करना ठीक नहीं है तथापि उस नीरस इतिवृत्त को जानना दर्शकों के लिए जरूरी भी होता है अन्यथा कथा का क्रम टूट जाएगा या कथा दर्शकों की समझ में नहीं आएगी। अतः नाटककार उस नीरस किन्तु सूच्य इतिवृत्त की सूचना अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से देता है।

3.3.2 अर्थोपक्षेपक का अर्थ एवं उसके भेद:

'अर्थोपक्षेपक' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'अर्थ' एवं 'उपक्षेपक'। यहाँ अर्थ का तात्पर्य इतिवृत्त से तथा उपक्षेपक का तात्पर्य सूचक से है। अर्थात् सूच्य इतिवृत्त का सूचक ही अर्थोपक्षेपक है। नाटकीय कथा का जो अंश नीरस हो या किसी कारणवश उसे रंगमंच पर दिखाना अनुचित हो, लेकिन फिर भी दर्शकों के लिए उसे जानना आवश्यक हो, तो अर्थोपक्षेपकों के द्वारा भलीभांति उस सूच्य इतिवृत्त की सूचना दे देनी चाहिए। सूच्य इतिवृत्त के सूचक ही नाट्यशास्त्रीय भाषा में अर्थोपक्षेपक कहे जाते हैं। धनंजय ने इनका नामोल्लेख इस प्रकार किया है:-

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतार प्रवेशकैः।।

(1) विष्कम्भक (2) चूलिका (3) अङ्कास्य (4) अङ्कावतार और (5) प्रवेशक इन पाँच अर्थोपक्षेपकों (इतिवृत्त के सूचकों) के द्वारा सूच्य वस्तु का प्रतिपादन करना चाहिए। इन अर्थोपक्षेपकों के लक्षण इस प्रकार हैं।

3.3.3 विष्कम्भक:

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्र प्रयोजितः।।" भूतकाल में घटित हो चुके और भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का सूचक विष्कम्भक कहलाता है। यह संक्षिप्त अर्थ वाला होता है। अर्थात् इसमें अति संक्षेप में कथांश को सूचित किया जाता है। यह मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के अन्तर्गत आमात्य सेनापति वणिक पुरोहित आदि संस्कृत बोलने वाले पात्र आते हैं।

यह विष्कम्भक दो प्रकार का होता है। (1) शुद्ध (2) संकीर्ण। "एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः"। जिस विष्कम्भक में एक या अनेक मध्यम कोटि के पात्र होते हैं उसे शुद्ध विष्कम्भक कहा जाता है। जिस विष्कम्भक में मध्यम के साथ-साथ नीच या अधम कोटि के (चोर, शिकारी, सेवक, सेविका, सिपाही आदि प्राकृत भाषी) पात्र भी होते हैं उसे संकीर्ण विष्कम्भक कहा जाता है। संक्षेप में विष्कम्भक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. विष्कम्भक का वर्ण्य विषय संक्षिप्त होता है।
2. इसमें अतीत की एवं भावी घटनाओं की सूचनाएँ दी जाती है।
3. इसका प्रयोग प्रथम अंक से पहले प्रस्तावना के बाद हो सकता है। दो अंकों के बीच में भी विष्कम्भक का प्रयोग किया जा सकता है।
4. विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का होना आवश्यक है।
5. संकीर्ण विष्कम्भक में भी नीच पात्रों के साथ ही कम से कम एक मध्यम कोटि का पात्र जरूर होना चाहिए।
6. शुद्ध विष्कम्भक की भाषा संस्कृत होनी चाहिए।
7. संकीर्ण विष्कम्भक की भाषा में संस्कृत और प्राकृत का समिश्रण होना चाहिए।

3.3.4 प्रवेशक:

"तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।"

प्रवेशक भी विष्कम्भक की तरह भूत एवं भविष्य के कथांशों का सूचक होता है। यह अधम कोटि के पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा में सम्पादित होता है। अर्थात इसमें निम्न कोटि के पात्र होते हैं जो प्राकृत बोलते हैं। प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के मध्य में ही होता है। अतः स्पष्ट है कि प्रवेशक कभी भी प्रथम अंक से पहले नहीं हो सकता। प्रवेशक शेष (रंगमंच पर प्रदर्शित न किये जा सकने वाले) अर्थों का सूचक होता है।

संक्षेप में प्रवेशक की विशेषतएँ निम्न प्रकार हैं।

1. प्रवेशक में भूत एवं भविष्य की कथांशों की सूचना दी जाती है।
2. प्रवेशक की वर्ण्य वस्तु संक्षिप्त होती है। इसमें अधम कोटि के पात्र होते हैं।
3. इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होती है।
4. इसमें केवल प्राकृत भाषा और वह भी निम्न श्रेणी की मागधी, शकारी, पैशाची प्राकृत आदि होती है।
5. प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के बीच में ही होता है, नाटक के आदि में कभी नहीं होता।

3.3.5 विष्कम्भक एवं प्रवेशक में पाई जाने वाली समानता व असमानता

विष्कम्भक एवं प्रवेशक में प्राप्त होने वाली समानताएँ इस प्रकार हैं-

1. विष्कम्भक एवं प्रवेशक दोनों ही भूत एवं भविष्य के उन कथांशों को सूचित करते हैं जिन्हें रंगमंच पर किन्हीं कारणों से दिखाया नहीं जा सकता।
2. विष्कम्भक एंव प्रवेशक दोनों का ही वर्ण्य विषय संक्षिप्त होता है। अर्थात दोनों में ही संक्षेप में कथांश को सूचित किया जाता है। अतः दोनों ही संक्षिप्त कलेवर वाले हैं।
3. विष्कम्भक एवं प्रवेशक में दिखाई देने वाली भिन्नताएँ इस प्रकार हैं-
4. विष्कम्भक में अधिकतर एक या अनेक मध्यम पात्र होते हैं। कभी-कभी मध्यम के साथ एक अधम पात्र भी हो सकता है जबकि प्रवेशक में केवल अधम पात्र ही होते हैं।

5. विष्कम्भक की भाषा अधिकतर संस्कृत ही होती है। कभी-कभी संस्कृत के साथ
6. प्राकृत भी होती है जबकि प्रवेशक की भाषा सदैव प्राकृत ही होती है।
7. विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अंक से पहले भी तथा दो अंकों के बीच में भी किया जा सकता है जबकि प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के बीच में होता है। प्रथम अंक से पहले प्रवेशक का प्रयोग कदापि नहीं हो सकता है।
8. विष्कम्भक के दो भेद-शुद्ध एवं संकीर्ण है जबकि प्रवेशक एक ही प्रकार का होता है।

3.3.6 "चूलिका अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।"

नेपथ्य में अर्थात् परदे के भीतर स्थित पात्र के द्वारा जब किसी कथांश की सूचना दी जाय तो वह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। जैसे-भवभूति के उत्तररामचरितम् नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में-(नेपथ्य से) "तपोधना आत्रेयी का स्वागत है" इस प्रकार आत्रेयी के आगमन की सूचना दी जाती है। इसके पश्चात ही रंगमंच पर आत्रेयी का प्रवेश होता है। यहाँ नेपथ्य में स्थित पात्र के द्वारा आत्रेयी के आगमन की सूचना दी गयी है, अतः यहाँ चूलिका है।

3.3.7 " अङ्कास्य अङ्कान्तपात्रैरङ्कान्स्यं छिन्नङ्कस्यार्थसूचनात्"।।

जहाँ अंक की समाप्ति पर उस अंक के अन्त में रंगमंच पर आने वाले पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुए कथांश की सूचना दी जाती है वहाँ अंकास्य होता है। अंक के अन्त में आने वाले पात्र को ही अंकान्त पात्र कहा जाता है। जहाँ ऐसे पात्रों के द्वारा उस अंक से बिल्कुल अलग अगले अंक (अर्थात् भिन्न या छूटे हुए) की कथावस्तु की सूचना दी जाय वही अंकास्य कहलाता है।

3.3.8 अङ्कावतार:- " अङ्कावतारस्त्वङ्काते पातोङ्कस्याविभागतः"।।

जहाँ पूर्व अंक का अन्त हो जाने पर, वहीं पर अग्रिम अंक का भी अविछिन्न रूप से अवतरण कर दिया जाता है, वहाँ अङ्कावतार होता है। अर्थात् जहाँ पूर्व अंक में प्रविष्ट पात्रों के द्वारा पूर्व अंक की कथा से विच्छिन्न (अलग) किये बिना ही अग्रिम अंक का अवतरण किया जाय। जहाँ पूर्व अंक के पात्र अंक के अन्त में किसी बात की सूचना दें तथा वे ही पात्र उसी अंकार्थ (कथावस्तु) को लेकर उसे विछिन्न किये बिना ही दूसरे अंक में प्रवेश करे, तो वहाँ अङ्कावतार कहलाता है। जैसे मालविकाग्निमित्रम् के प्रथम अंक के अंत में विदूषक उस अंक की कथा को विच्छिन्न किये बिना ही द्वितीय अंक की कथावस्तु की सूचना दे देता है। अतः वहाँ अङ्कावतार है।

3.3.9 अंकास्य एवं अंकावतार में पाई जाने वाली समानता व असमानता

अंकास्य तथा अंकावतार में निम्न समानता हैं-

1. अंकास्य तथा अंकावतार दोनों में ही कथा का क्रम नहीं टूटता है। कथा अविच्छिन्न होती है।

2. दोनों में ही पूर्व अंक के अन्त में उपस्थित पात्र अगले अंक के इतिवृत्त (कथांश) की सूचना देता है।

अंकास्य तथा अंकावतार में निम्न वैषम्य हैं-

1. अंकास्य पूर्व अंक के अन्त में घटित होता है जबकि अंकावतार अगले अंक के आरम्भ में पूर्व

अंक के पात्रों के अवतरण के साथ घटित होता है।

2. अंकास्य में अगले अंक की कथा पूर्व अंक की कथा सं असम्बद्ध रूप में कही जाती है जबकि अंकावतार में पूर्व अंक की कथा से जोड़कर ही अगले अंक की कथा की सूचना दी जाती है।

3. अंकास्य में अगले अंक की कथा की सूचना पूर्व अंक के अन्त में दी दी जाती है जबकि अंकावतार में अगले अंक की कथावस्तु की सूचना इसी अंक के आरम्भ में पूर्व अंक में वर्णित पात्रों के अवतरण के साथ होती है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अंकास्य
2. अंकावतार
3. विष्कम्भक

बहुविकल्पीय

1.अर्थोपक्षेपक कुल कितने होते हैं?

(क) पाँच (ख) छः

(ग) सात (घ) आठ

2.विष्कम्भक कितने प्रकार का होता है?

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

3.विष्कम्भक एवं प्रवेशक की वर्ण्य वस्तु कैसी होती है

(क) सांकेतिक (ख) संक्षिप्त

(ग) विस्तृत (घ) इनमें से कोई नहीं

रिक्त स्थान की पूर्ति:

1. शुद्ध विष्कम्भक की भाषा.....होती है।
2. प्रवेशक का प्रयोग सदैव.....होता है।
3. चूलिका में सूच्य इतिवृत्त की सूचना .....से दी जाती है।

अति लघु उत्तरीय:

4. विष्कम्भक में किस कोटि के पात्र होने चाहिए?
5. प्रवेशक के पात्रों की भाषा क्या होती है?
6. सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों के नाम लिखिए।

सत्य/असत्य बताइए:

1. प्रवेशक में उत्तम कोटि के पात्र होते हैं।
2. चूलिका में पर्दे के पीछे से सूच्य इतिवृत्त की सूचना दी जाती है।
3. अंकावतार अन्तिम अर्थोपक्षेपक हैं

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का भलीप्रकार से अध्ययन करके स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर सकेंगे। यद्यपि सभी प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं उत्तर लिखें। बाद में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर स्वमूल्यांकन करें।

खण्ड 2:

3.4.1 नायक की सामान्य विशेषताएँ:

कथावस्तु के बाद रूपक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है 'नेता'। नेता का अर्थ यद्यपि नायक से लिया जाता है तथापि नाट्यशास्त्र में 'नेता' तत्त्व के अन्तर्गत सभी प्रकार के नाटकीय पात्र आ जाते हैं। जिसमें नायक पीठमर्द नायक के अर्थ सहायक, दण्ड सहायक, धर्म सहायक विदूषक आदि सभी ग्रही हैं। किन्तु हमें नायक के विषय में ही बताना अभीष्ट है। अतः सर्वप्रथम नायक के सामान्य गुणों के विषय में जानना आवश्यक है। साहित्य दर्पण के अनुसार नायक के सामान्य गुण इस प्रकार हैः-

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता"।।

अर्थात् नेता या नायक त्यागी, कृती (करणीय कर्म को करने वाला), कुलीन, सम्पत्ति तथा शोभा से सम्पन्न, रूप, यौवन और उत्साह से सम्पन्न, दक्ष (कर्म निपुण), लोकप्रिय तेजस्वी, चतुर तथा शीलवान होना चाहिए। दशरूपककार धनंजय ने विस्तापूर्वक नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख किया है-

"नेताविनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः
शूरो दृढ़श्य तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।"

रूपक का नायक विनम्र, मधुर, (सुन्दर),त्यागी, दक्ष (शीघ्रता) से कार्य करने वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, लोकप्रिय, शुद्धमन वाला, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, स्थिर चित्त, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृति, प्रज्ञा, कला एवं मान से युक्त, शूरवीर, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना चाहिए। उपर्युक्त गुण नायक के सामान्य गुण कहे गये हैं। ये गुण यथासंभव सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।

3.4.2 नायक के भेद:

"भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तेद्धतैरयम्।" नायक की प्रकृति विशेष के आधार पर उसके चार भेद किये गये हैं-ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत। नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण आदि नाट्य सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों में उक्त नायक भेदों के पूर्व धीर शब्द जोड़ा गया है। धीर शब्द से तात्पर्य है धैर्य अर्थात धैर्ययुक्त, जो संकट की स्थिति में भी विचलित न हो। धैर्य गुण ऊपर कहे गये चारों प्रकार के

नायकों के लिए अनिवार्य है। अतः नायक के चार भेद हुए (1) धीरललित (2) धीरशान्त (3) धीरोदात्त (4) धीरोद्धत। इनके लक्षण इस प्रकार है-

3.4.3 धीरललित नायकः

"**निश्चिन्तों धीरललितः कलासक्तः सुखी मुदुः**" चिन्ता से मुक्त, नृत्यगीत आदि कलाओं में आसक्त, सुखी एवं सुकोमल प्रकृति का नायक धीर ललित होता है। धीरललित नायक चिन्ता से मुक्त रहता है क्योंकि उसके राज्यादि की चिन्ता उसके मंत्री द्वारा की जाती है। चिन्ता से रहित होने के कारण वह संगीतादि कलाओं में आसक्त तथा भोग विलास में लीन रहता है। उसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसीलिए वह सुकोमल आचरण एवं स्वभाव वाला होता है। जैसे रत्नावली नाटिका का नायक उदयन, राज्य प्रजा आदि की ओर से सर्वथा निश्चित है। अपनी प्रिया वासवदत्ता का समागम उसे प्राप्त है और वह रागरंग में लीन है। अतः उदयन धीर ललित कोटि का नायक है।

3.4.4 धीरशान्त नायकः

"सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः"नायक के विनम्रता, त्याग, माधुर्य, दक्षता आदि गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीरशान्त नायक कहा जाता है। अर्थात् यह नायक शान्त प्रकृति का होता है। धीरशान्त कोटि का नायक ब्राह्मण, मंत्री या कोई वणिक् होता है। इसमें विनम्रता आदि सामान्य, गुण अन्य नायकों की तरह होते हैं। रूपक के एक भेद प्रकरण का नायक धीरशान्त कोटि का ही होता है। यद्यपि ब्राह्मण, वणिक् और मंत्री में किंचित निश्चिन्तता आदि भी देखी जाती है लेकिन इस आधार पर वे धीर ललित नहीं माने जा सकते। ब्राह्मणादि को शान्त कोटि का ही माना जाना चाहिए क्योंकि वे प्रकृति से ही शान्त होते हैं। जैसे-"मृच्छकटिकम्" का नायक जन्मना ब्राह्मण और कर्मणा वणिक् होने के कारण प्रकृति से ही शान्त है। इसी प्रकार मालतीमाधवम् का नायक माधव जन्म से ब्राह्मण होने के कारण धीरशान्त कोटि का है।

3.4.5 धीरोदात्त नायकः

"महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारों धीरोदात्तो दृढव्रतः।।"

धीरोदात्त नायक महापराक्रमी, अतिगम्भीर प्रकृति का, क्षमाशील, आत्मप्रशंसा न करने वाला, स्थिर स्वभाव का, विनम्रता आदि (श्लाध्य) गुणों से युक्त अहंकार आदि दुर्गुणों को छिपाने वाला तथा अंगीकृत किये हुए कार्य को पूर्ण करने वाला होता है। जैसे-हर्षकृत नागानन्द नाटक का

नायक जीमूतवाहन धीरोदत्त कोटि का नायक है। उसी प्रकार राम भी धीरोदात्त कोटि के नायक कहे गये हैं। रूपक के नाटक नामक प्रमुख भेद का नायक सदैव धीरोदात्त कोटि का ही होता है। नायक की धीरोदात्ता को बनाये रखने के लिए प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक में कुछ परिवर्तन भी करने पड़ते हैं जैसे कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त को धीरोदात्त बनाये रखने के लिये कालिदास ने दुर्वासा के श्राप की कल्पना की है जो कि मूल कथा में नहीं है।

3.4.6. धीरोद्धत नायक:

"दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।"

अत्यधिक घमण्डी, ईर्ष्याभाव की अधिकता वाला, माया और कपट से युक्त, अहंकारी, चंचल चित्त वाला, क्रोधी तथा स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने वाला धीरोद्धत नायक कहलाता है। धीरोद्धत नायक में घमण्ड तथा ईर्ष्या का आधिक्य होता है। वह अपनी तंत्र शक्ति के द्वारा अविद्यमान (अप्रकटित) वस्तु को भी प्रकाशित कर देता है। वह छल-कपट से युक्त होता है। ऐसा नायक आत्मप्रशंसा करने वाला होता है अर्थात् अपने शक्ति पराक्रम आदि का खुद ही बखान करता है।

जैसे परशुराम और रावण धीरोद्धत कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

3.4.7. श्रृंगारिक आधार पर नायक की अवस्थाएँ:

उपर्युक्त चार भेदों-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत के अलावा नायक की श्रृंगारिकता के आधार पर उसकी चार अवस्थाएँ कही गई हैं-दक्षिण, 2. शठ, 3. धृष्ट, 4. अनुकूल कहने का तात्पर्य यह है कि किसी नवीन नायिका के प्रति आसक्त चित्त वाला होने पर नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका (पत्नी) के प्रति दक्षिण, शठ या घृष्ठ अवस्था वाला होता है। एक ही नायिका के प्रति आसक्ति रखने वाला जो नायक है वह अनूकूल कहलाता है। नायक की इन अवस्थाओं की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

3.4.8. दक्षिण: "दक्षिणोऽस्यां सहृदयः"-

जो नायक नवीन नायिका के प्रति आसक्त होते हुए भी ज्येष्ठा (अपनी पत्नी) नायिका के प्रति सहृदयता का व्यवहार करता है वह दक्षिण नायक होता है। अर्थात् कनिष्ठा नायिका के प्रति आसक्त होते हुये भी अपनी पत्नी के प्रति आदर युक्त रहना ही नायक का दक्षिणता है। जैसे -

रत्नावली नाटिका का नायक उदयन नवीन नायिका रत्नावली के प्रति आसक्त होते हुए भी अपनी पत्नी वासवदत्ता के प्रति आदर युक्त है। अतः वह दक्षिण अवस्था वाला है।

3.4.9. शठः "गूढविप्रियकृच्छठः"।

अपनी पूर्वा नायिका का छिपकर अप्रिय करने वाला नायक शठ है। यद्यपि शठ और दक्षिण दोनों ही तरह के नायक नवीन नायिका के प्रति आसक्त होकर ज्येष्ठा नायिका का समान रूप से अप्रिय करते हैं फिर भी दक्षिण नायक ज्येष्ठा के प्रति सहृदय रहता है। वह ज्येष्ठा नायिका का मन दुखाना नहीं चाहता किन्तु शठ नायक हृदय से शुद्ध न होने के कारण इसकी चिन्ता नहीं करता। यही दोनों नायकों में विशेष अन्तर है।

3.4.10. धृष्टः "व्यक्ताङ्गवैकृतौ धृष्टो"-

जिस नायक के अंगों पर नवीन नायिका के साथ किये गये रति क्रीड़ा के चिह्न स्पष्ट रूप से देखे जाते हैं वह धृष्ट नायक है। अर्थात जो नायक रात किसी अन्य नायिका के साथ व्यतीत करके शरीर पर लगे हुये रमण चिन्ह् के साथ ही अपनी ज्येष्ठा नायिका के पास चला जाता है वह धृष्ट नायक है। धृष्ट शब्द का सरल अर्थ है ढीठ। जो नायक स्पष्ट रूप से जानबूझकर ज्येष्ठा नायिका का दिल दुखाने की ढीठता (धृष्टता) करता है वही धृष्ट है।

3.4.11- अनूकूल: "अनुकूलस्त्वेकनायिकः"

जिसकी एक ही नायिका होती है वह अनुकूल नायक कहलाता है अर्थात् एक ही नायिका में आसक्ति रखने वाला नायक अनुकूल है। जैसे राम आजीवन केवल सीता के प्रति ही एकनिष्ठ रहे है अतः वह अनुकूल अवस्था वाले नायक हैं।

दक्षिण शठ, घृष्ट और अनुकूल ये नायक के भेद न होकर नायक की श्रृंगारिक अवस्थाएँ हैं। अतः पहले बताए गये-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत इन चारों नायक भेदों में से प्रत्येक की चार-चार अवस्थाएँ होती हैं। अतः नायक सोलह प्रकार का होता है।

जो सोलह प्रकार के नायक ऊपर कहे गये हैं उनमें से प्रत्येक उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार का होता है। इस प्रकार धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत (4) दक्षिण, शिठ, धृष्ट, अतुकूल (4) उत्तम, मध्यम, अधम (3) 48 इस प्रकार नायक के भेद प्रभेद माने गये हैं।

इन सभी प्रकार के नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण आठ माने गए हैं-1. शोभा 2. विलास 3. माधुर्य 4. गम्भीरता 5. स्थिरता 6. तेजस् 7. ललित 8. औदार्य

अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अनुकूल नायक
2. धीरोदात्त नायक

बहुविकल्पीय:

1.नायक की प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर नायक के कितने भेद किए गए हैं?

(क) दो (2) तीन

(ग) चार (4) पांच

2.नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण कितने माने गए हैं?

(क) छः (ख) तीन

(ग) आठ (घ) दस

3.नायकों के कुल कितने भेद मान्य हैं?

(क) पैंतालिस (ख) छियालिस

(ग) सैंतालिस (घ) अड़चालिस

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. नाटक का नायक.....कोटि का होता है।
2. विप्र, वणिक् या अमात्य.....के नायक कहे गए हैं।
3. .....धीरललित.....सुखी मृदुः।

4. सामान्यगुणयुक्तस्तु.....द्विजादिक्।

अतिलघु उत्तरीय:

1. "नेता विनीतो मधुरस्त्ययागी दक्षः प्रियंवदः" में प्रियंवद का क्या अर्थ है?
2. 'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरोशान्तो द्विजादिक्" में द्विजादिक से क्या तात्पर्य है?
3. अनुकूल नायक कौन होता है।

सत्य/असत्य:

1. नायक के विनम्रता आदि सामान्य गुण, धीरललित आदि सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।
2. प्रकरण में विप्र, वणिक् या अमात्य धीरोदात्त कोटि के नायक होते हैं।
3. धीरललित नायक अपनी ज्येष्ठा और कनिष्ठा दोनों नायिकाओं के प्रति समान प्रेम भाव वाला होता है।

नोट:- ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व पाठ्य सामग्री का भलीभांति अध्ययन कर ले तभी प्रश्नों के उत्तर लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप स्वमूल्यांकन कर पाएंगे। यद्यपि प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें, बाद में दिए गए उत्तरों से मिलान करके स्वमूल्यांकन करें।

खण्ड - 3

3.5.1 नायिका के सामान्य गुण:

नायिका तदगुणा कही गयी है अर्थात् किसी रूपक की नायिका को भी नायक के समान विनम्रता, माधुर्य, दक्षता, वाक्पटुता, लोकप्रियता, प्रसिद्ध वंश में उत्पत्ति और यौवन आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

3.5.2 नायिका भेद:

"स्वान्यासाधारणस्त्रीतिनायिकाविधा"सर्वप्रथम नायिका तीन प्रकार की कही गयी है। (1) स्वकीया नायिका (2) परकीया नायिका (3) सामान्य नायिका या सामान्य स्त्री। इनके लक्षण एवं भेद प्रभेद निम्न प्रकार हैं-

3.5.3. स्वकीया नायिका:

"स्वीया शीलार्जवादियुक्" स्वकीया नायिका शीलवती होती है। शील से अभिप्राय है नायिका का पतिव्रता होना। वह कुटिलता से रहित, सरलता से युक्त तथा पति की सेवा में निपुण होनी चाहिए। इस तरह पतिव्रता, सरल एवं लज्जावती अपनी पत्नी ही स्वकीया नायिका कही जाती है। स्वकीया नायिका के तीन भेद कहे गये हैं। (1) मुग्धा स्वकीया (2) मध्या स्वकीया (3) प्रगल्भा स्वकीया।

3.5.4. मुग्धा स्वकीया नायिका:

"मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुः क्रुधि।" मुग्धा स्वकीया नायिका वह होती है जो नवीन यौवनावस्था और नवीन कामभावना वाली हो। यह रति क्रीड़ा में झिझकने वाली और क्रोध करने में कोमल होती है अर्थात इसका प्रणय कोप आसानी से दूर हो जाता है।

3.5.5. मध्या स्वकीया नायिका:

"मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।।" जिसमें यौवन और कामभाव का प्रादुर्भाव स्पष्ट दिखायी देने लगता है, जो मूर्छा की अवस्था पर्यन्त रति में समर्थ है वह मध्या स्वकीया है। इससे यह स्पष्ट है कि मध्या स्वकीया नायिका पूर्ण यौवन वाली होती है। मध्या स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है-(1) धीरामध्या (2) अधीरा मध्या (3) धीराधीरा मध्या।

3.5.6. प्रगल्भा स्वकीया नायिका:

"यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङगके"।

विलीय मानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्येचेतना।।" प्रगल्भा अर्थात प्रगाढ़ यौवन वाली नायिका यौवन में अन्धी सी, काम से उन्मत्त सी, प्रिय संयोग तथा काम जनित सुरत के आनन्द के कारण प्रियतम के अंगों में विलीन होती हुयी सी (प्रगाढ़ आलिंगन करने वाली) और रति क्रीड़ा के आरम्भ में ही मूर्छित सी हो जाती है। प्रगल्भा नायिका के भी तीन भेद कहे गये हैं (1) धीरा प्रगल्भा (2) अधीराप्रगल्भा (3) धीराधीरा प्रगल्भा। तीन प्रकार की मध्या और तीन प्रकार की प्रगल्भा नायिकाएं जेष्ठा और कनिष्ठा के भेद से दो-दो प्रकार की होती है। इस तरह मध्या एवं प्रगल्भा 12 भेद हुए और एक प्रकार की मुग्धा नायिका। कुल मिलाकर स्वकीया नायिका तेरह प्रकार की हुयी।

3.5.7. परकीया नायिका:

"अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्"।

"कन्यानुरागामिच्छातः कर्यादगांगिसंश्रयम।।" परकीया नायिका दूसरे की विवाहिता स्त्री या अविवाहिता कन्या होती है। दूसरे की विवाहिता को अन्योढ़ा (परकीया) कहा जाना ठीक है पर कन्या को परकीया इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह विवाह से पूर्व अन्य के वश में (पिता-भाई आदि के अधीन) होती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्योढ़ा (दूसरे की विवाहिता स्त्री) को कभी भी नाटक में अंगी रस की नायिका नहीं बनाया जा सकता। जो अविवाहिता कन्या होती है उसके प्रति नायक के अनुराग का वर्णन करते हुए नाटककार उसे अंगी रस, अथवा अंग रस की नायिका भी बना सकता है।

3.5.8. सामान्या नायिका:

साधारण स्त्री तो गणिका होती है अर्थात गणिका को सामान्य नायिका कहा जाता है। वह संगीत आदि कलाओं में निपुण तथा प्रगल्भ एवं धूर्त होती है। वह किसी पुरूष के प्रति तभी तक प्रेम दिखाती है जब तक उसके पास धन होता है। जब वह धन रहित हो जाता है तब गणिका उसकी उपेक्षा कर देती है।

3.5.9. नायिकाओं की अवस्थाएँ:

पूर्व में कही गई नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ होती है।

1.स्वाधीनपतिका: "आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका" जिस नायिका का पति/प्रियतम उसके पास उसके वश में रहता है वह स्वाधीनपतिका कहलाती है।

2.वासकसज्जा: "मुदा वासकसज्जा एवं मंडयत्येष्यति प्रिये" प्रियतम आने ही वाला है ऐसा जानकर जो नायिका स्वयं को तथा अपने निवास (घर) को सजाती सँवारती है वही वासकसज्जा कहलाती है।

3.विरहोत्काण्ठिता: "चिरयत्यव्यलीकेतु विरहोत्कंठितोन्मना" प्रियतम द्वारा कोई अपराध (अन्यासक्ति रूप अपराध) न किए जाने पर भी निर्धारित समय पर उसके आने में देरी होने के कारण प्रियतम के वियोग में उससे मिलन के लिए उत्कंठित नायिका विरहोत्कंठिता कही जाती है।

4.**खण्डिता: "ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खंडितेर्ष्याकषायिता"** प्रियतम को अन्या नायिका के सहवास चिह्नों से युक्त देखकर जो नायिका ईर्ष्या से कलुषित हो उठती है, वह खंडिता कहलाती है।

5.कलहान्तरिता: "कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्"। जो नायिका क्रोध से अपराधी नायक का तिरस्कार करके बाद में पश्चाताप करती है, उसे कलहान्तरिता नायिका कहा जाता है।

6.विप्रलब्धा: "विप्रलब्धोक्तसमयप्राप्तेऽतिविमानिता"। पूर्व निर्धारित समय पर प्रिय के न आने से जो नायिका स्वयं को अपमानित हुआ समझती है, वह विप्रलब्धा कहलाती है।

7.प्रोषितप्रिया: "दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया"। जिस नायिका का प्रिय किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है, वह प्रोषितप्रिया कहलाती है।

8.अभिसारिका: "कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका"। काम पीड़ा से व्याकुल होकर जो नायिका स्वयं अपने प्रियतम के पास रमण हेतु जाती है, अथवा प्रिय को अपने पास बुलाती है, वह अभिसारिका कहलाती है।

जिस प्रकार हार केयूर आदि आभूषण नारी के शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार यौवनावस्था में शरीर में प्रकटित होने वाले कुछ विकार (परिवर्तन) शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। अतः उन्हें हार-भुजबन्द आदि के समान अलंकार कहा जाता है। यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले इन सात्विक अलंकारों की संख्या बीस मानी गयी है। इनमें तीन शरीरज अलंकरण हैं- (1) भाव (2) हाव (3) हेला। सात अयत्नज अलंकरण कहे जाते हैं (1) शोभा (2) कांति (3) दीप्ति (4) माधुर्य (5) प्रगल्भता (6) औदार्य (7) धैर्य। इनके अलावा दस स्वभावज अलंकरण कहे गये हैं- (1) लीला (2)

विलास (3) विच्छित्त (4) विभ्रम (5) किलकिंचित (6) मोट्टायित (7) कुट्टमित (8) विव्वोक (9) ललित (10) विहृत।

अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय प्रश्न:

टिप्पणी:

1. परकीया
2. सामान्या नायिका

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.नायिका सर्वप्रथम कितने प्रकार की मानी गई है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

2.स्वकीया नायिका के कितने भेद होते हैं?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) छः

3.सामान्या (साधारण स्त्री) नायिका निम्नलिखित में से कौन होती है?

(क) दूसरे की विवाहिता (ख) अविवाहिता कन्या

(ग) गणिका (वेश्या) (घ) राजकन्या

अति लघु उत्तरीय:

1. परकीया नायिका कौन होती है?
2. मुग्धा नायिका का लक्षण क्या है?
3. नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ कौन-कौन सी है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. मध्या स्वकीया नायिका के धीरा मध्या, अधीरा मध्या तथा..... तीन भेद कहे गए है।

2. प्रगल्भा स्वकीया नायिका के धीरा मध्या..... तथा धीराधीरा मध्या तीन भेद कहे गए हैं।
3. मुग्धा नववयःकामा .....मृदुः क्रुधि।

सत्य/असत्य:

1. स्त्रियों में यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले विकारों को सात्विक अलंकरण कहाजाता है।
2. मुग्धा नायिका आयु में प्रौढ़ तथा अत्यन्त बढ़े हुए काम भाव वाली होती है।
3. नायिकाओं के स्वभावज अलंकरण दस माने गए हैं।
4. नायिकाओं की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का भलीभाँति अध्ययन करने के बाद स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप अपना मूल्याकंन कर पाएंगे। यद्यपि इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखे फिर पीछे दिए गए उत्तरों से मिलान करके स्व मूल्यांकन करें।

3.6 सारांश:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि रूपक का सम्पूर्ण इतिवृत्त ऐसा नहीं होता जिसे ज्यों का त्यों रंगमंच पर दिखाया जा सके। अतः ऐसे वृत्तान्त की सूचना मात्र दे दी जाती है। सूच्य इतिवृत्त के सूचक उपायों को नाट्यशास्त्रियों ने 'अर्थोपक्षेपक' नाम दिया है। विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य एवं अंकावतार इन पाँच अर्थोपक्षेपकों के द्वारा कुछ इस प्रकार से सूच्य कथांश को सूचित किया जाता है कि कथा की निरन्तरता भी बाधित नहीं होती और दर्शक उन कथांशों को जान भी लेते हैं जिन्हें रंगमंच पर दिखाना संभव नहीं, किन्तु जानना आवश्यक होता है।

नायक निरूपण में आप देख चुके हैं कि सर्वप्रथम प्रकृति के आधार पर नायक के चार भेद करते हुए उनके श्रृंगारिकता के आधार पर उनके चार-चार भेद किए गए हैं। इस तरह नायक सोलह प्रकार के हो जाते हैं। पुनः ज्येष्ठ, मध्यम और अधम के आधार पर सोलह नायकों के तीन-तीन भेद करने पर नायक के अन्ततः अड़चालिस भेद होते हैं। नायक के पुरूषोचित गुणों से भी आप परिचित चुके हैं। आपने यह भी जाना कि नायक की तरह विनम्रता आदि गुणों से युक्त नायिका सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और सामान्या भेद से तीन प्रकार की होती है। स्वकीया नायिका मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन तरह की होती है। इनमें से मुग्धा तो एक ही तरह की होती है जबकि मध्या एवं प्रगल्भा दोनों तीन-तीन तरह की होती है। मध्या तथा प्रगल्भा के ये छः भेद ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के आधार पर दो-दो तरह के हो गए हैं। इस तरह छः तरह की मध्या छः तरह की प्रगल्भा तथा एक मुग्धा कुल मिलाकर स्वकीया के तेरह भेद आपने जान लिए हैं। परकीया नायिका परोढ़ा (दूसरे की विवाहिता)

और कन्या रूप होती है। सामान्या नायिका तो गणिका या वेश्या होती है। इन सभी प्रकार की नायिकओं की स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाओं तथा उनके शरीरज, अयत्नज एवं स्वभावज कुल मिलाकर बीस सात्विक अलंकरणों के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त हुई। इस ईकाई के अध्ययन करने के बाद आप नाट्य में सूच्य इतिवृत्त के सूचक (अर्थोपक्षेपक), नायक के गुण, भेद-प्रभेद तथा नायिका के भेद-प्रभेद तथा उनकी अवस्था एवं अलंकरणों को जानकर सहज ही उनकी अभिव्यक्ति करने में सक्षम होंगे।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली:

चूलिका:- "अन्तर्जवनिका संस्थैः चूलिका अर्थस्य सूचना"- जवनिका के अन्दर से अर्थात् पर्दे के पीछे स्थित पात्रों द्वारा जब किसी कथांश की सूचना दी जाय तो उसे चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक कहते हैं।

अर्थोपक्षेपक:- यह शब्द अर्थ$उपक्षेपक इन दो शब्दों से मिलकर बना है। अर्थ का तात्पर्य है कथांश या इतिवृत्त और उपक्षेपक का तात्पर्य है सूचक। नाटक में जो दृश्य या घटनाएँ रंगमंच पर दिखाए जाने योग्य नहीं होती, किन्तु दर्शकों के लिए उसे जानना आवश्यक होता है, तो ऐसे वृत्त की सूचना नाट्य में जिन उपायों के द्वारा दी जाती है उन्हें अर्थोपक्षेपक कहा जाता है।

मुग्धा:- जो नायिका यौवनावस्था में अभी पर्दापण कर ही रही होती है तथा जिसके मन में काम भाव का प्रथम स्फुरण हो रहा होता है उसे मुग्धा कहते हैं। इसके साथ-साथ मुग्धा का प्रणय कोप बड़ी आसानी से दूर किए जाने योग्य होता है। कामभाव से पूर्णतया परिरिचत न होने से यह रति क्रीडा में नायक के प्रतिकूल आचरण करने वाली होती है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

3. धनंजय, दशरूपकम्, व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, साहित्य भण्डार, मेरठ

4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

5. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार, मेरठ

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

खण्ड 1

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अंकास्य हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.3.7 को देखें।
2. अंकावतार हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.3.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. क
2. ख
3. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. संस्कृत
2. दो अंकों के मध्य में
3. पर्दे के पीछे से

सत्य/असत्य

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य

खण्ड 2

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अनुकूल नायक हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.4.11 को देखें।
2. धीरोदात्त नायक हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.4.5 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ग
2. ग
3. घ

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. धीरोदात्त
2. प्रकरण
3. निश्चिन्तो कलासक्त
4. धीरशान्तो

अति लघु उत्तरीय:

1. प्रिय वचन बोलने वाला या मधुर भाषी।
2. ब्राह्मण, वणिक् और अमात्य।
3. जो एक ही नायिका से प्रेम करे।

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

खण्ड 3

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. परकीया नायिका हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.5.7 को देखें।
2. सामान्या नायिका हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.5.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख
2. क
3. ग

अतिलघु उत्तरीय:

1.दूसरे की ब्याहता और कन्या।

2. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा क्रुधि मृदुः।

3. स्वाधीनपतिका

रिक्त स्थान की पूर्ति

1.वासकसज्जा

2.विरहोत्कंठिता3..खण्डिता

4. कलहान्तरिता 5. विप्रलब्धा 6. प्रोषितप्रिया 7. अभिसारिका।

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्थोपक्षेपक से आप क्या समझते हैं? अर्थोपक्षेपकों के भेद बताइए।
2. विष्कम्भक तथा प्रवेशक में क्या क्या समानताएँ तथा क्या क्या विषमताएँ हैं?
3. अंकास्य तथा अलंकावतार में साम्य तथा वैषम्य बताइए।
4. नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए नायक भेद का निरूपण कीजिए।
5. श्रृंगारिक आधार पर नायक की कितनी अवस्थाएँ होती हैं उनका लक्षण दीजिए।
6. स्वकीया नायिका किसे कहते हैं स्वकीया के भेद बताइए।
7. नायिकाओं की आठ अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई 4: दशरूपक के अनुसार रस मीमांसा

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

- 4.3.1 रस विवेचन
- 4.3.2 विभाव
- 4.3.3 अनुभाव
- 4.3.4 भाव
- 4.3.5 सात्त्विक भाव
- 4.3.6 व्यभिचारी भाव
- 4.3.7 स्थायी भाव
- 4.3.8 रसोत्पत्ति
- 4.3.9 लोल्लट का उत्पत्तिवाद
- 4.3.10 शंकुक का अनुमितिवाद
- 4.3.11 भट्टनायक का भुक्तिवाद
- 4.3.12 अभिवनगुप्त का रस सिद्धान्त
- 4.3.13 धनंजय का रस सम्बन्धी विचार
- 4.3.14 रस का आश्रय (स्थान)

4.3.15 रस प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप

4.3.16 श्रृंगार रस के भेद तथा लक्षण

4.3.17 वीर रस

4.3.18 वीभत्स रस

4.3.19 रौद्र रस

4.3.20 हास्य रस

4.3.21 भयानक रस

4.3.22 करूण रस

4.3.23 अद्भुत रस

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से संबंधित इस इकाई में आप दशरूपकार धनंजय की रस सम्बन्धी मीमांसा को समझ पाएंगे। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप रूपक के वस्तु एवं नेता तत्त्व के विषय में बता सकते हैं।

नाट्य का प्रयोजन सहृदय जनों को आत्मानन्द स्वरूप श्रृंगारादि रसों का आस्वादन कराना है। दशरूपककार धनंजय ने भरत मुनि के रस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी रस विषयक अपनी अवधारणा को यहाँ स्पष्टता से अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत इकाई में दशरूपक में धनंजय द्वारा की गई रस विषयक मीमांसा का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप दशरूपक के अनुसार नाट्य के रस तत्व की सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि विभाव, अनुभाव, भाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भाव किसे कहते हैं ?
- समझा सकेंगे कि विभावादि के द्वारा रसोत्पत्ति कैसे होती है ?
- बता पाएंगे कि भरत के रस सिद्धान्त पर विचार करने वाले विभिन्न आचार्यों के क्या मत हैं ?
- बता सकेंगे कि विभिन्न आचार्यों ने रस का आश्रय किसे माना है तथा इस सम्बन्ध में दशरूपककार का क्या मत है ?

- बता पाएंगे कि रस की प्रक्रिया तथा उसका स्वरूप क्या है ?
- बता सकेंगे कि श्रृंगार रस के भेद तथा उसके लक्षण क्या है ?
- बता पाएंगे कि वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, करूण एवं अद्भुत रसों के लक्षण क्या हैं ?

4.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

आप जानते हैं कि रूपकों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए धनंजय ने **'वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः'** कहकर दशरूपक के प्रथम प्रकाश में 'वस्तु' तत्त्व का सविस्तार वर्णन किया है। द्वितीय प्रकाश में 'नेता' तथा तृतीय प्रकाश में रूपकों के विभिन्न भेदों के स्वरूप एवं लक्षणों को बताया गया है। दशरूपककार ने ग्रन्थ के चतुर्थ प्रकाश में रूपकों में निरतिशय आनन्दभूत रस तत्त्व का विवेचन किया है। यद्यपि धनंजय नाट्याचार्य भरतमुनि के रस सिद्धान्त **"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः"** को मानने वाले हैं तथापि रसानुभूति किसे होती है? अर्थात् रस का स्थान क्या है? इस विषय में उनका मत कुछ विशेष है। दशरूपकम् के अनुसार रस मीमांसा इस प्रकार है-

4.3.1 रस विवेचन:

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य हुआ स्थायी भाव ही रस कहलाता है। रति, हास, शोक आदि स्थायी भाव सहृदयजन के चित्त में संस्कार रूप से स्थित होते हैं। वही स्थायी भाव जब काव्य में वर्णित या नाट्य में अभिनय द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भावों के द्वारा पुष्ट होकर सहृदय जन को अतिशय आनन्द की अनुभूति कराने वाला होता है तो वही रस है। काव्य या नाट्य के रसों को जानने से पूर्व विभावादि के विषय में जानना आवश्यक है। यहाँ धनंजय सम्मत विभावादि का लक्षण एवं स्वरूप विवेचन प्रस्तुत है-

4.3.2 विभाव:

"ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्।
आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा।।"

विभाव वह है जो स्वयं जाना हुआ होकर स्थायी भाव को पुष्ट करता है। यह विभाव दो प्रकार का है- 1. आलम्बन विभाव, 2. उद्दीपन विभाव । "यह दुष्यन्त आदि नायक ऐसा है" "यह शकुन्तला आदि नायिका ऐसी है" इस प्रकार नायकादि या देशकाल आदि, काव्य के अतिश्योक्ति

रूप वर्णन के द्वारा विशिष्ट रूप वाले हो जाने के कारण आलम्बन अथवा उद्दीपन के रूप में जाने जाते हैं। भरत मुनि ने विभाव का अर्थ दिया है "विभाव अर्थात् जाना हुआ अर्थ"।

1. आलम्बन विभाव: नाटक देखने वाले सहृदय सामाजिक के लिए नायक-नायिका दोनों ही आलम्बन विभाव होते हैं जबकि नाटक के नायक के लिए नायिका और नायिका के लिए नायक आलंबन विभाव होता है। यथा दुष्यन्त के लिए नायिका शकुन्तला आलम्बन विभाव है अर्थात् दुष्यन्त की रति का आलम्बन शकुन्तला तथा दूसरे पक्ष में शकुन्तला की रति का आलम्बन दुष्यन्त है, किन्तु ये दोनों नायक-नायिका दर्शक के चित्त की रति के आलम्बन होते हैं

2. **उद्दीपन विभाव:** उद्दीपन का सामान्य अर्थ है "उत्तेजित करने वाला पदार्थ"। वे विभाव अर्थात् हेतु या निमित्त या कारण, जो हृदय में स्थित रति आदि स्थायी भाव को उत्तेजित करते हैं, उद्दीपन विभाव हैं। इसके अर्न्तगत देश-काल (रमणीय उद्यान, रमणीय बसन्तादि ऋतु) आदि का समावेश होता है। किसी भी आलम्बन विभाव (नायक-नायिका) के कारण उद्बुद्ध हुए स्थायी भाव को ये उद्दीपन विभाव और भी अधिक उद्दीप्त कर रस रूप अवस्था को पहुँचाने वाले होते हैं। इसीलिए ये उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं।

4.3.3 अनुभाव:

"अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः"। रति आदि भावों को सूचित करने वाला विकार (शरीर आदि का परिवर्तन) अनुभाव है। सहृदय सामाजिकों को रति आदि स्थायी भावों का अनुभव कराने वाले (आश्रय/नायक आदि के) भ्रूविक्षेप-कटाक्ष आदि शरीर के विकार या व्यापार अनुभाव कहलाते हैं। इन्हें अनुभाव इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये, नाटकादि दृश्य काव्य तथा महाकाव्य आदि श्रव्य काव्य में, इन अनुभावों को साक्षात् अनुभव करने वाले रसिक जनों के अनुभव के कर्म के रूप में अनुभूत होते हैं अर्थात् सहृदय सामाजिकों के अनुभव का विषय होने के कारण ही ये अनुभाव है। भावों को सूचित करने वाला विकार अनुभाव है- यह कथन लौकिक रस की दृष्टि से ही है। काव्य या नाट्य में तो ये अनुभाव रस को ही परिपुष्ट करने वाले होते हैं।

4.3.4 भाव

रस का स्वरूप विवेचन करते हुए (व्याभिचारी तथा स्थायी) भाव का उल्लेख किया गया है। अतः सर्वप्रथम भाव के विषय में धनंजय कहते हैं-**"सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावतद्भावभावनम्"** सुख-दुखादि भावों के द्वारा सहृदय के चित्त को भावित कर देना ही भाव कहलाता है। अनुकार्य राम या दुष्यन्त आदि के जिन सुख-दुख आदि भावों का वर्णन काव्य में किया जाता है, उनके द्वारा रसिक

(सहृदय जन) के चित्त को भावित या वासित करना ही भाव कहा जाता है। यह इस प्रकार है जैसे रामलीला में सीता के वियोग से व्याकुल राम को देखकर, उनके दुःख के साथ दर्शक के हृदय की तन्मयता या एकतानता हो जाती है, यही भाव है। अनुकार्य राम आदि के सुख-दुख आदि भाव दर्शकों के मन को उसी प्रकार वासित कर देते हैं जैसे कि अगरबत्ती की सुगन्ध आस-पास के क्षेत्र को सुवासित कर देती है।

4.3.5 सात्त्विक भाव:

"पृथग्भावाभवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्विका"

"सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्।।" यद्यपि सात्त्विक भाव अनुभाव ही है तथापि ये पृथक् रूप से भाव कहे जाते हैं। इनको सात्त्विक भाव इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये सत्त्व अर्थात् मन (मानसिक स्थिति) से उत्पन्न होते हैं। सत्त्व का अर्थ है एकाग्र मन। यह सत्त्व जिस"का प्रयोजन या हेतु हो वह सात्त्विक कहलाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि किसी स्थायीभाव की जाग्रति के बाद होने वाली शारीरिक चेष्टाएँ और गतियाँ दो तरह की होती हैं- 1. इच्छाजन्य 2. स्वयंभूत (अपने आप होने वाली)। कुछ गतियाँ या चेष्टाएँ ऐसी होती है जिनको स्थायी भावयुक्त व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रकट करता है जैसे आँखों और भौंहो को चलाना। स्थायीभाव के आवेश में ये इच्छा जनित चेष्टाएँ दूसरों को अपने भावों से अवगत कराने के उद्देश्य से की जाती है। इस प्रकार की चेष्टा या गतियों को अनुभाव कहा जाता है परन्तु एक दूसरे प्रकार की भी गतियाँ या चेष्टाएँ हैं, जो स्थायी भाव के जाग्रत होने पर अपने आप प्रकट होने लगती हैं जैसे मुख का पीला पड़ जाना, रोमांच, लज्जा आदि। इन चेष्टाओं को सात्त्विक भाव कहा जाता है। ये सात्त्विक भाव आठ हैं। 1. स्तम्भ (अंगों का निष्क्रिय हो जाना), 2. प्रलय (अचेतना), 3. रोमांच, 4. स्वेद, 5. वैवर्ण्य (मुख आदि का रंग फीका पड़ जाना), 6. वेपथु (कम्पन), 7. अश्रु और 8. वैस्वर्य (आवाज का बदल जाना)।

4.3.6 व्यभिचारी भाव:

"विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।"

विविध प्रकार से स्थायी भाव के अनुकूल चलने वाले भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। अर्थात् जो भाव स्थायी भाव के अन्तर्गत कभी उठते तथा कभी विलीन होते हुए से, (सागर की तरंगों के समान) प्रतीत होते हैं, वे भाव व्याभिचारी कहलाते हैं। ये तैतीस माने गए हैं-निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा,

विबोध, क्रीड़ा, अपस्मार, मोह, सुमति, अलसता, वेग, तर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य तथा चपलता।

4.3.7 स्थायी भाव:

"विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः"।।

जो रति आदि भाव, अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी भी भाव के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और अन्य भावों को उसी प्रकार आत्मसात कर (अपने में मिला) लेता है जैसे समुद्र सभी तरह के जल को आत्मसात् कर खारा बना देता है, वह स्थायी भाव कहलाता है। काव्यशास्त्र के सभी आचार्यों ने रति आदि स्थायी भावों का विवेचन किया है। ये रति आदि स्थायी भाव इसलिए स्थायी कहलाते हैं क्योंकि ये स्थितिशील अर्थात् स्थित रहने वाले हैं। **'स्थायी यस्मादवस्थितः'** (नाट्यशास्त्र पृ0 सं0 379)। साथ ही रति आदि स्थायी भाव प्रधान भी होते हैं। **'बह्वाश्रयत्वात् स्वामिभूतो स्थायिनो भावाः'** (नाट्यशास्त्र पृ0 सं0 349) इस तरह इनकी दो विशेषताएँ हैं- 1. स्थितिशीलता, 2. प्रधानता। दशरूपकम् में इन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है। स्थायी भाव वह है जो प्रतिकूल या अनुकूल भावों के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता है। जिस प्रकार समुद्र में कैसा भी पानी क्यों न गिरे वही खारा हो जाता है। इसी तरह सभी व्यभिचारी भाव आदि स्थाई भाव के रूप में ही घुलमिल जाते हैं। ये स्थायी भाव आठ हैं- 1.रति, 2.उत्साह, 3.जुगुप्सा, 4.क्रोध, 5. हास, 6. विस्मय, 7.भय, 8. शोक। कुछ आचार्य शम की भी स्थायी भाव में गणना करते हैं, किन्तु शम की पुष्टि रूपकों में नहीं होती है। अतः नाटक आदि में रति से शोक तक आठ ही स्थायी भाव होते हैं।

4.3.8 रसोत्पत्ति:

इस प्रकार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव एवं स्थायी भाव के विषय में जानने के बाद आपके लिए यह जानना भी नितान्त आवश्यक है कि इन सबके द्वारा रस निष्पत्ति कैसे होती है ? वस्तुतः काव्य आदि को सुनने या नाटक आदि को देखने से राम आदि आलम्बन, विभाव, शरद ऋतु या उपवन आदि उद्दीपन विभावों, भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभावों तथा निर्वेद ग्लानि आदि व्यभिचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर सहृदय सामाजिकों या दर्शकों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, भय और विस्मय ये आठ स्थायी भाव श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत रसों के रूप में परिणत हो जाते हैं।

रस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य कहते हैं- **"रस्यते इति रसः"** जो आस्वादित किया जाय वह रस है अथवा **"रसते इति रस"** जो रसता (बहता) है, वह रस कहलाता है। भारतीय

काव्य परम्परा में रस तत्त्व की सत्ता काव्य की उत्पत्ति के साथ ही मानी जाती है। वैदिक वाक्य है- **"रसो वै रसः"** अर्थात् 'रस' आनन्द स्वरूप ब्रह्म है। सामान्यतः काव्य को सुनने या नाटकादि को देखने से सहृदय जनों को जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वही रस कहा जाता है। रस निष्पत्ति कैसे होती है? इस विषय में आचार्य भरत का वाक्य **"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः"** प्रसिद्ध है। भरत के इस रस सम्बन्धी वाक्य की व्याख्या संस्कृताचार्यों ने अपने-अपने ढंग से की है। यथा

4.3.9 लोल्लट का उत्पत्तिवाद:

लोल्लट का रस सम्बन्धी सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में रसोत्पत्तिवाद के नाम से प्रख्यात है। लोल्लट के अनुसार विभावादि उत्पादक हैं और रस उत्पाद्य। अतः लोल्लट कारण-कार्यवाद का प्रतिपादन करते हुए विभाव आदि को रस-रूप कार्य का कारण मानते हैं। रति-भाव अन्य स्थायी भाव के समान नायक-नायिका में तथा अन्य में भी अपने स्थायी भाव के रूप में अन्तर्निहित रहता है और उद्दीपन, आलिंगन, कटाक्ष आदि अनुभावों के द्वारा अनुभूत होता है। औत्सुक्यादि संचारी भावों के द्वारा परिपुष्ट होता है। इस तरह स्थायी रूप में विद्यमान रति-भाव रस रूप में उत्पन्न होता है। वह रस सामाजिकों के अन्तःकरण में उत्पन्न नहीं होता। राम या दुष्यन्तादि पात्रों को ही इसका अनुभव हो पाता है। दुष्यन्त अथवा राम की वेश-भूषा धारण करने के कारण ही सामाजिक नट को ही दुष्यन्त या राम समझते हैं। सामाजिकों को इसी भ्रान्तिवश क्षणिक आनन्दानुभूति होती है। लोल्लट का यह रसोत्पत्तिवाद का मत दोषरहित नहीं कहा जा सकता है। इनके मत में सबसे बड़ा दोष सामाजिकों में रस की स्थिति को स्वीकार न करना है। वस्तुतः राम या दुष्यन्त अतीत काल में थे, वर्तमान में तो सहृदय सामाजिक ही रस का आस्वादन करता है।

4.3.10 शंकुक का अनुमितिवाद:

लोल्लट के उत्पत्तिवाद का सर्वप्रथम खण्डन करके शंकुक ने अपने अनुमितिवाद की स्थापना की। शंकुक ने आचार्य भरत के रस सूत्र की नवीन व्याख्या करते हुए कहा है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा रस की अनुमिति होती है, उत्पत्ति नहीं। पर्वत में धुएँ को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि पर्वत अग्निमान् है। उसी प्रकार काव्य या नाट्य में सहृदय सामाजिक नट को राम अथवा दुष्यन्त के सदृश ही अनुभावों से युक्त देखता है तो वहाँ पर रस की स्थिति का अनुमान कर लेता है। वास्तविक राम या दुष्यन्त नहीं है, तथापि सामाजिक को नट में राम अथवा दुष्यन्त की अनुमिति होती है। इस प्रकार शंकुक ने अनुमितिवाद की स्थापना की है। लोल्लट के मत का खण्डन कर अनुमितिवाद की स्थापना करना भी सर्वथा दोषरहित नहीं रह सका। रस तो

प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। इसकी सम्वेदना प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही हो जाती है, अतः अनुमान प्रमाण द्वारा इसकी सत्ता को सिद्ध करना उचित नहीं है।

4.3.11 भट्टनायक का भुक्तिवाद:

भट्टनायक ने उत्पत्त्विाद तथा अनुमितिवाद दोनों का खण्डन करके भुक्तिवाद की स्थापना की है तथा भाव और रस में भोज्य-भोजक-भाव सम्बन्ध माना है। उसके मतानुसार विभावादि भोजक है और रस भोज्य। इन्होंने रसानुभूति की प्रक्रिया में भावकत्व और भोजकत्व व्यापार की कल्पना की है। अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि सामाजिक सर्वप्रथम काव्य की अभिधा शक्ति से वाच्यार्थ ज्ञान प्राप्त करता है। तदन्तर भावकत्व व्यापार द्वारा राम अथवा दुष्यन्त की भावना के साथ अपने भावों का तादात्म्य स्थापित करता है। इस भावकत्व व्यापार की प्रक्रिया में रामादि पात्र अपने व्यक्तित्व को छोड़कर साधारण रूप में हो जाते हैं और इस साधरणीकरण की प्रक्रिया में रजस् और तमस् वृत्तियों का लोप हो जाता है तथा सत्त्व का उद्रेक करने वाली प्रकाशात्मिकता और आनन्दात्मिका अनुभूति से सामाजिकों को रसभोग होता है। उनका विचार है- **"विभावादिभिः संयोगात् भोज्यभोजकभावसम्बन्धनात् रसस्य निष्पत्तिर्भुक्तिः।"** यद्यपि भट्टनायक की अपूर्व देन-साधारणीकरण प्रक्रिया है, किन्तु लक्षणकारों ने इनके भोज्य-भोजक-भाव को प्रमाणित नहीं माना है।

4.3.12 अभिनवगुप्त का रस-सिद्धान्त:

आचार्य भरत की रस-सूत्र की अन्तिम व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने की है, जिनका मत व्यंजनावादी है। अभिनवगुप्त रस को व्यंग्य मानते हैं और रस की प्रतीति अभिधा एवं लक्षणा के द्वारा न मानकर, व्यंजना वृत्ति द्वारा रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। वे विभावादि तथा रस में व्यंग्य-व्यंजक-भाव वृत्ति द्वारा रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। जब सहृदय सामाजिक काव्य अथवा नाट्य का पठन या अवलोकन करता है तो काव्य या नाट्य में वर्णित विभावादि उसके हृदय में स्थित अव्यक्त भावों को व्यक्त कर देते हैं। इस प्रकार इस रूप में अभिव्यक्त होकर विभावादि सामाजिकों को रसानुभूति कराते हैं। यह रसानुभूति लौकिक भावानुभूति से पृथक् होती है।

4.3.13 धनंजय का रस सम्बन्धी विचार:

यद्यपि अभिनवगुप्त का व्यंजनावादी मत मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण आचार्यों के मध्य अत्यन्त अत्यधिक प्रतिष्ठित है, किन्तु आचार्य धनंजय रस-प्रक्रिया को व्यंजना पर आधारित नहीं मानते। वे विभावादि तथा रस में वाच्य-वाचक भाव मानते

हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारशास्त्रियों की तरह नाट्य में नौ रसों के स्थान पर आठ ही रसों का प्रतिपादन करते हैं। वह शान्त रस को नाट्य में निषिद्ध मानते हैं। अतः धनंजय के रस-सिद्धन्त में मुख्य तीन तत्व हैं- 1. विभावादि तथा रस में व्यंग-व्यंजक-भाव का खण्डन, 2. अपने मत वाच्य-वाचक-भाव की स्थापना और 3. नाट्य में शान्त रस का निषेध।

आचार्य धनंजय ने सबसे पहले अपने मत की स्थापना के लिए व्यंजना वृत्ति के द्वारा रसानुभूति का खण्डन किया है। वे अभिधा, लक्षणा तथा तात्पर्य-इन तीनों को ही वृत्तियाँ मानते हैं और व्यंजना शक्ति (व्यंग्यार्थ) का निषेध करते हैं। ध्वनिवादी जिसे प्रतीयमान अर्थ, व्यंजनावादी व्यंग्यार्थ कहते हैं, धनंजय उन सभी अर्थों को तात्पर्य में वृत्ति में ही मानते हैं।

धनंजय के मत में स्थायी भाव तथा रस काव्य के वाच्यार्थ ही हैं। कोई वाक्य वैदिक हो या लौकिक, उसकी परिसमाप्ति कार्यपरक होती है। काव्य का कार्य या उद्देश्य आनन्दानुभूति है। सहृदयों को रसानुभूति काव्य अथवा नाट्य में वर्णित विभाव के द्वारा होती है वाच्यार्थ को प्रकट करने वाली

अभिधा शक्ति द्वारा ही इनका (विभावादि का) प्रतिपादन किया जाता है।

अपने मत की प्रतिस्थापना करते हुए आचार्य धनंजय ने लोल्लट, शंकुक तथा भट्टनायक के मतों का भी थोड़ा-थोड़ा अंश रखा है। दशरूपककार धनंजय ने अपने मत का प्रतिपादन इस प्रकार किया है।-

"वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथा क्रिया।
वाक्यार्थः कारकैर्युक्ता स्थायीभाव स्तथैतरैः।।"

जिस प्रकार वाक्य अथवा प्रकरण से बुद्धि में स्थित क्रिया ही कारकों से युक्त होकर वाच्यार्थ होती है, उसी तरह विभावादि के द्वारा (वर्णित) स्थायी भाव भी वाक्यार्थ है। धनंजय ने रसानुभूति को वाच्यार्थ से प्रतिपादित माना है। जैसे-(1) गाय को लाओ और (2) द्वार (खोलो या बन्द करो) इन दोनों वाक्यों में से एक में क्रियापद लाओ का उपयोग हुआ है। दूसरे प्रकरण द्वारा (द्वार खोलो या बन्द करो) आदि का ज्ञान होता है, ठीक इसी प्रकार काव्य में कहीं तो स्थायी भावों के वाच्य शब्द प्रीति आदि का प्रयोग करके जैसे-'प्रीत्यैनवोदाप्रिया' और कहीं पर प्रकरण द्वारा यह स्थायी भाव (काव्य में वर्णित) विभिन्न शब्दों द्वारा कहे गये विभावानुभाव, संचारी भावों के माध्यम से अत्यन्त पुष्ट हो जाता है और वाक्य का अर्थ माना जाता है।

आचार्य धनंजय के मत में विभावादि या काव्य भावक है, रसादि भाव्य। भट्टनायक के मतानुसार ही वे विभावादि और रस में भाव्य-भावक सम्बन्ध मानते हैं। भाव इसलिए भाव कहे जाते

हैं कि ये सामाजिकों को श्रृंगार आदि रस की अनुभूति कराते हैं। जैसा कि आचार्य भरत-कृत 'नाटयशास्त्र' में वर्णित है-

"भावभिनय सम्बन्धान्भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः।।"

यह (चिन्ता आदि भाव) सामाजिकों को भावाभिनय से सम्बन्ध रखने वाले रसों की भावना कराते हैं, इसलिए नाट्य-प्रयोक्ताजन इन्हें भाव कहते हैं। रस-विषयक अन्तिम मत रस के स्थायी भावों की संख्या के विषय में है। धनंजय वस्तुतः आठ ही स्थायी भाव मानते हैं। वे शम स्थायी भाव को नाटकों में स्थान नहीं प्रदान करते हैं।-

"रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः।
शममपि केचत्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।।"

रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय तथा शोक- ये आठ स्थायी भाव होते हैं। कुछ आचार्य शम को भी नवें स्थायी भाव के रूप में मान्यता देते हैं, किन्तु उनकी पुष्टि रूपकों में नहीं हो पाती।

4.3.14 रस का आश्रय (स्थान):

काव्य के अर्थ से सहृदय जन में भावित होने वाले रति आदि स्थायी भाव ही रस हैं, क्योंकि उनका आस्वादन किया जाता है। इस रस का आस्वादन किसे होता है? अनुकार्य (राम आदि) को, अनुकर्त्ता (नट आदि) को अथवा सहृदय सामाजिक को इस विषय में विद्वानों का अलग-अलग मत है। आचार्य लोल्लट ने रस का स्थान (आश्रय) अनुकार्य माना है। उनके मतानुसार विशेष रूप से नाटक के मूलपात्र अनुकार्य राम आदि ही रस का आश्रय है गौण रूप से अनुकर्त्ता नट भी राम आदि मूल पात्रों का अभिमान कर रस का आस्वाद कर लेता है। सहृदय (रसिक) इस रस का अनुभव नहीं करता, वह तो केवल चमत्कृत् होता है।

आचार्य शंकुक का विचार है कि राम आदि मूल पात्रों का जब अस्तित्व ही नहीं रहा तो उनके द्वारा अनुभूत रस की सत्ता वर्तमान में (नाटक के प्रदर्शित होने पर) कैसे हो सकती है? शंकुक के अनुसार नट रामादि के रति आदि स्थायी भाव का अनुकर्ता मात्र है अनुभवकर्ता या आस्वादयिता नहीं। निष्कर्षतः शंकुक के मत में रस का स्थान नट का अभिनय है नट नही। भट्टनायक के अनुसार इसका स्थान सहृदय (रसिक) का चित्त ही है। अभिनवगुप्तपाद के अनुसार रस आस्वाद्य न होकर आस्वादन रूप है। अतः रस का अर्थ है-आत्मानन्द, जिसका स्थान निश्चय ही सहृदय का चित्त या आत्मा है।

वस्तुतः नाटक आदि का प्रयोजन दर्शकों को रसास्वाद कराना है अनुकार्य (रामादि) को नहीं। क्योंकि अनुकार्य तो अतीत के होते हैं उन्हें रसास्वादन कराया भी कैसे जा सकता है? दशरूपककार धनंजय और उसके वृत्तिकार धनिक ने रस की स्थिति सहृदयगत मानी है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि सहृदयगत स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होते हैं। उनका मानना है कि राम, दुष्यन्त आदि का अभिनय देखकर रति आदि स्थायी भाव ही जब आस्वाद्यता को प्राप्त होते हैं अर्थात् सहृदय के चित्त में अलौकिक निर्भरानन्द चेतना को विकसित करते हैं, तब 'रस' कहा जाता है। यह रस सहृदय सामाजिक के चित्त में ही रहता है। वस्तुतः नाटक को देखने वाले हर दर्शक को रसानुभूति नहीं हो सकती है। उसके लिए (आनन्दानुभव के लिए) सहृदय होना बहुत जरूरी होता है। क्योंकि रसिक सामाजिक ही नाटक के अभिनय के अवसर पर उपस्थित रहता है, अनुकार्य (मूलपात्र-राम आदि) तो अतीत काल के होते हैं। इस तरह रस की स्थिति अनुकार्य राम आदि में नहीं मानी जा सकती। रस का स्थान तो सहृदय सामाजिक ही है। हाँ काव्यार्थ की भावना से उद्भूत नट को भी रसास्वाद होने में कोई मतवैभिन्य नहीं है। धनंजय कहते हैं कि नट को भी रसास्वादन प्राप्त हो सकता है। नाटक में तो नट-नटी (अभिनय करने वालों) के हृदय में भी रस की स्थिति माननी पड़ेगी अर्थात् इन्हें भी सहृदय होना चाहिए, नहीं तो वे संवेद्य-भावना विशेष को सहृदय सामाजिक के हृदय में संप्रेषित नहीं कर सकते। तात्पर्य यह है कि नाटक आदि में अभिनय करते हुए नट-नटी अपने चित्त में स्थित रस का आस्वादन तो करते ही हैं साथ ही उनका यह रसास्वादन सहृदय के चित्त में संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायी भावों को जाग्रत कर रस दशा को प्राप्त करा देता है।

4.3.15 रस प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप:

आत्मानन्द की अनुभूति को ही रस कहा जाता है। काव्यार्थ के साथ एकाग्रता होने से सहृदय के चित्त में जो आनन्द अनुभव होता है, वही स्वाद (रस) कहलाता है। यह स्वाद वैसे तो सभी रसों में पाया जाता है फिर भी अलग-अलग रसों के अलग-अलग विभाव होते हैं। अतः इस भिन्नता के कारण सहृदय के चित्त की चार अवस्थाएँ हो जाती है-

1.श्रृंगार एवं हास्य में चित्त का विकास होता है।

2. वीर एवं अद्भुत में चित्त का विस्तार होता है।

3. वीभत्स तथा भय में चित्त का क्षोभ होता है।

4. रौद्र तथा करूण में चित्त का विक्षेप होता है।

धनंजय तथा धनिक दोनों ने शान्त रस को नाटक में स्वीकार नहीं किया है। शम शान्त रस का स्थायी भाव है। शान्त रस अनिर्वाच्य है अर्थात् इसका अभिनय नहीं किया जा सकता है। क्योंकि यह सुख-दुःख, चिन्ता, राग-द्वेष सभी से परे है तथा मुदिता, मैत्री, करूणा एवं उपेक्षा से प्रतीत होता है। शान्त रस की यह अवस्था केवल मोक्ष की अवस्था में ही प्राप्त हो सकती है और नाट्य का प्रयोजन तो मात्र 'धर्मार्थकाम' रूप ही होता है। मोक्ष नाट्य का प्रयोजन नहीं है। अतः नाटकादि में शान्त रस नहीं होता है।

काव्य में विभाव (चन्द्रमा आदि), संचारी भाव (निर्वेद आदि), तथा अनुभाव (रोमांच आदि) का जो अस्वादन किया जाता है, वही रस कहलाता है। नाट्यगत रसों का विशेष लक्षण इस प्रकार है-

4.3.16 श्रृंगार रस के भेद तथा लक्षण:

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है-**'वृत्तः यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यं दर्शनीयं वा तच्छंगोरेणोपमीयते'** अर्थात् संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्जवल तथा दर्शनीय है, उसकी उपमा श्रृंगार रस से दी जाती है। इस रस की अजस्र धारा आबाल-वृद्ध को अपनी रमणीयता में डुबो देती है। आनन्दवर्धन ने इस श्रृंगार रस को सर्वाधिक मधुर तथा आनन्ददायक रस के रूप में माना है। कविराज विश्वनाथ इसे और भी व्यापक तथा महत्वपूर्ण रस के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार केवल श्रृंगार ही एक ऐसा रस है, जिसमें उग्रता, मरण, आलस्य तथा जुगुप्सा को छोड़कर अन्य सभी निर्वेदादि संचारी भाव होते हैं।

श्रृंगार रस को रसराज माना जाता है, जिसका हेतु इसकी सार्वदेशिकता तथा सार्वभौमिकता है। कामभावना मानव से लेकर पशु-पक्षी तक में स्वभाविक रूप से पाई जाती हैं। अन्य रसों की तुलना में सहृदय जनों को श्रृंगार रस की चर्वणा अधिक होती है। श्रृंगार रस की अपनी एक सबसे बड़ी विशिष्टता है-अन्य रसों को अपने आप में समाहित करने की क्षमता।

"रम्यदेश कलाकाल वेष भोगादिसेवनैः।
प्रमोदात्मारतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।।"

रमणीय देश, संगीत, नृत्य आदि कला, रमणीय बसन्त आदि काल, सुन्दर वेष, तथा भोगादि के सेवन से एक-दूसरे के प्रति आसक्त युवक एवं युवतियों को जो आनन्द होता है, वही रति-भाव है। यही रति नामक स्थायी भाव नायक या नायिका के अंगों की रमणीय चेष्टाओं से परिपक्व होकर श्रृंगार रस कहलाता है। श्रृंगार रस का यह स्वरूप जो काव्य में प्रयोग के योग्य होता है, वह लौकिक श्रृंगार के अन्तर्गत आता है। काव्य में वर्णन द्वारा सहृदय जनों के मन में जो एक विशेष

प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुआ करती है, वह अलौकिक है। रमणीय देश, काल, चन्द्रोदय, सूर्योदय तथा पर्वत उपवन आदि उद्दीपन विभाव के रूप में होते हैं। इसी तरह नायिका सीता-शकुन्तलादि नायक राम, दुष्यन्तादि के लिए आलम्बन रूप होती है। नायक राम आदि नायिका सीता आदि के लिए आलम्बन, रूप में होता है। उदाहरणार्थ-'उत्तर-रामचरित' के प्रस्तुत श्लोक में राम और सीता का परस्पर प्रेम-रूप रति-भाव गोदावरी के तट पर (रम्य देश द्वारा उद्दीप्त होकर) श्रृंगार रस के रूप में आस्वाद्यमान है।-

स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन्
प्रतिविहिति सपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि?
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावर्यावर्तनानि।। भवभूति, उत्तररामचरितत, 1/26

"हे मनोहर शरीर वाली सीते, उस पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा की गई सेवा से आनन्दपूर्वक निवास करते हुए क्या अपने उन दिनों का स्मरण करती रही हो? क्या तुम्हें सरस तट वाली गोदावरी याद है ? और उसके समीप हम दोनों के विहार करने का स्मरण है।" उपर्युक्त वर्णन में राम के द्वारा रम्य स्थलों का वर्णन किया जा रहा है। अतः पर्वत एवं गोदावरी के रमणीय तटों के द्वारा उद्दीप्ति होने वाली राम की आसक्ति का वर्णन किया गया है। युवक-युवती का विभाव, जैसे-'मालती-माधव' में कामन्दकी कहती है कि, "महल की छत पर वातायन में बैठी रति के समान मालती बारम्बार अपने समीप की नगर की गली में घूमने वाले साक्षात् नवीन कामदेव के समान माधव को देखकर उत्कंठा युक्त हुई कम्पित रमणीय अंगों से पीड़ित-सी हो रही है। "

श्रृंगार के भेद: धनंजय के अनुसार श्रृंगार रस के तीन भेद हैं-अयोग, विप्रयोग और सम्भोग। प्रायः अन्य सभी काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार के दो भेद किये हैं-विप्रलम्भ तथा सम्भोग। वस्तुतः दशरूपककार ने भी विप्रलम्भ को ही आयोग विप्रलम्भ के रूप में प्रयुक्त किया है। धनंजय के मत में विप्रलम्भ शब्द का मुख्य अर्थ है-वंचना।

यदि नायक संकेत-समय पर उपस्थित न हो और अन्य नायिका का अनुसरण करे, तब वंचना होती है और इस तरह की वंचना को विप्रलम्भ कहा जाता है, किन्तु विरह का निमित्त अन्य भी हो सकता है। अतः धनंजय ने विप्रलम्भ का प्रयोग न कर अयोग और विप्रयोग का इस्तेमाल किया है।

अयोग श्रृंगार: अयोग का अर्थ है किसी मिलन का जहाँ अभाव हो-

"तत्रायोगाऽनुरागोपि नवयोरेकचित्तयो:।
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगम:।।"

अयोग, श्रृंगार की वह अवस्था होती है जहाँ पर नायक-नायिका दोनों एक दूसरे पर आसक्त तो होते हैं, किन्तु परतन्त्रतावश वे एक-दूसरे से मिल नहीं पाते हैं। उनका मिलन किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो पाता है। योग का अभिप्राय नायक-नायिका का परस्पर समागम होता है, किन्तु जहाँ पर समागम न हो पाये, वह अयोग कहलायेगा। अर्थात् माता-पिता अथवा भाग्य के अधीन होने के कारण जो वियोग होता है, उसे ही अयोग कहते हैं। जैसे-'रत्नावली' नाटिका में सागरिका वासवदत्ता के अधीन होने के कारण वत्सराज उदयन से समागम नहीं कर पाती अथवा 'मालती-माधव' में पिता के अधीन होने के कारण मालती का माधव से मिलन नहीं होता। भाग्यवश होने वाला अयोग जैसे पार्वती और शिव का बहुत समय तक संयोग नहीं होता।

इस अयोग श्रृंगार से उत्पन्न होने वाली नायक-नायिका की दस अवस्थाएँ होती हैं जो क्रमशः अधिक दुःखदायिनी होती हैं। ये अवस्थाएँ हैं- (1) अभिलाषा (2) चिन्ता, (3) स्मृति, (4) गुणकथन, (5) उद्वेग, (6) प्रलाप, (7) उन्माद, (8) संज्वर, (9) जड़ता, और (10) मरण।

"अभिलाष: स्पृहा तत्र कान्ते सर्वांगसुन्दरे।"
दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसा:।।"
"साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायामायासु दर्शनम्।"
श्रुतिर्व्याजात्सखी गीतमागधादिगुणस्तुते:।।"

उक्त दस अवस्थाओं में से अभिलाषा वह है जिसमें सर्वांग सुन्दर प्रिय का दर्शन होने पर, उसके विषय में सुनकर, उसके प्रति इच्छा होती है। इसके तीन अनुभाव होते हैं-विस्मय, आनन्द तथा संभ्रम। प्रिय का दर्शन पाँच प्रकार से होता है-साक्षात् दर्शन से, चित्र के माध्यम से, स्वप्न में, छाया द्वारा अथवा माया या इन्द्रजाल से। प्रिय का श्रवण सखी के मुख से, गीत के माध्यम से अथवा मागध (चारण-भाट आदि स्तुति गायक)के गुण-कीर्तन से होता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अभिलाषा का उदाहरण दिया गया है। जैसे-शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में अभिलाषा होती है-

"असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि में मन:
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त:करणप्रवृत्तय:।।"

अर्थात् निःसन्देह ही यह क्षत्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य है। तभी मेरा मन इसके प्रति अभिलाषायुक्त है। संशयात्मक पदार्थों अथवा विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है। इसके अनुभावों में विस्मय, आनन्द तथा संभ्रम हुआ करते हैं।

विप्रयोग श्रृंगार: जिनमें परस्पर प्रगाढ़ अनुराग होता है, ऐसे नायक नायिका का पृथक् हो जाना ही विप्रयोग कहा जाता है। यह विप्रयोग दो प्रकार का होता है-1. मान-विप्रयोग और 2. प्रवास-विप्रयोग। मान-विप्रयोग भी दो प्रकार से होता है प्रणयमान तथा ईर्ष्यामानं। जिन नायक-नायिका का मिलन एक बार हो चुका हो उनमें जब वियोग होता है, तो वह विप्रयोग श्रृंगार कहलाता है। **"प्रणय मान विप्रयोग: "तत्र प्रणयमानः स्यात् कोपावसितयोर्द्वयोः।"** प्रणयमान वह स्थिति है जिसमें नायक एवं नायिका दोनों या दोनों में से एक कुपित रहता है। प्रणयमान अर्थात् प्रणय में किया गया मान। जब नायक-नायिका दोनों में घनिष्ट प्यार हो जाता है तो इनमें अकारण ही क्रोध उत्पन्न होता है, क्योंकि 'प्रेम्णः कुटिलगामित्वात्' यह कथन सत्य है। 'उत्तररामचरित' में दिया गया है-

"अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः।
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरी सैकते।"
"आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामान्जलिः।।"

वनदेवी वासन्ती राम के प्रणयमान का वर्णन करती हुई कहती है-"इस लतागृह में आप उसके आने के मार्ग में दृष्टि लगाये बैठे रहते थे और वह सीता हंसों के साथ क्रीड़ा करती हुई गोदावरी के बालुकामय तट पर बहुत देर तक ठहरी रही। जब वह आई तो आपको कुपित सा देखकर उसने कातरतापूर्वक कमल की कली के समान सुन्दर प्रणामान्जलि बाँधी।" ईर्ष्यामान: स्त्री के कोप अर्थात् क्रोध के कारण जब प्रणय भंग होता है, तो वह ईर्ष्यामान कहा जाता है।

"स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः कोपोन्यासंगिनि प्रिये
श्रुते वाऽनुमिते दृष्टे, द्युतिस्तत्र सखीमुखात्
उत्स्वप्नायित भोगांक गोत्रस्खलनकल्पितः
त्रिधाऽनुमानिको, दृष्टः साक्षादिन्द्रियगोचरः।।"

अपने प्रिय को अन्य युवती में अनुरक्त जानकर, अनुमान करके अथवा देखकर नायिका को जो क्रोध होता है वह ईर्ष्यामान कहलाता है। यह तीन प्रकार का हुआ करता है। स्वप्न की बड़बड़ाहट से, सम्भोग के चिन्हों से भूल से अथवा दूसरी नायिका का नाम लेने से साक्षात् इन्द्रियों का विषय होने पर प्रत्यक्ष देखा हुआ माना जाता है। जैसा कि धनिक ने कहा है-सखी के मुख से सुनने के बाद ईर्ष्यायुक्त नायिका से नायक कह रहा है-

"सुभ्रुरत्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा
मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता।
किं त्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः
किं धात्रीतनया वयं किमु सखी किंवा किमस्मत्सुहृत्।।"

अर्थात् "हे सुन्दर भौंह वाली! तुम्हारा हृदय नवनीत के समान मृदु है, अतः किसी दुष्ट की मन्त्रणा से, झूठे ही तुम्हारे हितकारी बनने वाले मीठी बात कहने वाले व्यक्ति ने तुम्हें हम पर कुपित कर दिया, किन्तु क्षण-भर को यह तो विचार करो कि इन सभी प्रिय-जनों में तुम्हारा सच्चा हितैषी कौन है? यह धाय की पुत्री या सखी, हमारे मित्र अथवा हम।" इसी प्रकार स्वप्न की बड़बड़ाहट से, भोग के चिह्न से युक्त नायक को देखकर, नायक द्वारा भूल से किसी अन्य नायिका का नाम लिए जाने पर नायिका ईर्ष्यामान से युक्त हो जाती है।

प्रवास विप्रयोग:

"कार्यतः सम्भ्रमच्छापात्प्रवासो भिन्न देशता।
द्वयोस्तत्राश्रुनिश्वासकार्श्यलम्बालकादिता।।"

किसी कार्यवश, सम्भ्रम अथवा शाप से दोनों का (नायक-नायिका का) भिन्न-भिन्न स्थान में निवास करना प्रवास कहलाता है। इसके अनुभाव होते हैं-अश्रु गिरना, निःश्वास लेना, दुर्बलता, बालों का बढ़ना इत्यादि। इनमें से प्रथम कार्यवश होने वाला प्रवास तीन प्रकार का होता है-भावी (आगे आने वाला) प्रवास, वर्तमान समय का प्रवास तथा भूत (बीता हुआ) प्रवास।-**'द्वितीयः सहसोत्पत्रो दिव्यमानुषविप्लवात्।'** सम्भ्रम से उत्पन्न होने वाला द्वितीय प्रकार का प्रवास वह है, जो दैवीय अथवा मनुष्यकृत उपद्रवों से सहसा होता है। जैसे-'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी और पुरूरवा का दैवकृत् उपद्रव से सम्भ्रम प्रवास था। **'स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापज्ञः सन्निधावपि।'**नायक तथा नायिका के समीप रहने पर भी जो स्वरूप बदल जाने के कारण देशान्तर-गमन होता है, वह शाप-प्रवास होता है। जैसे-'कादम्बरी' में वर्णित वैशम्पयान का प्रवास है।

सम्भोग श्रृंगार:

"अनुकूलौ निषेवते यत्रान्योन्यं विलासिनौ"
दर्शनस्पर्शानादीनि स सम्भोगो मुदान्वितः।।

जहाँ नायक-नायिका परस्पर अनुकूल होकर, विलासितापूर्वक दर्शन, स्पर्शादि का उपभोग करके प्रसन्न तथा उल्लसित होते हैं, वहाँ पर सम्भोग श्रृंगार होता है, जिस प्रकार 'उत्तर-रामचरित' में देखने को मिलता है-

"किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगा
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
सपुलकपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।"

अर्थात् "हे सीते! तुम्हें स्मरण है, यह वही स्थल है जहाँ पर एक-दूसरे के गाल से गालं को सटाकर तथा न जाने क्या-क्या (इधर-उधर की) बातें करते हुए अपने एक हाथ को आलिंगन में बाँधे

हुए हम दोनों की वह रात्रि व्यतीत हो गयी थी। अतः बीते हुए प्रहरों का पता नहीं लगा था।" अर्थात् बातों-बातों में हमें रात बिताने का पता भी नहीं चला था।

सम्भोग श्रृंगार में नायिकाओं की प्रिय के प्रति लीला आदि दस चेष्टाएँ पाई जाती हैं। ये चेष्टाएँ दाक्षण्य मृदुता तथा प्रेम से युक्त होती हैं। नायक में भी शोभा विलास माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित तथा औदार्य गुणों का होना आवश्यक है।

4.3.7 वीर रस:

प्रताप, विनय, सत्त्व, बल, नीति, विस्मय और पराक्रम आदि विभावों द्वारा विभावित, दया, युद्ध एवं दान आदि अनुभावों के अनुभावित तथा गर्व, धृति, हर्ष, अमर्ष, स्मृति, मति, तर्क इत्यादि व्यभिचारी भावों से भावित होकर उत्साह नामक स्थायी भाव वीर रस के रूप में आस्वादित होता है। यह वीर रस तीन प्रकार का होता है- 1. दयावीर, 2. युद्धवीर और 3. दानवीर।

4.3.18 वीभत्स रस:

जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाला रस वीभत्स रस कहलाता है। दुर्गन्धमय मांस रक्त आदि इसके आलंबन, मांसादि में कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन, थूकना, मुँह फेरना आदि अनुभाव तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि आदि इसके व्याभिचारी भाव कहे गए हैं।

4.3.19 रौद्र रस:

क्रोध स्थायी भाव का अभिव्यंजक रस रौद्र रस कहलाता है। शत्रु आदि इसके आलंबन विभाव, शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव, भूरभंग, भुजाओं को फटकारना, शत्रु का तर्जन आदि अनुभाव तथा मोह, अमर्ष आदि इसके व्याभिचारी भाव होते हैं।

4.3.20 हास्य रस:

अपने या दूसरे की विकृत वाणी, वेष एवं चेष्टा आदि विभावों से जो हास (स्थायी भाव) होता है उसका परिपाक ही हास्य रस कहलाता है। इसका आलंबन हास्यास्पद व्यक्ति, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, नेत्र, संकोच, मुख विकार आदि अनुभव तथा निद्रा, आलस्य आदि इसमें व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.3.21 भयानक रस:

भय स्थायी भाव का अभिव्यंजक भयानक रस कहलाता है। निम्न प्रकृति के लोग इसका आश्रय, भयोत्पादक वस्तु आलंबन, उसकी चेष्टाएँ, उद्दीपन, प्रलय, स्वेद, कम्पन आदि अनुभाव तथा जुगुप्सा, आवेग मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका आदि व्यभिचारी भाव हैं।

4.3.22 करूण रस:

शोक स्थायी भाव का अभिव्यंजक रस करूण रस है। इसका आर्विभाव ईष्ट नाश अथवा अनिष्ट प्राप्ति से सम्भव है। निःश्वास, उच्छवास, रूदन, स्तम्भ आदि इसके अनुभाव तथा विषाद, उन्माद, चिन्ता, दैन्य, व्याधि और मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.3.23 अद्भुत रस:

विस्मय स्थायी भाव वाला रस ही अद्भुत रस कहलाता है। अलौकिक वस्तु (दिव्य दर्शन, इच्छित मनोरथ पूर्ति, अपूर्व शिल्प) आदि इसके आलंबन, अलौकिक वस्तु का गुणकीर्तन उद्दीपन, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, संभ्रम आदि इसके अनुभाव तथा वितर्क, आवेग, हर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप दशरूपककार धनंजय के रस मीमांसा विषयक विचारों से अवगत हो चुके हैं। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा रति आदि स्थायी भाव ही श्रृंगार आदि रस के रूप में आस्वादित होते हैं। कतिपय आचार्य मानते हैं कि यह रसास्वादन काव्यगत अनुकार्य राम आदि को ही होता है। कुछ दूसरे आचार्य अनुकर्त्ता (नट आदि) में रस की स्थिति मानते हैं जबकि दशरूपककार के अनुसार रस का स्थान सहृदयजन का चित्त है अर्थात् रस का आस्वादन सहृदय व्यक्ति के चित्त को ही होता है प्राकारान्तर से यदि नट भी सहृदय है तो उसे भी रस का आस्वादन हो सकता है।

इस इकाई का अध्ययन करने से बाद आप भरतमुनि के रस सिद्धान्त की विवेचना करने वाले भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद, शंकुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद तथा अभिनव गुप्त के रस सिद्धान्त के साथ-साथ धनंजय के रस संबन्धी विचारों को अभिव्यक्त कर सकेंगे साथ ही

नाट्यगत श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत इन आठों रसों के लक्षणों को भी भलीभांति समझा पाएंगे।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. सात्त्विक भाव
2. स्थायी भाव
3. करूण रस

बहुविकल्पीय:

1. स्थायी भाव किसके द्वारा आस्वादन होने पर रस कहा जाता है?

(क) विभाव (ख) अनुभाव

(ग) व्यभिचारी भाव (घ) इन सभी के

2. दशरूपककार ने नाट्य में कितने रस स्वीकार किए हैं?

(क) छः (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौं

3. विभाव के कितने भेद हैं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. दशरूपकार के अनुसार वीररस युद्धवीर, दानवीर तथ.....के भेद से तीन तरह का होता है।

2.करूण रस का स्थायी भाव.....है।

3.दशरूपककार धनंजय ने रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, भय एवं .....ये आठ स्थायी भाव माने हैं।

अति लघु उत्तरीय:

1. श्रृंगार रस के कितने भेद होते हैं?
2. उद्दीपन विभाव किसे कहते हैं?
3. अनुभाव क्या है।

सत्य/असत्य बताइए:

1. व्यभिचारी भावों की संख्या चालिस होती है
2. नाट्य में शान्त रस की स्थिति होती है।
3. सात्त्विक भाव आठ होते हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री को अच्छी तरह पढ़कर स्वयं लिखें। इससे आपका अभ्यास होगा तथा स्वयं अपना मूल्यांकन कर पाएंगे।

यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर/संकेत इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि आप पहले स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें फिर पीछे दिए गए उत्तरों से मिलान कर स्वमूल्यांकन करें।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली:

रस:- विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य बनाया गया स्थायी भाव ही 'रस' कहलाता है।

स्थायी भाव: जो रति आदि भाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी प्रकार के भावों के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और लवणाकर (नमक की खान या समुद्र) की तरह सभी भावों को आत्मसात कर लेता है, वह स्थायी भाव कहलाता है।

संचारी या व्यभिचारी भाव: विविध प्रकार से स्थायी भाव के अनुकूल चलने वाले वे भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं, जो स्थायी भाव में उसी तरह प्रकट और विलीन होते रहते हैं जिस तरह सागर में तरेंगें।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. अभिनवगुप्त, अभिनव भारती, सम्पादक रामस्वामी,गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज, बड़ौदा

2. मम्मट, काव्यशास्त्र, साहित्य भण्डार मेरठ

3. भरत, नाट्यशास्त्र, अनु. डॉ. रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

4. धनंजय, दशरूपक, साहित्य भंडार मेरठ

5. धनंजय, दशरूपक, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस

6. भरत, नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस

7. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा विद्याभवन बनारस

8. ऋषि कुमार चतुर्वेदी, रस सिद्धान्त, ग्रन्थापन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.5 को देखें।
2. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.7 को देखें।
3. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.22 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. घ
2. ग
3. क

रिक्त स्थानों की पूर्ति:

1. दयावीर
2. शोक

3. विस्मय

अति लघु उत्तरीय:

1. तीन-अयोग, विप्रयोग एवं संभोग
2. वे निमित्त या हेतु जो हृदय में उद्बुद्ध रति आदि को उत्तेजित करते हैं, उद्दीपन विभाव है।
3. सहृदय जनों को रति आदि का अनुभव कराने वाले आश्रय के भूविक्षेप, कटाक्षपात् आदि शरीर विकार अनुभव होते हैं।

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य

4.9 निबन्धत्मक प्रश्न

1. दशरूपकाकर धनंजय के अनुसार श्रृंगार रस का लक्षण देते हुए उसके भेद प्रभेदों को उल्लेख कीजिए
2. दशरूपककार के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का परिचय प्रस्तुत कीजिए

इकाई 5 . दशरूपक प्रथम प्रकाश-मूल पाठ, अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 इकाई की पाठ्य सामग्री- कारिका/कारिकांश व्याख्या
5.3.1 दशरूपानुकारेण.....से वस्तु नेतारस्तेषां भेदकः तक
5.3.2 वस्तु च.....से अवस्थाः पंच.....तक
5.3.3 अर्थप्रकृतयः पंच.....से सिद्धामन्त्रणतो.....तक
5.3.4 बीजवन्तो.....से रहस्य कथ्यते.....तक
5.3.5 किं ब्रवीष्य.....
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है। यह प्रश्न पत्र विशेषतः धनंजय कृत 'दशरूपकम्' पर आधारित है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक भेद तथा उनकी विशेषताएँ क्या हैं? नृत्य तथा पंचसन्ध्यंग क्या होते हैं? अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं? तथा नायक-नायिका की विशेषताएँ एवं भेद प्रभेद क्या है? साथ ही दशरूपककार की रस मीमांसा के विषय में भी आप भलीभांति बता सकते हैं। दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश में दशरूपकम् के मूल स्रोत, नाट्य के प्रयोजन, रूपकों के दस भेद, रूपकों के भेदक तत्त्वों के साथ-साथ रूपक के वस्तु नामक तत्व का सविस्तार विवेचन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में कथावस्तु के भेदों को बताते हुए अर्थप्रकृति, कार्यावस्था एवं सन्धियों के अन्तर्गत किस प्रकार रूपक की कथावस्तु का आयोजन किया जाना चाहिए, इस पर धनंजय के द्वारा मान्य सिद्धान्तों का विश्लेषण किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रूपक में कथावस्तु के सांगोपांग समायोजन के महत्व को समझा सकेंगे तथा धनंजय के कथावस्तु विषयक विचारों का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य:

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- बता सकेंगे कि 'दशरूपकम्' का आधार क्या है?
- बता पाऐंगे कि नाट्य, रूप एवं रूपक का लक्षण क्या है?
- नृत्य एवं नृत्त का लक्षण, नाट्य से उसकी भिन्नता तथा उसके भेदों को समझा सकेंगे
- बता सकेंगे कि रूपक के दस भेद तथा उनके भेदक तत्त्व क्या है?
- समझा पाऐंगे कि कथावस्तु के भेद किस प्रकार होते है?
- बता सकेंगे कि अर्थप्रकृति क्या है? तथा उसके कितने भेद होते हैं?
- समझा कि कार्यावस्था क्या होती है तथा ये कितनी हैं?
- बता सकेंगे कि कि पंच सन्धियाँ तथा उनके अंग कितने और कौन-कौन से होते हैं?
- बता पाऐंगे कि अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते हैं?
- नाट्योक्ति के आधार पर कथावस्तु के भेद जान पाऐंगे
- बता सकेंगे कि कि जनान्तिक और अपवारित क्या है?

- बता पाएगे कि आकाशभषित क्या होता है?

5.3: कारिका/कारिकांश व्याख्या भाग

5.3.1 "दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः से वस्तु नेतारस्तेषां भेदकः तक

"दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः ।
नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च।।"

सन्दर्भः- यह कारिका धनंजय द्वारा रचित दशरूपकम् के मंगलाचरण से ली गई है।

प्रसंगः- धनंजय विष्णु एवं भरतमुनि के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि।

अर्थः- उन सर्वज्ञ विष्णु भगवान को नमस्कार है जिनके दस रूपों (दशावतार) के द्वारा भक्त जन प्रसन्न हो जाते हैं। भरतमुनि के सन्दर्भ में इस कारिका का अर्थ है-नाट्य विद्या के पूर्ण ज्ञाता उन भरतमुनि को नमस्कार है जिनके दस रूपों (नाटकादि दस रूपकों) के अभिनय से रसिक जन प्रसन्न हो जाते हैं।

व्याख्या: दशावतार धारण करने वाले विष्णु केा नमन करके जहाँ धनंजय ने ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह किया है वहीं दूसरी ओर दस रूपकों के लक्षणों आदि का अपने 'नाटयशास्त्र' में निर्देश करने वाले भरतमुनि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है क्योंकि नाट्यशास्त्र ही दशरूपकम् का आधार है। आगे की कारिकाओं/कारिकांशों में संदर्भ सभी में पहली कारिका के समान ही होगा।

"व्याकीर्णे मन्दबुद्धीनां जायते मतिविभ्रमः।
तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽ जसा।।"

सन्दर्भः- यह कारिका दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंगः- यहाँ दसरूपकम् के स्रोत की ओर संकेत करते हुए धनंजय कहते हैं कि-

अर्थः- भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में नाट्य सम्बन्धी लक्षण यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं इसलिए मन्द बुद्धि वाले लोगों को नाट्य के लक्षणों को समझने में बुद्धि भ्रम हो जाता है। अतः उस नाट्यशास्त्र के विषय को यहाँ संक्षेप में उसी के शब्दों के द्वारा सरल रीति से निरूपित किया जा रहा है।

व्याख्या:- भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य के लक्षण अलग-अलग अध्यायों में बताएँ है जिससे मन्द बुद्धि के लोगों को नाट्य के लक्षणों को समझने में कठिनाई होती है। अतः धनंजय ने भरतमुनि के नाट्य सिद्धान्तों को उन्हीं के शब्दों में संक्षेप में एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया है। यहाँ स्पष्ट है कि दशरूपकम् का आधार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। दशरूपकम में नाट्यशास्त्र में कहे गये सिद्धान्तों को प्रायः उन्हीं के शब्दों में एक साथ ग्रहीत किया गया है। धनंजय ने 'नाट्य' के विषय में कोई नई बात नहीं कही है। उन्होंने तो केवल नाट्यशास्त्र के विभिन्न अध्यायों में फैले हुए नाट्य सिद्धान्तों को अपने दशरूपकम् में संग्रहीत मात्र किया है।

"अवस्थानुकृतिर्नाट्य"

प्रसंग:- दशरूपकम के रचयिता नाट्य के स्वरूप का चित्रण करते हुए उसका लक्षण देते हैं कि-

अर्थ:- अवस्था का अनुकरण करना ही नाट्य कहलाता है।

व्याख्या:- जहाँ रूपक में वर्णित नायकों की सुख दुःख आदि अवस्थाओं का आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य-इन चार प्रकार के अभिनयों से नट के द्वारा अनुकरण किया जाता है, वह नाट्य कहलाता है। आंगिक अनुकरण का तात्पर्य पात्रों की शारीरिक चेष्टाएँ और हाव-भाव आदि है। वाचिक से तात्पर्य उन पात्रों का परस्पर वार्तालाप है। आहार्य का अर्थ है नायक आदि की वेशभूषा को अपनाना तथा सात्विक अभिनय नायकादि के मनोविकार एवं प्रवृत्ति आदि का अनुकरण करना है। नट अपने अभिनय कौशल के द्वारा नायकादि की सुख-दुख आदि अवस्थाओं का ऐसा अनुकरण करता है कि सामाजिकों को नायक और नट में एकरूपता प्रतीत होने लगती है। वास्तव में नट का कार्य (अभिनय) ही नाट्य है। यह कार्य नायकादि पात्रों की अवस्थाओं के कुशलतापूर्वक अनुकरण द्वारा किया जाता है। नटों के द्वारा अभिनेय होने के कारण ही यह नाट्य कहलाता है।

"रूपं दृश्यतयोच्यते"

प्रसंग:- ग्रन्थकार नाटक और रूप की एकता स्थापित करते हुए विवेचन करते हैं।

अर्थ:- देखने योग्य होने के कारण यह नाट्य 'रूप' भी कहलाता है।

व्याख्या:- नाटक दृश्य काव्य होने के कारण रंगमंच पर अभिनय द्वारा दिखाया जाता है। जिस प्रकार हम हरे, नीले, काले, पीले आदि रंगों को देखते हैं, वह हमारे नेत्रों के विषय होते हैं और नेत्रों का ही विषय रूप कहलाता है। अतः नाटक रूप भी कहा जाता है। धनंजय के अनुसार रूप की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- रूप्येत दृश्यते इति रूपः।"

"रूपकं तत्समारोपात्"

प्रसंग:- दशरूपकार धनंजय 'रूपक' शब्द का विवेचन करते हुए अपने विचार प्रकट करते हैं।

अनुवाद:- नट पर राम आदि का आरोप किये जाने के कारण नाट्य रूपक कहलाता है।

व्याख्या:- इसका तात्पर्य यह है कि मुख में चन्द्रमा का आरोप किये जाने से 'मुखचन्द्र' में रूपक होता है। उसी प्रकार नट में दुष्यन्त आदि के रूप का आरोप होने के कारण नाट्य को भी रूपक कहते हैं। इस प्रकार एक ही (दृश्य-काव्य) के लिए प्रयुक्त होने वाले नाट्य रूप और रूपक इन तीनों शब्दों का 'इन्द्र, पुरन्दर तथा शक्र अदि के समान प्रवृत्ति-निमित्ति का भेद' स्पष्ट किया गया है। रूपक, रूपम् एवं रूपकम् (रूप$कम) या रूपयति इति अथवा आरोपयति इति। नट में दुष्यन्त आदि (अनुकार्य) के रूप का आरोप करना ही रूपक शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है।

(प्रवृत्ति-निमित्तः- जिस निमित्त से किसी अर्थ में शब्द का प्रयोग किया जाता है वह शब्द प्रवृत्ति कहलाता है, जैसे-गोत्व के कारण गाय के लिए 'गो' शब्द का प्रयोग होता है। अतः 'गोत्व' गो शब्द का प्रवृत्ति- निमित्त है।)

"दशधैव रसाश्रयम्"

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्कहामृगा इति।।

प्रसंग:- धनंजय ने रस का परिपाक करने वाले रूपक भेदों का यहाँ पर उल्लेख किया है।

अर्थ:- रस पर आश्रित यह रूपक दस ही प्रकार का होता है (1) नाटक (2) प्रकरण (3) भाण (4) प्रहसन (6) डिम (6) व्यायोग (7) समवकार (8) वीथि (9) अंक (10) ईहामृग।

व्याख्या:- शुद्ध नाट्य केवल दस ही होते हैं इससे अधिक नहीं। इस अवधारणा के लिए यहाँ एव (ही) शब्द का प्रयोग किया गया है। कुछ आचार्या का मानना है कि नृत्य के सात भेद-डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक और काव्य ये नाट्य के एक भेद भाण की तरह होते हैं। अतः इन्हें भी रूपकों के अर्न्तगत गिनना चाहिए। इस मत का निराकरण करने के लिए ही यहाँ 'दशधैव' कहा गया है। दूसरी बात यह है कि नृत्य और नाट्य बिल्कुल अलग-अलग है। अतः नृत्य भेदों को नाट्य में नहीं गिना जा सकता। नाट्य में पात्रों का सर्वांगीण चित्रण करते हुए रस का परिपाक किया जाता है। नृत्य में भावों की ही अभिव्यंजना रहती है। नाट्य रसाश्रित होते हैं।

"अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्"

प्रसंग:- नृत्य के विषय में अपने विचारों को ग्रन्थाकार ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

अर्थ:- भाव पर अश्रित होने वाला नृत्य नाटक या रूपक से भिन्न होता है।

व्याख्या:- यहाँ 'भावाश्रय' शब्द से विषय का भेद और नृत्य शब्द से आङ्गिक अभिनय की प्रचुरता दिखाई गई है। नृत्य शब्द नृत् धातु से बना है। नृत् धातु का अर्थ है 'गात्र विक्षेप' अर्थात् अङ्गों का चलाना। नृत्य करने वाले के लिए लोक में नर्तक शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः नृत्य नाटक आदि रूपकों से भिन्न होता है।

स्पष्टतः रूपक या नाटक आदि में वाक्यार्थ रूप अभिनय द्वारा रस की निष्पत्ति होती है। नाट्य में सात्विक अभिनय की बहुलता होती है। आंगिक अभिनय कम होता है। नृत्य में केवल आंगिक अभिनय होता है। नाट्य रसाश्रित होता है, नृत्य भावाश्रित। अतः दोनों में विषयगत भिन्नता है।

"नृत्तं तालल्याश्रम्"

प्रसंग:- नृत्त का विश्लेषण करते हुये धनंजय कहते हैं कि-

अर्थ:-नृत्त ताल और लय पर आश्रित होता है।

व्याख्या:- हाथ से ताली बजाना इत्यादि ताल है और इसी ताल को द्रुत, मध्यम और विलम्बित रूप में बजाया जाना ही लय है। केवल इन्हीं ताल एवं लय पर आश्रित होने वाला गात्र विक्षेप (अंगों का संचालन) नृत्त कहलाता है। इसमें किसी प्रकार का अभिनय नहीं होता। भावों की अभिव्यक्ति भी इसमें नहीं होती। केवल गात्र विक्षेप इसमें होता है।

"आद्यं पदार्थभिनयो मार्गो देशी तथा परम्।"

प्रसंग:- नृत्य तथा नृत्त के भेदों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं कि-

अर्थ:-इनमें से पहला 'नृत्य' पदार्थाभिनय रूप है जो मार्ग कहलाता है और दूसरा 'नृत्त' देशी कहलाता है।

व्याख्या:-नृत्य और नृत्त दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति नृत् धातु से हुयी है जिसका अर्थ है, गात्र विक्षेप अर्थात अंग संचालन। नृत्य में शास्त्रीय परम्परा के अनुसार पद के अर्थ का अभिनय किया जाता है। पूर्व निर्धारित परम्परानुसार होने के कारण नृत्य को मार्ग भी कहा जाता है। नृत्त में किसी प्रकार का

अभिनय नहीं होता। इसमें होने वाला अंगविक्षेप शास्त्रीय पद्धति के अनुसार न हो कर केवल लोक परम्परा के अनुसार होता है। इसीलिए नृत्त को देशी भी कहा जाता है।

"मधुरोद्धतभेदेन तद् द्वयं द्विविधं पुनः।
लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्"।।

प्रसंग:-इस कारिका से नृत्य तथा नृत्त के भेदों का निरूपण किया गया है।

अर्थ:-वे दोनों नृत्य (मार्ग) और नृत्त (देशी) मधुर तथा उद्धत के भेद से पुनः दो-दो प्रकार के होते हैं - 1. मधुर नृत्य, 2. उद्धत नृत्य तथा 1. मधुर नृत्त 2. उद्धत नृत्त इन दोनों भेदो का लास्य एवं ताण्डव रूप से नाटकादि में प्रयोग होता है।

व्याख्या:- सुकुमार नृत्य और नृत्त को लास्य के नाम से जाना जाता है तथा उद्धत नृत्य एवं उद्धत नृत्त को ताण्डव के नाम से जाना जाता है। लास्य का प्रयोग स्त्री के द्वारा किया जाता है और ताण्डव का प्रयोग पुरूष द्वारा। रूपक में इनका आवश्यकता के अनुसार प्रयोग होता है जैसे-मधुर भावों के अभिनय हेतु लास्य नृत्य का और मधुर रस के उद्बोधन के लिए लास्य नृत्त का उपयोग होता है। इसी तरह उद्धत भावों के अभिनय हेतु ताण्डव नृत्य का और उद्धत रस के उद्बोधन के लिए ताण्डव नृत्त का उपयोग नाटककार करते हैं। ये दोनों ही नाटक की शोभा बढ़ाते हैं किन्तु नृत्य भावों के अभिनय द्वारा और नृत्त शोभा से।

"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः"

प्रसंग:- रूपक के प्रमुख भेदक तत्वों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थः- तेषां अर्थात् नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि, अंक और ईहामृग इन दस रूपकों के भेदक तत्व तीन हैं वस्तु, नेता, और रस।

व्याख्या:- रूपक के सभी भेदों में अभिनय होता है। रसानुभूति होती है और ये सभी दृश्य होते हैं। अतः इन रूपकों की एक दूसरे से भिन्नता किस आधार पर प्रतिपादित की जाय? इस प्रश्न के समाधान स्वरूप ही धनंजय ने 'वस्तु' अर्थात कथानक, 'नेता' अर्थात नायक और आस्वाद्य 'रस' के आधार पर रूपकों की एक दूसरे से भिन्नता प्रतिपादित की है।

5.3.2 "वस्तु च द्विधा" से अवस्थाः पंच....तक

"तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासंगिकं विदुः।"

प्रसंग:- ग्रंथकार धनंजय कथावस्तु भेदों का वर्णन करते हैं।

अर्थ:- वस्तु दो प्रकार की होती है, उनमें मुख्य कथावस्तु को अधिकारिक और अंगरूप वस्तु को प्रासङ्गिक कहते हैं।

व्याख्या:- वस्तु के भेद स्पष्ट करते हुए नाट्य की वस्तु दो प्रकार की कही गई है। प्रधान कथावस्तु आधिकारिक कहलाती है, जैसे-रामायण में राम और सीता का वृत्तान्त है। उस प्रधान कथावस्तु की अंगरूप वस्तु प्रासङ्गिक है-जैसे -रामायण में ही विभीषण तथा सुग्रीव आदि का वृतान्त।

"अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिम्।।"

प्रसंग:- आधिकारिक कथावस्तु का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं।

अर्थ:- अधिकार का अर्थ है फल पर स्वामित्व। उस फल को जो स्वामी होता है वह अधिकारी कहलाता है। उस अधिकारी के द्वारा फलप्राप्ति पर्यन्त किया हुआ या उससे सम्बद्ध इतिवृत्त आधिकारिक इतिवृत्त कहलाता है।

व्याख्या:-फल के प्रति स्वस्वामी भाव सम्बन्ध (फल का स्वामी) होना अधिकार कहलाता है और फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है। अर्थात् नाटक का फल ही अधिकार है और उस फल का भोक्ता अर्थात नायक अधिकारी है। नाटक के नायक के द्वारा फल की प्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त या कथा ही आधिकारिक वस्तु कही जाती है।

"प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।"

प्रसंग:-नाट्य की प्रासंङ्गिक कथावस्तु के विषय में धनंजय वर्णन करते हैं-

अर्थ:- दूसरे (प्रधान प्रयोजन) की सिद्धि के लिए होने वाली जिस कथा का प्रसंग से अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है, वह प्रासंगिक कथा है।

व्याख्या:-"प्ररसङ्गतः निर्वृत्तम् प्रासङ्गिकम" अर्थात् प्रसङ्ग से होने वाला। यह कथावस्तु अधिकारिक कथा की फलसिद्धि में सहायक होती है, किन्तु प्रसंग से इसका अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाया करता है। उदाहणार्थ रामकथा में राम की कथा मुख्य है, उसका फल रावण वध तथा सीता की प्राप्ति है। सुग्रीव की कथा इस प्रधान फल की प्राप्ति में उपकरण है, किन्तु उस कथा का अपना फल बालि-वध और राज्य-लाभ के रूप में प्रसंग से सिद्ध हो जाता है।

"सानुबन्ध पताकाख्यं प्रकरीच प्रदेशभाक्।"

प्रसंग:-प्रासङ्गिक कथावस्तु के भेदों का विश्लेषण करते हुए धनंजय स्पष्ट करते हैं।

अर्थ:-इसमें दूर तक चलने वाला प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाता है और एक प्रदेश में रहने वाला प्रकरी।

व्याख्या:-जो वृत्त (प्रधान इतिवृत्त के साथ) दूर तक चलता है वह पताका कहलाता है जैसे सुग्रीव आदि का वृतान्त (जो रामकथा के साथ दूर तक चलता है), इसलिए इसे पताका कहते हैं। जो प्रासंगिक वृत्त थोड़ी दूर तक चलता है, वह प्रकरी कहलाता है जैसे रामायण में श्रवण, शबरी आदि का वृत्तान्त है।

"प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम।
पताकास्थानकं तुल्यसंविधनविशेषणम्।।"

प्रसंग:-दशरूपककार पताकास्थानक का विवेचन करते हैं।

अर्थ:- जो किसी अन्य वस्तु के कथन द्वारा आगन्तुक प्रस्तुत वस्तु का सूचक होता है, वह पताकास्थानक कहलाता है। वह समान इतिवृत्त (संविधान) तथा समान विशेषण के भेद से दो प्रकार का होता है।

व्याख्या:-प्राकरणिक, किन्तु आगे आने वाले अर्थ का सूचक इतिवृत्त, जो पताका के समान होता है पताका स्थानक कहलाता है। वह अन्योक्ति तथा समासोक्ति के भेद से दो प्रकार का है-(1) समान इतिवृत्त के द्वारा प्रस्तुत आगे आने वाले अर्थ का सूचक (2) सम-विशेषणों के द्वारा। कवि अपने रूपक में कथा प्रसंग में अवसर प्राप्त होने पर भावी (भविष्य में होने वाली) घटना का संकेत कर देता है। यह संकेत समान घटनाओं के आधार पर या समान विशेषणों के आधार पर होता है। प्रथम में अन्योक्ति या अप्रस्तुत प्रशंसा का आधार लिया जाता है और द्वितीय में समासेक्ति का (अर्थात् तुल्य विशेषणों के आधार पर)। यहाँ 'आगन्तुक अर्थ' का तात्पर्य आगे आने वाले इतिवृत्त से है।

"प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरूत्पाद्यं कविकल्पितम्।।
मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः।"

प्रसंग:-इस कारिका में स्रोत के आधार पर इतिवृत्त के भेद-प्रभेदों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:-वह तीन प्रकार (आधिकारिक एवं पताका-प्रकरी) का इतिवृत्त भी फिर (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य (3) मिश्र भेद से तीन-तीन प्रकार का होता हे। इतिहास आदि से लिया गया इतिवृत्त प्रख्यात,

कवि द्वारा (स्वयं) कल्पित उत्पाद्य तथा इन दोनों के मिश्रण से युक्त इतिवृत्त मिश्र कहलाता है। ये सभी इतिवृत्त दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य भेद से भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

व्याख्या:- इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-इतिहास-पुराण आदि में प्रसिद्ध कथानक प्रख्यात कथा है यथा-राम कथा कृष्ण कथा। कवि द्वारा कल्पित कथानक उत्पाद्य कथा है यथा मालतीमाधव की कथा। प्रख्यात एवं उत्पाद्य का मिश्रण जिस कथानक में हो वह मिश्र कथा है यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथा। इस प्रकार नौ प्रकार की कथा-वस्तु पुनः दिव्य दिव्यादिव्य एवं मर्त्य भेद से भिन्न-भिन्न होती है। जिसमें दैवी पात्र तथा दैवी कथा हो वह दिव्य, जिसमें दैवी तथा मानवी दोनों प्रकार की मिश्रित कथा तथा पात्र हो वह दिव्यादिव्य तथा जिसमें केवल मानवी पात्र तथा कथा

हो वह मर्त्य इतिवृत्त होता है।

"स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजं विस्तार्यनेकधा।"

प्रसंग:- ग्रन्थकार इतिवृत्त में धर्मार्थकामरूप फल की प्राप्ति के उपायों का विश्लेषण करते हुए सर्वप्रथम बीज के विषय में कहते हैं।

अर्थ:-उस फल का निमित्त बीज कहलाता है जिसका नाट्यारम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत किया जाता है और जो आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार को प्राप्त होता है।

व्याख्या:-नाट्य के धर्मार्थकामरूप फल की प्राप्ति के लिए नाट्यारम्भ में फल का 'किसी बीज के समान' सूक्ष्म संकेत किया जाता है वही बीज है। जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन को रत्नावली की प्राप्ति फल है। उसका हेतु है दैव की अनुकूलता से युक्त यौगन्धरापण का व्यापार। इसे नाट्यारम्भ में विष्कम्भक में बीज (सूक्ष्म) रूप से रखा गया है।

"बीजबिन्दुपताकारव्यप्रकरीकार्यलक्षणः।"
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः।।

प्रसंग:-दशरूपककार प्रस्तुत नाटिका में पाँच अर्थप्रकृतियों का विवेचन करते हैं।

अर्थ:-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ कही गई है।

व्याख्या:- अर्थप्रकृति-यहाँ अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है। प्रकृति शब्द का अर्थ है हेतु या कारण, इस प्रकार रूपकों में फल की सिद्धि के उपाय 'अर्थप्रकृतियाँ' कहलाती हैं। अभिनव भारती और नाट्य-दर्पण में भी अर्थप्रकृतियों को 'उपाय' कहा गया है। अभिनव-भारती और नाट्य-

दर्पण के अनुसार इन पाँच उपायों में से बीज और कार्य दोनों जड़ (अचेतन) है तथा बिन्दु, पताका और प्रकरी तीनों चेतन हैं किन्तु यह चेतन-अचेतन का विभाग उचित नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः बीज, बिन्दु और कार्य ये तीन आवश्यक अर्थप्रकृतियाँ मानी गई हैं पताका और प्रकरी का सभी रूपकों में होना अनिवार्य नहीं है। स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि ये, बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य, फल प्राप्ति के उपाय या हेतु है।

"अवस्थाःपंच कार्यस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्ति फलागमः।।"

प्रसंग:-ग्रन्थकार ने रूपक में फल प्राप्ति पर्यन्त किये जाने वाले नायक के कार्य की अवस्थाओं का उल्लेख इस कारिका में किया है।

अर्थ:- नाट्य के प्रचुर फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं-(1) आरम्भ (2) यत्न (3) प्राप्त्याशा (4) नियताप्ति (5) फलागम।

व्याख्या: (1) आरम्भ-प्रचुर फल की प्राप्त के लिए उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ कहलाता है।

(2) प्रयत्न: फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है।

(3) प्राप्त्याशा: उपाय के होने तथा विघ्न की शंका होने से जो फलप्राप्ति की सम्भावना मात्र होती है, वह प्राप्त्याशा कही जाती है।

(4) नियताप्ति:विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति कहलाती है।

(5) फलागम: पूर्णरूप से फल की प्राप्ति होना ही फलागम कहलाती है। कार्यावस्थाओं के स्वरूप के विवेचन से यह स्पष्ट है कि आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम, फल को लक्ष्य करके किए गए कार्य अर्थात् नायक के व्यापार की पाँच अवस्थाएँ हैं।

5.3.3 अर्थप्रकृतयः पंच से सिद्धामन्त्रणतो....तक

"अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंचन्धयः।।"

प्रसंग:-इस कारिका के द्वारा धनंजय अर्थप्रकृतियों एवं कार्यावस्थाओं के संयोग से बनने वाली रूपक की पांच सन्धियों के विषय में कहते हैं-

अर्थ:-पाँच अर्थप्रकृतियाँ क्रमशः पाँच अवस्थाओं से समन्वित होकर क्रम से मुख अदि पाँच सन्धियाँ बनती हैं।

व्याख्या:-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य इन पाँच अर्थ प्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम-इन पाँच कार्यावस्थाओं के साथ योग होने पर क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ बनती हैं। इस तरह एक-एक अर्थ प्रकृति और एक-एक कार्यावस्था के मिलने से ये सन्धियाँ होती है यथाः-

1. बीज (अर्थप्रकृति)+आरम्भ (कार्यावस्था)त्र मुखसन्धि
2. बिन्दु$प्रयत्नत्र प्रतिमुख सन्धि
3. पताका$प्राप्त्याशात्र गर्भ सन्धि
4. प्रकरी नियताप्तित्र विमर्श सन्धि
5. कार्य$फलागमत्र निर्वहण सन्धि

प्रत्येक रूपक में पताका एवं प्रकरी का होना अनिवार्य नहीं। वह हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। अतः तदनुरूप गर्भ-सन्धि में पताका हो या न हो प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था का होना जरूरी है। इसी तरह विमर्श सन्धि में प्रकरी हो या न हो नियताप्ति कार्यावस्था अवश्य होनी चाहिए।

"अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति"

प्रसंग:-प्रस्तुत कारिका में मुखसन्धि का लक्षण देते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:- जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन एवं रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति हो वहीं मुखसन्धि होती है। बीज नामक अर्थप्रकृति एवं आरम्भ नामक कार्यावस्था के योग से बनने वाली मुख सन्धि के बारह अंग होते हैं।

व्याख्या:-सन्धि पंचक में जो पहली सन्धि है वह मुख सन्धि के नाम से जानी जाती है। इसमें प्रारम्भावस्था तथा बीज का समन्वय देखा जाता है। इसमें अनेकानेक प्रयोजनों एवं श्रृंगार आदि अनेक रसों की सिद्धि कराने वाली बीज की उत्पत्ति दर्शाई जाती है। इस तरह बीज, आरम्भ एवं अनेकानेक रस-प्रयोजनों से अन्वित सन्धि मुखसन्धि होती है। इस सन्धि के बारह अंग होते हैं।

"लक्ष्यालक्ष्ययोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।

बिन्दु प्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।"

प्रसंग:-इस कारिका में प्रतिमुख सन्धि के लक्षण को इंगित किया गया है।

अर्थ:-उस बीज का कुछ दृश्य एवं कुछ अदृश्य रूप में प्रकाशन प्रतिमुख सन्धि है। इसका निर्माण बिन्दु नामक अर्थप्रकृति एवं प्रयत्न नामक कार्यावस्था के योग से होता है। इसके तेरह अंग होते हैं।

व्याख्या:-मुख सन्धि में स्थापित किए गए बीज का कुछ दिखाई देना (किसी पात्र पर प्रकट हो जाना) और कुछ अलक्ष्य रहना (किसी पात्र के लिए प्रकट न होना) ही प्रतिममुख सन्धि है। पहले मुख सन्धि में बीज स्थापित किया जाता है। उसे पोषित होने के लिए उचित वातावरण मिलता है। इस पोषण द्वारा प्रतिमुख सन्धि में आकार वह बीज प्रस्फुटित होने लगता है। जिस प्रकार सर्वप्रथम प्रस्फुटित हुए बीज (अन्नादि) का अंकुर कुछ अस्पष्ट सा होता है ठीक उसी प्रकार मुख सन्धि में डाला गया नाट्यफल के बीज का अंकुर कुछ अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में उद्भासित होता है।

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशांगः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः।।"

प्रसंग:-इस कारिका में धनंजय ने गर्भ सन्धि का विवेचन किया है-

अर्थ:-पहले दिखाई दिए और बाद में नष्ट हुए बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाना ही गर्भ सन्धि है। इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति हो चाहे न हो प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था अवश्य होती है। इस सन्धि के बारह अंग होते है।

व्याख्या:-जो बीज प्रतिमुख सन्धि में लक्ष्यालक्ष्य रूप में रहता है वही बीज गर्भ सन्धि में विशेष प्रकार से उद्भिन्न (प्रकटित) होने के कारण विघ्नों से कभी नष्ट होता है, फिर उसका अन्वेषण किये जाने से उसकी प्राप्ति होती है, फिर उसका विच्छेद (वियोग) हो जाता है। फिर प्राप्त होता है, फिर नष्ट होता है, फिर से उसका अन्वेषण किया जाता है। इस प्रकार दिखाई दिए फल के लुप्त होने और प्राप्त होने की स्थिति गर्भ सन्धि में बनी रहती है। इससे फल प्राप्ति की संभावना (प्राप्त्याशा) तो बनी रहती है, किन्तु फल प्राप्ति का ऐकान्तिक (दृढ़) निश्चय नहीं हो पाता। यही इस सन्धि की विशेषता है। इसमें पताका का होना आवश्यक नहीं है। इसके बारह अंग माने गए हैं।

"अभूताहरणंमार्गो रूपोदाहरणे क्रमे।
संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा।।
उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपाः लक्षण च प्रणीयते।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार गर्भ सन्धि के अंगों का उल्लेख करते हैं-

अर्थ:-इस गर्भ सन्धि के-अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम और आक्षेप, ये बारह अंग कहे गए हैं।

व्याख्या:-इनमें कपटयुक्त वचन 'अभूताहरण' है, तत्वगर्भित कथन 'मार्ग' है, सन्देहास्पस्पद वचन 'रूप', उत्कर्ष बताने वाले वचन 'उदाहरण', अभीष्ट वस्तु लाभ का चिन्तन 'क्रम' होता है। इसी तरह जहाँ साम दान युक्त कथन हो वहाँ संग्रह, जहाँ किन्हीं हेतुओं के आधार पर नायकादि द्वारा तर्क किया जाय वहाँ 'अनुमान' होता है। प्रयत्न पूर्वक धोखा देने को 'अधिबल',क्रोधपूर्ण वचन को 'तोटक', शत्रुजन्य भय को 'उद्वेग' शंका-त्रास होने को 'सम्भ्रम' तथा गर्भ बीज की स्पष्टता को 'आक्षेप' कहा जाता है।

"संरब्धं तोटकं वचः।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय ने गर्भ सन्धि के एक अंग तोटक का लक्षण दिया है।

अनुवाद:-क्रोध युक्त वचन तोटक है।

व्याख्या:-क्रोध-हर्ष एवं अन्य कारणों से उत्पन्न आवेश (क्रोध) युक्त वचन ही तोटक है। तोटक कहीं अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति का कारण होता है और कहीं प्राप्ति का कारण भी होता है। क्योंकि यह आवेग पूर्ण वचन हृदय को तोड़ने वाला (दुःख पहुँचाने वाला) होता है इसलिए इसे तोटक कहा जाता है।

"तोटकस्यान्याथाभावं ब्रुवतेऽधिबलं बुधाः।"

प्रसंग:-यहाँ गर्भ सन्धि के अंग अधिबल का विश्लेषण किया गया है।

अर्थ:-विद्वानों ने तोटक के विपरीत भाव को 'अधिबल' कहा है।

व्याख्या:-धनंजय ने आवेश युक्त (क्रोधयुक्त) वचन को तोटक कहा अतः क्रुद्ध वचन का विपरीत (उल्टा) विनम्र एवं दीन वचन ही अधिबल है। जैसे रत्नावली नाटिका में राजा उदयन की यह उक्ति-"हे देवि! इस तरह प्रत्यक्ष देखे गए अपराध वाला मैं क्या कह सकता हूँ? हे देवि लज्जित होकर मैं अपना सिर तुम्हारे चरणों पर रखकर तुम्हारे पैरों की महावरजन्य लालिमा को तो दूर कर सकता हूँ किन्तु तुम्हारे मुख की क्रोधजन्य लालिमा तो तभी दूर हो सकती है जब तुम मुझे क्षमा कर दोगी।"

"क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भ निर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार अवमर्श या विमर्श सन्धि का लक्षण इस प्रकार देता है-

अर्थ:-जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाता है तथा गर्भ सन्धि के द्वारा उद्भिन्न (प्रकट) बीज रूपी अर्थ का सम्बन्ध दिखाया जाता है वहाँ अवमर्श सन्धि होती है।

व्याख्याः-अवमर्श का अर्थ है ऊहापोह (पर्यालोचन) करना। इस ऊहापोह का कारण क्रोध, व्यसन या लोभ आदि होता है। जहाँ "यह फल होना चाहिए" इस प्रकार अवश्यम्भावी फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है। वहाँ अवमर्श सन्धि होती है। इसमें नियताप्ति नामक कार्यावस्था अवश्य होनी चाहिए। क्रमशः प्राप्त प्रकरी नहीं भी हो सकती। साथ ही इसमें गर्भ सन्धि से प्रकाशित बीजार्थ का सम्बन्ध पाया जाता है।

"सिद्धामन्त्रणतो भविदर्शिका स्यात्प्ररोचना।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार अवमर्श सन्धि के अति महत्वपूर्ण अंग प्ररोचना के विषय में बता रहें हैं-

अर्थ:-जहाँ कोई सिद्ध पुरूष किसी भावी घटना को ऐसे सूचित करे जैसे कि वह सिद्ध ही हो गई हो। वहाँ प्ररोचना नामक अवमर्श सन्धि का अंग होता है।

व्याख्या:-नाटक आदि के अन्त में जब किसी सिद्धजन के द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटना की सूचना पहले ही दे दी जाती है वहाँ प्ररोचना होता है। जैसे कि वेणीसंहार नाटक में पांचालक (युद्ध क्षेत्र से आया हुआ दूत) युधिष्ठिर के पास आकर सिद्ध पुरूष 'श्रीकृष्ण' के वचनों से निकट भविष्य में होने वाले कौरवों के विनाश तथा इसके फलस्वरूप द्रौपदी के केशसंयमन रूप कथांश को सिद्ध कार्य के रूप में प्रस्तुत करता है।

5.3.4 बीजवन्तो.....से रहस्य कथ्यते.....तक

"बीजवन्तो मुखाद्यार्थाः विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय पंच संधियों में अंतिम कही जाने वाली निर्वहण सन्धि का लक्षण निर्देश करते हैं-

अर्थ:-रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि सन्धियों में यत्र-तत्र फैले हुए आरम्भ आदि अर्थों का एक प्रधान प्रयोजन के लिए एक साथ संग्रह करना या समेटा जाना ही निर्वहण सन्धि है।

व्याख्या:-निर्वहण सन्धि वह है जिसमें नाटकीय कार्य की प्रथम चार अवस्थाओं के प्रदर्शन में समावेशित सम्पूर्ण सामग्री को अर्थात् पूर्व अवस्थाओं एवं पूर्व प्रदर्शित सन्धियों में प्रयुक्त समस्त साधनों को उस एक प्रयोजन में सहयोगी के रूप में दर्शाया जाता है, जिसकी प्राप्ति नायक को कराना नाटककार का अभीष्ट है।

सरल शब्दों में कहे तो बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो पूर्व कथित चारों सन्धियों में यत्र-तत्र फैले हुए हैं, जब एक अर्थ (प्रयोजन) के लिए एक साथ समेटे जाते हैं तो वही निर्वहण सन्धि है। इस सन्धि में कार्य नामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नायक कार्यावस्था का योग होता है।

"द्वेधा विभागः कर्त्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।।"

प्रसंग:-प्रस्तुत कारिका में दशरूपककार धनंजय कथावस्तु की योजना की दृष्टि से इतिवृत्त का विभाजन बताते हैं-

अर्थ:-सम्पूर्ण कथावस्तु का दो प्रकार से विभाजन करना चाहिए। कथावस्तु के कुछ अंश केवल सूच्य होते हैं (उन्हें रंगमंच पर न दिखाकर उनकी केवल सूचना मात्र दे दी जाती है) दूसरे अंश दृश्य एवं श्रव्य होते हैं।

व्याख्या:-नाट्यशास्त्र के अनुसार कथावस्तु के दो खण्ड हैं। इनमें एक है कथावस्तु का सरस अंश, जिसे अंकों के अन्तर्गत रंगमंच पर दिखाया जाता है यह दृश्य एवं श्रव्य होता है है। दूसरा रंगमंच पर न दिखाया जा सकने वाला नीरस कथांश सूच्य मात्र होता है जिसकी विभिन्न अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूचना मात्र दे दी जाती है।

"अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्य अङ्कावतारप्रवेशकैः।।"

प्रसंग:-ग्रन्थकार यहाँ सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों का नाम निर्देश करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-(1) विष्काम्भक (2) प्रवेशक (3) चूलिका (4) अङ्कास्य और (5) अङ्कावतार इन पाँच अर्थोपक्षेपकों द्वारा सूच्य इतिवृत्त की सूचना देनी चाहिए।

व्याख्या:-नाटकार नाटक के सरस कथांश को तो अंकों के अर्न्तगत रंगमंच पर प्रस्तुत कर देता है किन्तु कुछ कथांश रंगमंच पर दिखाने योग्य नहीं होता पर दर्शकों (सामाजिकों) के लिए उसे जानना आवश्यक होता है अन्यथा कथा सूत्र छूट जाएगा। अतः ऐसे कथांश की सूचना नाटक में जिन उपायों द्वारा की जाती है उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं, जो विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अङ्कावतार है।

"वृत्तवर्तिष्यमाणनां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय विष्कम्भक नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण प्रस्तुत करते हैं-

अर्थ:-भूतकाल में घटित हो चुके या भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का सूचक, संक्षिप्त अर्थ

(विषय) वाला तथा मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा प्रयुक्त अर्थोपक्षेपक विष्कम्भक कहलाता है।

व्याख्या:-विष्कम्भक वह अर्थोपक्षेपक है जिसमें एक या दो मध्यम पात्र अथवा कभी-कभी मध्यम व एक अधम पात्र वार्तालाप करते हुए संक्षेप में भूत या भविष्य के कथांशों की सूचना देते हैं। पात्र एवं भाषा के आधार पर विष्कम्भक शुद्ध एवं संकीर्ण दो तरह का होता है। शुद्ध विष्कम्भक में मध्यम कोटि के पात्र होते हैं तथा वे संस्कृत में बातचीत करते हैं। संकीर्ण विष्कम्भक में मध्यम पात्रों के साथ एक अधम पात्र भी होता है। इसमें संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं का मिश्रण होता है।

"अन्तर्जवनिका संस्थैः चूलिकार्थस्य सूचनात्।"

प्रसंग:-चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं-

अर्थ:-पर्दे के पीछे से अर्थ (कथांश) की सूचना दिया जाना ही चूलिका है।

व्याख्या:-जब नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) स्थित पात्र के द्वारा किसी सूच्य कथांश की सूचना दी जाती है उसे चूलिका कहा जाता है।

"अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्य छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।"

प्रसंग:-धनंजय ने यहाँ अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण इस प्रकार दिया है-

अर्थ:-जहाँ अंक की समाप्ति पर उस अंक में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा उस अंक से बिल्कुल अलग (किसी छूटे हुए) अर्थ की सूचना दी जाती है, वहाँ अंङ्कास्य होता है।

व्याख्या:-अंक के अन्त में रंगमंच पर आने वाला पात्र ही अंकान्तपात्र है। जब ऐसे किसी पात्र के द्वारा पूर्व अंक की कथा से सर्वथा विच्छिन्न (अलग) अग्रिम अंक की कथा की सूचना दी जाय तब अंकास्य कहलाता है।

"अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-जहाँ अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित पूर्व अंक के कथाक्रम में ही दूसरे अंक की कथावस्तु का अवतरण होता है, वहाँ अङ्कावतार होता है।

व्याख्या:-अङ्कावतार में अर्थ की सूचना देने के लिए अन्य पात्र के प्रवेश के बिना ही पूर्व अंक के ही पात्रों द्वारा अविच्छिन्न रूप से (कथा का क्रम टूटे बिना) अग्रिम अंक की कथा का अवतरण कर दिया जाता है।

"नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुर्नवस्तु त्रिधेष्यते।"

प्रसंग:- यहाँ नाट्योक्ति (नाट्यधर्म) की दृष्टि से कथावस्तु के विभागों का निर्देश किया गया है।

अर्थ:-नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु पुनः तीन प्रकार की कही गई है।

व्याख्या:-नाट्य धर्म अर्थात नाट्योक्ति की दृष्टि से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है। सर्वश्राव्य कथन, अश्राव्य कथन और नियतश्राव्य कथन। यहाँ उक्ति या कथन की सर्वश्राव्यता नियतश्राव्य और अश्राव्यता रंगमंच पर उपस्थित पात्रों की दृष्टि से है। दर्शकों या सामाजिकों को तो सभी उक्तियाँ सुनानी होती है। सर्वश्राव्य का अर्थ है जो कथन सबके सुनने योग्य हो। नाटक में इसे 'प्रकाश' द्वारा व्यक्त किया जाता है। अश्राव्य कथन किसी भी पात्र के न सुनने योग्य होता है। नाटक इसे "स्वगत कथन" कहते हैं और नियतश्राव्य कुछ निश्चित लोगों को ही सुनाने योग्य होता है। यह नियतश्राव्य दो तरह का होता है-जनान्तिक और अपवारित।

"त्रिपताकरेणान्यानपवार्यन्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार जनान्तिक नामक नियतश्राव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हैं-

अर्थ:- जहाँ अनेक पात्रों के बीच कोई पात्र त्रिपताका रूप हाथ की मुद्रा बनाकर अन्य पात्रों से छिपाकर किसी दूसरे पात्र से कोई गुप्त बात कहता है वहाँ जनान्तिक होता है।

व्याख्या:-रंगमंच पर अनेक पात्रों के उपस्थित होते हुए भी जिस पात्र को बात सुनानी नहीं होती है उसकी ओर हाथ की ओट करके दर्शकों को इस बात का संकेत दिया जाय कि यह बात केवल उसी पात्र को सुनानी है अन्यों को नहीं, वहाँ जनान्तिक नाम नियतश्राव्य कहलाता है।

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।"

प्रसंग:-धनंजय द्वारा इस कारिकांश में अपवारित नामक नियत श्राव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

अर्थ:-जहाँ कोई पात्र मुख फेरकर दूसरे पात्र से कोई गुप्त बात कहता है वहाँ अपवारित होता है।

व्याख्या:-अपवारित में रंगमंच पर उपस्थित जिस पात्र से बात छिपानी हो उसकी ओर से मुख फेरकर अन्य पात्र से गोपनीय बात कही जाती है। यहाँ मुख फेरने के द्वारा दर्शकों को यह संकेत दिया जाता है कि यह बात उन पात्रों को सुनाने के लिए नहीं है।

5.3.5 किं ब्रवीष्य....

"किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्।।"

प्रसंग:-यहाँ 'आकाशभाषित' नामक नाट्योक्ति का विवेचन प्रस्तुत है-

अर्थ:-जहाँ कोई पात्र (अकेला ही) 'क्या कहते हो?' इस तरह कहकर बिना किसी दूसरे पात्र के कुछ कहे हुए भी कुछ सुनने का सा अभिनय करते हुए अकेले ही कथोपकथन करता है यही आकाशभाषित है।

व्याख्या:-जब रंगमंच पर उपस्थित एक अकेला पात्र "क्या कहते हो" इस प्रकार स्वयं कहकर, मानों उससे कोई कुछ कह रहा हो इस तरह कुछ सुनने का अभिनय करते हुए स्वयं अकेले कथोपकथन करता है उसी को आकाशभाषित कहा जाता है। आकाशभाषित अर्थात् शून्य में भाषण करना या अकेले ही कथोपकथन करना।

5.4 सारांश:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि दशरूपकम् को लिखने की प्रेरणा धनंजय को कहाँ से मिली या 'दशरूपकम' का आधार ग्रन्थ क्या है? नाट्याचार्यों द्वारा नाट्य, रूप

एवं रूपक की संज्ञा एक ही दृश्य काव्य को क्यों दी गई है? दशरूपकों के भेद तथा उनके भेदक तत्त्वों का भी दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश पर आधारित इस इकाई में विवेचन किया गया है। पुनः नाटक के वस्तु नामक तत्व का सांगोपांग सविस्तार विश्लेषण यहाँ किया गया है। पंच अर्थ प्रकृतियों एवं पंच कार्यावस्थाओं के विषय में भी यहाँ उल्लेख किया गया है। क्रमशः पंच अर्थप्रकृतियाँ क्रमशः पंच कार्यावस्थाओं से समन्वित होकर क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण रूप पंच सन्धियों के अर्न्तगत नाटक की कथावस्तु आदि से अन्त तक आकार लेते हुए धर्मार्थकाम रूप प्रयोजन सिद्धि की ओर बढ़ती है साथ ही नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु के विभाजन के विषय में धनंजय के विचारों से आप अवगत हुए।

इस इकाई के अध्ययन से आप रूपकों के तीन भेदक तत्त्वों वस्तु, नेता एवं रस में से वस्तु तत्व को सविस्तार समझा सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय

टिप्पणी:

1. आकाशभाषित
2. जनान्तिक
3. अपवारित

बहुविकल्पीय:

1. 'दशरूपकम्' का लेखक कौन है?

   (क) धनिक (ख) धनंजय

   (ग) भट्टनायक (घ) भट्टलोल्लट

2. दशरूपकम् में कितने प्रकाश है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

3. प्रासंगिक कथावस्तु कितने प्रकार की होती है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

4. अर्थप्रकृतियाँ कितने प्रकार की होती है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

5. निम्नलिखित मे से क्या नाट्य का प्रयोजन नहीं होता है?

(क) धर्म (ख) अर्थ

(ग) काम (घ) मोक्ष

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. बीज, बिन्दु,पताका.....ये में पाँच अर्थप्रकृतियॉ कही गई है।
2. ..... यत्न, प्राप्त्याशा नितयाप्ति और फलागम ये पॉच कार्यावस्थाऐ होती है।
3. रूपक में मुख, प्रतिमुख..... विमर्श एवं..... ये पॉच संधिया होती है।

अति लघुउत्तरीय:

1. नृत्य के दो भेद कौन-कौन से है?
2. पंच संधियों के कुल मिलाकर कितने भेद होते है?
3. नाट्योक्ति (नाट्य धर्म) की दृष्टि से कथावस्तु के कौन से तीन भेद होते हैं?

सत्य/असत्य बताइए:

1. 'दशरूपकम्' के अनुसार नाटक की मुख्य कथा को अधिकारिक कथावस्तु कहते हैं।
2. नृत्य और नृत्त नाटक आदि के उपराकर नहीं होते हैं।
3. प्रासंगिक कथावस्तु का प्रयोजन दूसरे का हित सिद्ध करना होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

नाट्य - नाट्य का अर्थ है नट का कार्य अर्थात् अभिनय। नट अपने अभिनय कौशल द्वारा राम आदि नायक की सुख-दुःख आदि अवस्थाओं का जो अनुकरण करता है वही नाट्य है।

नृत्य - हाथ, पैर आदि अंगों तथा नेत्र, भौंह आदि उपांगों के संचालन के द्वारा भावों को अभिव्यक्त करना ही नृत्य है। नृत्य के लिए 'भावाश्रय नृत्य' कहा गया है अर्थात् नृत्य भाव पर आश्रित होता है। नृत्य करने वाले को नर्तक/नर्तकी कहा जाता है।

संधि - सामान्यतः संधि शब्द का अर्थ है जोड़ या संयोग। नाट्य के संदर्भ में यह संयोग अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्था का होता है।

नाटक में एक मुख्य कथा होती है जिसका अपना प्रयोजन होता है। मुख्य कथा के साथ अनेक छोटे-छोटे कथांश भी नाटक में होते है जिनका अपना-अपना प्रयोजन होता है और मुख्य कथा प्रयोजन से भी ये जुड़े होते है। इस तरह अपने प्रयोजन के साथ-साथ मुख्य प्रयोजन के साथ जुड़ा होना ही सन्धि है।

5.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम्, व्याख्याकार केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा, प्रकाशन, वाराणसी।

2. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भंडार, मेरठ।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. आकाशभाषित हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.41 को देखें।
2. जनान्तिक हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.39 को देखें।
3. अपवारित हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.40 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख

2. ग
3. क
4. घ
5. घ

रिक्त सथान पूर्ति :

1. प्रकरी एवं कार्य
2. आरम्भ
3. गर्भ एवं निर्वहण

अति लघु उत्तरीय:

1. मधुर नृत्य एवं उद्धत नृत्य
2. चौसठ
3. सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित कारिकाओं का अनुवाद कीजिए:-

(क) अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निवृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।

(ख) अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या पंच सन्धयः।।

2. निम्नलिखित कारिकाओं की सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

(क) मधुरोद्धतभेदन तद् द्वयं द्विविधं पुनः।
लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्।।

(ख) वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।

3. निम्न कारिकांशों की व्याख्या कीजिए-

(क) अवस्थानुकृतिर्नाट्यं

(ख) नृत्तं तालल्याश्रयम्।

इकाई 6: दशरूपक द्वितीय प्रकाशःमूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 इकाई की पाठ्य सामग्री-कारिका/कारिकांश व्याख्या

6.3.1 नेता विनीतो.....

6.3.2 भेदैश्चतुर्धा.....

6.3.3 निश्न्तो धीरललितः .....
6.3.4 सामान्यगुणयुक्तस्तु.....
6.3.5 महासत्त्वोऽतिगम्भीर.....
6.3.6 दर्पमात्सर्य भूयिष्ठो.....
6.3.7 स दक्षिणः शठो.....
6.3.8 दक्षिणोऽस्यां.....
6.3.9 पताकानायकस्त्वन्यः.....
6.3.10 एकविद्योविटः .....
6.3.11 लुब्धो धीरोद्धत्तः .....
6.3.12 शोभा विलासो .....
6.3.13 नीचे घृणाधिके.....
6.3.14 व्यसायादचलनं.....
6.3.15 स्वान्यासाधारणस्त्री.....
6.3.16 मुग्धा मध्याः.....
6.3.17 मुग्धा नववयः.....
6.3.18 द्वेधा ज्येष्ठा.....
6.3.19 अन्यस्त्री कन्यकोढ़ा.....
6.3.20 आसामष्टावस्थाः .....
6.3.21 आसन्नायत्तरमणा.....
6.3.22 कलहान्तरिता.....
6.3.23 यौवने सत्त्वजाः .....
6.3.24 तद्व्यापारात्मिका .....
6.3.25 चतुर्थी भारती.....
6.3.26 श्रृंगारे कौशिकी.....
6.4 सारांश
6.5 पारिभाषिक शब्दावली
6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

चतुर्थ प्रश्न पत्र काव्य एंव काव्यशास्त्र की द्वितीय पुस्तिका "दशरूपक प्रथम एवं द्वितीय प्रकाश" से संबन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की ईकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक के भेद क्या हैं? नृत्य तथा पंच सन्ध्यंग क्या होते हैं? अर्थोपक्षेपक क्या हैं? नायक-नायिका के कितने भेद-प्रभेद होते हैं? दशरूपक की रस मीमांसा क्या है? दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश के मूलपाठ, अर्थ व्याख्या को पढ़कर आप 'वस्तु' तत्त्व के विषय में विस्तार से बता सकते हैं।

नाट्य के 'नेता' तत्त्व को जानने के संदर्भ में नाटक के नायक-नायिका, पीठमर्द प्रतिनायक, विट आदि तथा नाट्य की वृत्तियों के विषय में धनंजय ने दशरूपक के द्वितीय प्रकाश में विस्तार से विवेचन किया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद नाटक के 'नेता' तत्त्व के अर्न्तगत सभी प्रकार के नाटकीय पात्रों तथा नाट्य वृत्तियों के महत्व को समझा सकेंगे तथा दशरूपककार के इससे सम्बद्ध विचारों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नायक के सामान्य गुण क्या होते हैं?
- व्याख्या कर सकेंगे कि नायक के भेद-प्रभेद क्या हैं?
- बता पाऐंगे कि नायक के सहायक पात्र कौन-कौन होते हैं?
- बता सकेंगे कि नाटक का प्रतिनायक कैसा होता है?
- भलीभांति बता पाऐंगे कि नायक के पुरूषोचित सात्त्विक गुण क्या होते हैं?
- बता सकेंगे कि नायिका कितने प्रकार की होती है? तथा उनकी क्या विशेषताएँ होती हैं?
- नायिका की अवस्थाओं के विषय में सम्यक् प्रकार से बता सकेंगे।
- बता पाऐंगे कि वृत्ति किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार की होती है? तथा विभिन्न नाट्य रसों के साथ विभिन्न वृत्तियों का तारतम्य क्या है?

6.3 इकाई की पाठ्य सामग्री कारिका/कारिकांश व्याख्या:

6.3.1 नायक के सामान्य

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्धि उत्साह स्मृति प्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

सन्दर्भ:- प्रस्तुत कारिका धनंजय द्वारा विरचित दशरूपकम् के द्वितीय प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंग:-दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश में कथावस्तु के भेदों का वर्णन करने के बाद यहाँ द्वितीय प्रकाश के आरम्भ में धनंजय 'नेता' अर्थात् नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:-नायक विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियभाषी, लोकप्रिय, पवित्र, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंशवाला, स्थिर चित्त, युवावस्था वाला, बुद्धि उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा कला एवं मान से युक्त, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना चाहिए।

व्याख्या:-नाट्याचार्यों ने पात्रों की प्रकृति तीन प्रकार की मानी है-उत्तम, मध्यम एवं अधम। यद्यपि नेता शब्द के अन्तर्गत सभी तरह के नाटकीय पात्र आ जाते हैं तथापि यहाँ नेता का अभिप्राय रूपक के नायक से लिया गया है। वह नायक नम्र स्वभाव वाला, देखने में सुन्दर (मधुर), प्रिय वचन बोलने वाला (प्रियंवद), करणीय कर्म में निपुण, लोकप्रिय, पवित्र (मन वचन एवं कर्म वाला) वाक्पटु, युवा, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ, शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी, कलाओं का ज्ञाता तथा शास्त्र ज्ञाता होना चाहिए।

नोट- आगे के सभी कारिकाओं/कारिकांशों में संदर्भ पहली कारिका की तरह ही होगा।

6.3.2 नायक के भेद

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्।

सन्दर्भ:-प्रस्तुत कारिकांश धनंजय विरचित दशरूपकम् के द्वितीय प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंग:-कारिक के इस अंश में नायक के भेदों के विषय में बताया गया है।

अर्थ:-यह नायिका ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत भेद से चार प्रकार का होता है।

व्याख्या:-नायक के ये चार भेद नायक की प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर किए गए हैं। ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत ये नायक की प्रकृति है। नाट्यशास्त्र आदि के अनुसार इन सभी प्रकार के नायकों के साथ 'धीर' पद जुड़ा हुआ है।अतः 1.धीरललित, 2. धीरशान्त, 3. धीरोदात्त और 4. धीरोद्धत ये चार भेद नाट्यचार्यों ने माने हैं। 'धीर' शब्द का अर्थ है धैर्ययुक्त। अर्थात् संकट की स्थिति आने पर भी विचलित न होना ही धीरता है और यह धीरता गुण ललित, शान्त, उदान्त एवं उद्धत सभी प्रकार की प्रकृति वाले नायकों में अवश्य होनी चाहिए।

6.3.3 धीरललित नायक की विशेषता

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।

प्रसंग:- धीरललित नायक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए धनंजय कहते हैं-

व्याख्या:-चिन्ताओं से रहति, कलाओं के प्रति आसक्त, सुखी तथा कोमल स्वभाव एवं व्यवहार वाला नायक धीरललित कहलाता है।

व्याख्याः-धीरललित कोटि का नायक सभी प्रकार की चिन्ताओं से रहित होता है। चिन्तारहित होने के कारण ही वह संगीत आदि कलाओं में तथा कामादि में आसक्त होता है। श्रंृगार भाव की प्रधानता उसमें होती है इसीलिए वह सुकोमल स्वभाव एवं आचरण वाला होता है। ऐसा नायक सब प्रकार से सुखी होता है। यथा रत्नावली नाटिका का नायक उदयन धीरललित है।

6.3.4 धीरशान्त नायक की विशेषता

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक्।

प्रसंग:-इस कारिकांश में धनंजय धीरशान्त नायक की विशेषताओं के विषय में बता रहें हैं कि-

अर्थ:- विनम्रता, मधुरता, त्याग, दक्षता, प्रियभाषी, लोकप्रिय, आदि सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीरशान्त नायक होते हैं।

व्याख्या:-विनम्रता आदि नायक के जो सामान्य गुण कहे गए हैं उन गुणों से युक्त ब्राह्मण, वणिक तथा अमात्य धीरशान्त कहे जाते हैं। ब्राह्मण वणिक् और अमात्य में धीरललित के गुण होने पर भी

वे स्वभावतः शान्त होने के कारण धीरशान्त कहलाते हैं। प्रकरण नामक रूपक भेद का नायक धीरशान्त ही होता है जैसे मृच्छकटिकम् का नायक चारूदत्त जाति से ब्राह्मण तथा व्यवसाय (कर्म) से वणिक् है अतः वह धीरशान्त नायक है।

6.3.5 धीरोदात्त नायक की विशेषता

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।

प्रसंग:-इस कारिका में धीरोदात्त नायक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:-धीरोदात्त नायक महापराक्रमी, अतिगम्भीर प्रकृति का, क्षमाशील, आत्मप्रशंसा न करने वाला, स्थिर स्वभाव का, विनम्रता के द्वारा छिपे हुए अहंकार वाला तथा दृढ़व्रती होता है।

व्याख्या:- ऐसा नायक, जिसका अन्तःकरण शोकक्रोध आदि से अभिभूत नहीं होता है, जो खुद अपनी प्रशंसा नहीं करता, अत्यन्त गम्भीर एवं दृढ़ प्रतिज्ञा वाला होता है तथा जिसका अहंकार (स्वाभिमान) उसकी नम्रता के कारण छिपा रहता है, वह धीरोदात्त कहलाता है जैसे राम धीरोदात्त नायक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

6.3.6 धीरोद्धत नायक की विशेषता

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वंहारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।

प्रसंग:-धनंजय इस कारिका में धीरोद्धत नायक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:- धीरोद्धत नायक अत्यधिक घमण्ड और ईर्ष्या से युक्त, माया और कपट से पूर्ण, अहंकारी, क्रोधी तथा आत्मप्रशंसा करने वाला होता है।

व्याख्या:-यहाँ दर्प से अभिप्राय है अपनी वीरता आदि पर घमण्ड करना। मात्सर्य का मतलब है दूसरों की उन्नति को सहन न करना। माया का अर्थ है मन्त्र शक्ति से न दिखने वाली वस्तु को प्रकट करना तथा दूसरों को ठगना ही छल है। इस प्रकार का धीरोद्धत नायक अस्थिर चित्त, अत्यन्त क्रोधी तथा स्वयं अपनी बड़ाई करने वाला होता है जैसे परशुराम धीरोद्धत नायक है।

6.3.7 नायक की श्रृंगार विषयक् अवस्था

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वां प्रत्यन्यया हृतः।

प्रसंग:-यहाँ धनंजय ने नायक की श्रृंगार विषयक् अवस्थाओं का वर्णन किया है।

अर्थ:-अन्य नायिका के प्रति आकर्षित हुआ वह नायक पहली नायिका के प्रति दक्षिण, शठ एवं धृष्ट अवस्था वाला होता है।

व्याख्या:-किसी दूसरी नवीन नायिका के प्रति आसक्त नायक की अपनी पूर्वा नायिका (पत्नी) के प्रति तीन अवस्थाएँ होती हैं। आगे बताए जाने वाले अनुकूल नामक भेद को मिलाकर से उसी नायक की चार अवस्थाएँ होती हैं-1. दक्षिण, 2. शठ, 3. धृष्ट एवं 4.अनुकूल। पूर्व में जो नायक धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत कहा गया है उनमें से प्रत्येक नायक दक्षिण, शठ, धृष्ट एवं अनुकूल भेद से चार-चार प्रकार का होता है। इस तरह नायक कुल सोलह प्रकार का होता है।

6.3.8 दक्षिण/ शठ /धृष्ट एवं अनुकूल नायक की विशेषता

दक्षिणोऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः।
व्यक्तांगवैकृतो धृष्टः अनुकूलस्त्वेकनायिकः।।

प्रसंग:-यहाँ दक्षिण शठ धृष्ट एवं अनुकूल नायक की विशेषताओं को बताया गया है।

अर्थ:-नवीन नायिका के प्रत आसक्त होते हुए भी जो नायक अपनी पूर्वा नायिका के प्रति सहृदय बना रहता है वह दक्षिण नायक है। पूर्वा नायिका का छिपकर अप्रिय करने वाला शठ नायक है। जिस नायक के अंगों पर अन्य नायिका के साथ की गई रतिक्रीड़ा करने के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देते हो वह धृष्ट नायक है। एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहने वाला नायक अनुकूल नायक होता है।

व्याख्या:- जो नायक अन्या नायिका के द्वारा अपहृत चित्त होने पर भी अपनी पूर्वा नायिका (पत्नी) के प्रति पहले की ही तरह प्रेमपूर्ण बना रहता है वही दक्षिण नायक है। जो नायक अन्या नायिका से प्रेम करने के बाद अपनी ज्येष्ठा नायिका के प्रति पूर्ववत् प्रेमपूर्ण नहीं रह पाता अपितु प्रेम का दिखावा मात्र करता है। वह शठ नायक है। अन्या नायिका के साथ की गई रतिक्रीड़ा के चिह्नों के साथ ही जो नायक पूर्वा नायिका के पास जाने की धृष्टता करे वह धृष्ट नायक है और एक ही नायिका (पत्नी) से प्रेम करने वाला अनुकूल नायक होता है।

6.3.9 नायक के प्रमुख सहायक

पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः।।

प्रसंग:-यहाँ धनंजय नायक के प्रमुख सहायक की विशेषताओं का वर्णन कर रहें हैं-

अर्थ:-पताका नायक प्रधान नायक से भिन्न होता है। इसे पीठमर्द कहा जाता है। वह चतुर एवं बुद्धिमान होता है। वह प्रधान नायक का अनुचर एवं भक्त होता है तथा प्रधान नायक से कुछ ही कम गुणों वाला होता है।

व्याख्या:-नाटकादि में पताका नामक प्रासंगिक कथा का जो नायक होता है वही पीठमर्द कहलाता है। यह चतुर एवं बुद्धिमान होने के साथ-साथ प्रमुख नायक का भक्त एवं अनुगामी होता है। इसके अलावा यह पीठमर्द प्रमुख नायक से कुछ ही कम गुणों वाला होता है जैसे राम कथा में सुग्रीव एवं विभीषण पीठमर्द (पताका नायक) है।

6.3.10 प्रधान नायक के सहायक

एकविद्यो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः।

प्रसंग:-दशरूपककार ने यहाँ प्रधान नायक के सहायक दो अन्य पात्रों विदूषक एवं विट के विषय में बताया है-

अर्थ:-किसी एक विद्या में पारंगत (प्रधान) नायक का सहायक पात्र विट कहलाता है। नाटक हास्य उत्पन्न करने वाला नायक का श्रृंगारिक सहायक विदूषक होता है।

व्याख्या:-नायक की उपयोगी गीत आदि विद्याओं में से किसी एक कला को भलीभांति जानने वाला नायक का सहायक पात्र विट कहलाता है। नाटक में हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र विदूषक कहलाता है। वाणी, वेश और कर्म की विकृति के द्वारा यह नाट्य में हास्य उत्पन्न करता है। प्रायः सभी संस्कृत नाटकों में विदूषक अनिवार्य पात्र होता है।

6.3.11 प्रतिनायक की विशेषता

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः।

प्रसंग:-धनंजय प्रतिनायक (खलनायक) की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-जो पात्र लोभी, धीरोद्धत, अहंकारी, (जिद्दी) पापी, व्यसनी तथा मुख्य नायक का शत्रु होता है वह प्रतिनायक कहलाता है।

व्याख्या:-प्रधान नायक का विरोधी ही प्रतिनायक होता है। वह लोभी, व्यसनी, अहंकारी, पापी तथा मुख्य नायक से शत्रुता रखने वाला होता है। जैसे रामकथा में रावण तथा युधिष्ठिर कथा में दुर्योधन प्रतिनायक है।

6.3.12 नायक के सात्विक गुणों वर्णन

शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्य तेजसी।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्विकाः पौरूषाः गुणाः।।

प्रसंग:-दशरूपकाकर धनंजय नायक के पुरूषोचित सात्विक गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-शोभा, विलास, माधुर्य, गम्भीरता, स्थिरता, तेजस् ललित एवं औदाय (उदारता)-ये आठ पुरूषों के सात्विक गुण कहे गए हैं।

व्याख्या:-'सात्विक' का अर्थ है सत्त्व से उत्पन्न होने वाले। रजोगुण तथा तमोगुण के उद्रेक से रहित मन ही सत्त्व कहलाता है और शोभा विलास आदि ऐसे ही सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण नायक के पुरूषोचित सात्त्विक गुण कहे जाते हैं। यहाँ कारिका में 'पौरूषाः' शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये शोभा आदि पुरूषों (नायक) के ही गुण होते हैं स्त्रियों या नायिकाओं के नहीं।

6.3.13 शोभा, विलास, माधुर्य एवं गाम्भीर्य नामक सात्त्विक गुण

नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्य दक्षता।
गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः।।
श्लक्ष्णो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि।
गाम्भीर्यं यत्प्रभावेण विकारो नोपलक्ष्यते।।

प्रसंग:-इन दो कारिकाओं में धनंजय नायक के क्रमशः शोभा, विलास, माधुर्य एवं गाम्भीर्य नामक सात्त्विक गुणों के विषय में बताते हैं-

अर्थ:-'शोभा' नामक सात्त्विक गुण में नीच के प्रति घृणा, अधिक के प्रति स्पर्धा, शौर्य तथा दक्षता, 'विलास' में धैर्यपूर्ण गति एवं दृष्टि तथा मन्दहास्य युक्त वचन, 'माधुर्य' में विकार का महान कारण होते हुए भी बहुत थोड़ा सा विकार तथा 'गाम्भीर्य' में विकार के अनेक कारण कारणों के होते हुए भी बिल्कुल भी विकार परिलक्षित नहीं होता।

व्याख्या:- 'शोभा' नामक सात्विक गुण के होने पर नायक में नीच के प्रति घृणा की भावना, अधिक गुण वाले व्यक्ति के प्रति स्पर्धा की भावना, शूरता तथा दक्षता निहित रहती है।

'विलास' नामक सात्विक गुण में नायक की धैर्य युक्त गति होती है। उसकी दृष्टि में धीरता रहती है और उसकी वाणी मन्द हास्य से युक्त होती है अर्थात् बोलने में भी धीरता रहती है।

माधुर्य नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक में, क्षोभ के महान कारणों के होते हुए भी, मधुर विकार (थोड़ा सा ही विकार) दिखाई देता है।

'गाम्भीर्य' नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक की मुखाकृति पर हर्ष, भय, क्रोध, शोक, सुख, दुःख, आदि मनोविकारों या भावावेश के महान कारणों के होते हुए भी बिल्कुल भी विकार (परिवर्तन) दिखाई नहीं देता है।

6.3.14 स्थैर्य, तेज, ललित एवं औदार्य नामक सात्त्विक गुण

व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि।
अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि।।
श्रृंगाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।
प्रियोक्त्याऽऽ जीविताद्दानमौदार्यं सदुपग्रहः।।

प्रसंग:-धनंजय नायक के स्थैर्य, तेज, ललित एवं औदार्य इन चार सात्त्विक गुणों के विषय में बताते हुए कहते हैं-

अर्थ:-विघ्नों के होते हुए भी अपने निश्चय से पीछे न हटना नायक का स्थैर्य सात्त्विक गुण है। प्राण भले ही चले जाय किन्तु अपना अपमान सहन न करना-यही नायक का तेज गुण है। श्रंृगार के अनुरूप स्वाभाविक मृदु एवं सुन्दर चेष्टाएँ करना ही नायक का ललित गुण तथा प्रिय वचन बोलते हुए अपने प्राणों तक का परहित में दान कर देना अथवा सज्जनों का सत्कार करना ही औदार्य नामक सात्त्विक गुण है।

व्याख्या:-'स्थैर्य' नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक अपने पहले किए गए निश्चय से विचलित नहीं होता। चाहे कितने ही विघ्न बाधाएँ क्यों न आ जाय तब भी वह अपने निश्चय पर अटल रहता है।

'तेज' नामक सात्त्विक गुण के होने पर भले ही नायक के प्राणों पर संकट क्यों न आ जाय तब भी वह दूसरों के द्वारा किए गए अपमान को सहन नहीं करता। तात्पर्य यह है कि प्राण भले ही चले जाय लेकिन तिरस्कार या अपमान सहन न करना ही नायक का तेज नामक सात्त्विक गुण है।

'ललित' नामक सात्विक गुण के होने पर नायक श्रृंगार के अनुरूप स्वाभाविक रूप से सुकोमल तथा सुन्दर चेष्टाएँ करता है।

औदार्य नामक सात्त्विक गुण में नायक प्रिय वचन बोलते हुए जीवन पर्यन्त (या अपने प्राणों तक का दूसरों के हित में) दान कर देता है। यह उसका औदार्य है। इसी के साथ सज्जनों का आदर-सत्कार करना भी औदार्य है।

6.3.15 नायिका के गुण एवं भेद वर्णन

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।

प्रसंग:-दशरूपककार ने यहाँ नायिका के गुण एवं भेदों का वर्णन किया है। ,

अर्थ:-उन (नायक के विनम्रता आदि सामान्य) गुणों से युक्त नायिका तीन प्रकार की होती है।

व्याख्या:-नायक के विनम्रता, माधुर्य, प्रियभाषी आदि सामान्य गुणों से युक्त नाटक आदि रूपक की नयिका तीन प्रकार की होती है-स्वकीया, परकीया और साधारण या सामान्या नायिका।

6.3.16 स्वकीया नायिका के गुण

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति शीलार्जवादियुक्।

प्रसंग:-दशरूपककार धनंजय स्वकीया नायिका के गुणों एवं उसके भेदों का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-स्वकीया नायिका शील सरलता आदि से युक्त होती है। वह मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन प्रकार की होती है।

व्याख्या:-स्वकीया नायिका शीलवती होती है। शील से अभिप्राय यह है कि उसका चरित्र और आचरण अच्छा हो। वह सरल होनी चाहिए अर्थात् उसमें कुटिलता न हो। उसे लज्जाशील एवं पति

सेवा परायण होना चाहिए। इस तरह अपनी पत्नी ही स्वकीया नायिका है। स्वकीया नायिका तीन तरह की होती है- 1. मुग्धा, 2. मध्या एवं 3.प्रगल्भा।

6.3.17 मुग्धा नायिका की विशेषता

मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि।

प्रसंग:-धनंजय स्वकीया नायिका के प्रथम भेद मुग्धा नायिका की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-मुग्धा नायिका उसे कहा जाता है जो यौवनावस्था में पदार्पण कर रही हो और काम वासना में रूचि रखने लगी हो, किन्तु रति क्रीड़ा से कतराती हो और क्रोध करने में भी कोमल हो।

व्याख्या:-जिसमें यौवन और काम भावना का पहले-पहल अभ्युदय हुआ है, जो सुरत क्रीड़ा से झिझकने वाली तथा क्रोध में कोमल होती है अर्थात् जिसका क्रोध सहज ही दूर हो जाता है, वही मुग्धा नायिका कही जाती है।

6.3.18 मध्या एवं प्रगल्भा नायिका भेद का निरूपण

द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः।

प्रसंग:-स्वकीया नायिका के मध्या एवं प्रगल्भा नायिका भेद का निरूपण करते हुए दशरूपककार कहते हैं-

अर्थ:- मध्या एवं प्रगल्भा नायिकाएँ दो तरह की होती हैं-ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा। इस तरह मुग्धा से भिन्न स्वकीया नायिका के 12 भेद होते हैं।

व्याख्या:-स्वकीया नायिका के मुग्धा से इतर जो दो भेद मध्या एवं प्रगल्भा है उनके सर्वप्रथम तीन-तीन भेद होते हैं। मध्या नायिका के तीन भेद हैं- 1. धीरामध्या, 2.अधीरा मध्या एवं 3. धीराधीरा मध्या। इसी तरह प्रगल्भा के भी 1. धीरा प्रगल्भा, 2. अधीरा प्रगल्भा और 3. धीराधीरा प्रगल्भा ये तीन भेद। मध्या और प्रगल्भा के इन छः (6) भेदों में से प्रत्येक के ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा के आधार पर दो-दो भेद होकर कुल बारह भेद हो जाते हैं। स्वकीया का एक भेद है मुग्धा नायिका। इस तरह मध्या

तथा प्रगल्भा के छः छः भेद तथा एक मुग्धा नायिका, कुल मिलाकर स्वकीया नायिका तेरह प्रकार की होती है।

6.3.19 परकीया नायिका वर्णन

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढ़ाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्।।

प्रसंग:-दशरूपककार नायिका के द्वितीय भेद परकीया नायिका के विषय में कहते हैं-

अर्थ:-अन्यस्त्री अर्थात् परकीया नायिका होती है-1. कन्या अथवा 2. अन्योढा अर्थात् दूसरे की विवाहिता स्त्री। प्रधान रस में अन्योढ़ा का आलम्बन के रूप में कदापि वर्णन नहीं करना चाहिए। कन्या के अनुराग को तो कवि (कृति में) इच्छानुसार प्रधानरस का या अप्रधान रस का आलम्बन बना सकता है।

व्याख्या:-कन्या और परोढ़ा दो तरह की परकीया नायिका होती है। इनमें से परोढ़ा तो किसी दूसरे की विवाहिता होने से परकीया है जबकि कन्या पिता भाई आदि के अधीन होने के कारण परकीया है। परोढ़ा को कभी भी अंगीरस का आलम्बन नहीं बनाया जा सकता है अर्थात् वह किसी ग्रन्थ की प्रमुख नायिका नहीं हो सकती। कन्या को प्रधान रस का आलम्बन भी बनाया जा सकता है और अप्रधान रस का भी। अर्थात् कन्या प्रमुख नायिका भी हो सकती है और अप्रमुख नायिका भी। यह कवि की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है।

6.3.20 नायिकाओं की अवस्थाओं का निरूपण

आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधनीपतिकादिकाः।

प्रसंग:-धनंजय नायिकाओं की अवस्था भेदों का निरूपण करते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:-इन सभी प्रकार की नायिकाओं की स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाएँ होती हैं।

व्याख्या:-(1) स्वाधीनपतिका, (2) वासकसज्जा, (3) विरहोत्कंठिता, (4) खण्डिता, (5) कलहान्तरिता, (6) विप्रलब्धा, (7) प्रोषितप्रिया और (8) अभिसारिका ये आठ अवस्थाएँ स्वकीया, परकीया एवं सामान्या सभी तरह की नायिकाओं में होती हैं। यद्यपि स्वकीया परकीया आदि भी नायिका की अवस्थाएँ हैं तथापि ये अवस्थाएँ धर्मी हैं जबकि स्वाधीनपतिका आदि उनके धर्म हैं अर्थात् उन स्वकीया आदि अवस्थाओं की ये स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाएँ हैं। ये अवस्थाएँ आठ ही हैं उससे कम या ज्यादा नहीं।

6.3.21 स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता एवं खंडिता अवस्था का वर्णन

आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका।
मुदावासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये।।
चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कंठितोन्मनाः।
ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खंडितेर्ष्याकषायिता।।

प्रसंग:-यहाँ दशरूपककार धनंजय नायिकाओं की स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता एवं खंडिता-इन चार अवस्थाओं के विषय में बता रहे हैं।

अर्थ:-पति के आसन्न (उनके पास) और आयत्त (उसके वश में) होने के कारण जब नायिका प्रसन्न रहती है तो यही उसकी स्वाधीनपतिका अवस्था है। नायक आने ही वाला है यह जानकर प्रसन्न मन वाली नायिका जब अपने को सजाती है तो वह वासकसज्जा है। नायक के अपराधी न होने पर भी जब मिलन स्थल पर उसके आने में देरी होने से जो नायिका विरह के कारण व्याकुल होती है वह नायिका की विरहोत्कंठिता अवस्था है। नायक के अंगों पर लगे हुए चिह्नों को देखकर जो नायिका नायक की अन्या नायिका के प्रति आसक्ति को जानकर ईर्ष्या से कलुषित हो जाती है वह खण्डिता अवस्था वाली नायिका है।

व्याख्या:- 'स्वाधीनभर्तका' या 'स्वाधीनपतिका' अवस्था वाली नायिका वह होती है जिसका पति उसके पास और उसी के वश में होता है इसीलिए वह प्रसन्न रहा करती है।

'वासकसज्जा' अवस्था वाली नायिका वह होती है, जो 'नायक बस आने ही वाला है'-यह जानकर खुद को और अपने घर को प्रसन्न मन से सजाती संवारती है।

'विरहोत्कंठिता' उसे कहते हैं-जब नायक के निरपराध होते हुए भी किसी कारण यदि मिलन स्थल पर नायक के पहुँचने में देरी होती है और इस देरी के कारण नायिका विरह से व्याकुल हो उठती है तो वह विरहोत्कंठिता कही जाती है।

'खंडिता' अवस्था वाली नायिका वह होती है जो अपने प्रति नायक के प्रेम खंडन को जान जाती है जैसे कि नायक के अंगों पर लगे हुए अन्या नायिका के समागम चिह्न यह सूचित कर देते हैं कि नायक रात्रि में किसी दूसरी नायिका के साथ रमण करके आया है। ऐसी स्थिति में जब नायिका ईर्ष्या से कलुषित मन वाली हो जाती है तब वह नायिका की खंडिता अवस्था होती है।

6.3.22 कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया और अभिसारिका का वर्णन

कलहान्तरिताऽमर्षात् विधूतेऽनुश्यार्तियुक्।
विप्रलब्धोक्तसमयम् अप्राप्तेऽतिविमानिता।।
दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया।
कामार्ताऽभिसरेत् कान्तं सारयेद् वा अभिसारिका।।

प्रसंग:-दशरूपककार यहाँ नायिका की कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया और अभिसारिका-इन चार अवस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-अपराधी नायक का क्रोध के कारण पहले तिरस्कार करके बाद में पश्चाताप करने वाली नायिका कलहान्तरिता है। निश्चित समय पर मिलन स्थल पर नायक के न पहुँचने के कारण स्वयं को अत्यधिक अपमानित समझने वाली विप्रलब्धा है। जिसका प्रियतम किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है वह प्रोषित प्रिया है। काम से पीड़ित होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली या नायक को अपने पास बुलाने वाली अभिसारिका होती है।

व्याख्या:-'कलहान्तरिता' अवस्था वाली नायिका वह होती है जो नायक के अपराध (दूसरी स्त्री के प्रति आसक्ति रूप) को जानकर पहले तो नायक का तिरस्कार करती है, किन्तु बाद में नायक के प्रति किए गए अपने व्यवहार पर पश्चाताप करती है।

इसी प्रकार निश्चित किए गए समय पर यदि नायक मिलन स्थल पर नहीं पहुँचता, तो नायिका स्वयं को नायक के द्वारा अत्यधिक अपमानित हुआ (ठगा गया) समझती है। ऐसी नायिका विप्रलब्धा है।

'प्रोषिताप्रिया' वह होती है जिसका प्रियतम किसी कार्यवश (व्यापार, नौकरी या अन्य किसी कारण से) दूर देश में प्रवास पर गया होता है।

'अभिसारिका' काम से पीड़ित होकर नायक को रमण (समागम) के लिए अपने पास बुलाती है या स्वयं नायक के पास रमण के लिए जाती है-ये दोनों ही तरह की नायिकाएँ अभिसारिका कही जाती है। क्योंकि ये कामार्त होकर अभिसार करना चाहती है। इन आठ प्रकार की अवस्था वाली नायिकाओं में से स्वाधीनपतिका और वासकसज्जा ये दोनों नायिकाएँ सदा प्रसन्न रहती हैं

तथा उज्जवलता से युक्त होती है। शेष छः प्रकार की नायिकाएँ-(विरहोत्कंठिता, खंडिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया तथा अभिसारिका) चिन्ता, निश्वास, खेद, अश्रु, मुख का फीका पड़ जाना, तथा साज सज्जा का अभाव आदि से युक्त होती है।

6.3.23 स्त्रियों के यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले बीस अलंकरण

यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः।

प्रसंग:-दशरूपककार स्त्रियों के यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले अलंकारों का वर्णन करते हैं।

अर्थ:-यौवनावस्था में सत्त्व से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के बीस अलंकरण होते हैं।

व्याख्या:-शरीर पर धारण किए जाने वाले भुजबन्द, हार आदि आभूषण शरीर की शोभा को बढ़ाने के कारण अलंकार कहे जाते हैं उसी तरह युवावस्था में शरीर सौन्दर्य को बढ़ाने वाले कुछ विकार या परिवर्तन होते हैं। अतः इन्हें भी अलंकरण कहा जाता है इनमें तीन शरीरज अलंकरण हैं-भाव, हाव और हेला। शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात अयत्नज अलंकरण हैं। इसके अलावा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत ये दस स्वभावज अलंकरण माने गए हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर यौवनावस्था में सत्व से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के ये बीस अलंकरण होते हैं।

6.3.24 नायक के व्यापार

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा।

प्रसंग:-दशरूपककार नायक के व्यापार (वृत्ति) पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:- उस नायक के व्यापार, अर्थात् मानसिक, वाचिक तथा कायिक व्यापार को ही वृत्ति कहते हैं। प्रवृत्ति रूप नायक के व्यापार का स्वभाव ही वृत्ति कहलाता है। वृत्ति का अर्थ है नटों की क्रिया या व्यापार जिसका रूपक में प्रदर्शन होता है। वृत्ति केवल वही नहीं है जिसका शरीर के विभिन्न अंगों से प्रदर्शन किया जाय बल्कि मन तथा वाणी का व्यापार भी वृत्ति के अर्न्तगत आता है। कवि नायक आदि के कायिक, वाचिक एवं मानसिक व्यापारों को वर्णनीय रूप से अपने मन में रखकर ही काव्य रचना करता है। इसीलिए वृत्ति काव्य या नाट्य की जननी मानी गई है। ये वृत्तियाँ चार हैं-1. कौशिकी, 2. सात्त्वती, 3. आरभटी एवं 4. भारती।

व्याख्या:-आचार्य भरत के अनुसार जो आकर्षक वेश के कारण सुरूचि पूर्ण हो, जिसमें स्त्री पात्र तथा अनेक प्रकार के नृत्य, गीत तथा वाद्य आदि का समावेश हो, जिसमें प्रणय व्यापार, विलास तथा आमोद-प्रमोद बहुल प्ररसंगों का समावेश हो तो वह कौशिकी वृत्ति है। सात्त्वती वृत्ति विशेषतः मानस व्यापार रूप होती है। भारती वृत्ति वाचिक व्यापार रूप तथा कौशिकी एवं आरभटी विशेषकर कायिक व्यापार रूप होती है।

6.3.25 वृत्ति वर्णन

चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटकलक्षणे,
कौशिकीं सात्त्वतीं चार्थवृत्तिमारभटीमिति।
पठन्तः वृत्तिमौद्भटः प्रतिजानते।।

प्रसंग:-धनंजय ने चार वृत्तियाँ मानी हैं। उद्भट आदि आचार्यों ने 'अर्थवृत्ति' नामक पंचम वृत्ति भी स्वीकार की है। उसका ग्रन्थकार इस प्रकार निराकरण करते हैं-

अर्थ:-कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी वृत्तियों के अलावा अन्य कोई 'अर्थवृत्ति' नहीं होती। चौथी 'भारती' वृत्ति होती है, जिसका वर्णन नाटक के लक्षण वर्णन के अवसर पर किया जाएगा।

व्याख्या:-उद्भट तथा उनके अनुयायियों को मान्य यह 'अर्थवृत्ति' लक्ष्य ग्रन्थों (नाटकादि) में कहीं भी दिखाई नहीं देती है। साथ ही वह रसों में भी उपयुक्त नहीं होती क्योंकि हास्य आदि सभी रसों का भारती आदि चार वृत्तियों में ही समावेश हो जाता है और कोई भी काव्यार्थ नीरस नहीं होता है। अतः कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी ये तीन ही अर्थवृतियाँ हैं। भारती वृत्ति तो शब्द वृत्ति है, वह आमुख का अंग है। इनके अतिरिक्त 'अर्थवृत्ति' नाम वाली कोई वृत्ति नहीं है।

6.3.26 रसों में विभिन्न वृत्तियां

श्रृंगारे कौशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्र च वीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती।।

प्रसंग:-दशरूपककार विभिन्न रसों में विभिन्न वृत्तियों के प्रयोग का नियम निरूपित करते हैं।-

अर्थः-श्रृंगार रस में कौशिकी, वीर रस में सात्वती तथा रौद्र एवं वीभत्स रस में आरभटी वृत्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। भारती वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में होना चाहिए।

व्याख्याः यहाँ श्रृंगार से हास्य का भी ग्रहण किया जाना चाहिए अर्थात् श्रृंगार एवं हास्य रस में कौशिकी वृत्ति का उपयोग होता है। इसी तरह वीर के साथ-साथ अद्भुत रस में भी सात्वती वृत्ति

प्रयुक्त होती है। करूण, रौद्र, वीभत्स एवं भयानक रस में आरभटी वृत्ति होनी चाहिए। भारती वृत्ति सभी रसों में प्रयुक्त होती है क्योंकि यह शब्द वृत्ति रूप है।

6.4 सारांश

दृश्य काव्य में कथावस्तु के बाद दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है नेता या पात्र। पात्रों के अभाव में दृश्य काव्य अभिनेय नहीं हो सकता। अतः कथावस्तु यदि किसी नाटक का शरीर है तो पात्र उसे प्राणवान् बनाते हैं। इसीलिए दशरूपक के द्वितीय प्रकाश के अर्न्तगत 'नेता' तत्त्व का विशद् विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम उनके विनम्रता आदि सामान्य गुणों का वर्णन किया गया है जो नायक में तो होने ही चाहिए नायिका में भी यथासंभव होने चाहिए। नायक की प्रकृति के आधार पर उनके धीरललितादि चार भेद बताते हुए पुनः श्रृंगारिक अवस्था के आधार पर नायक की दक्षिण, शठ, धृष्ट एवं अनुकूल चार अवस्थाएँ कहीं गई हैं। नायक के आठ पुरूषोचित सात्विक गुणों, नायक के पीठमर्द, विट, विदूषक आदि सहायकों का वर्णन करते हुए इस इकाई में प्रतिनायक का भी उल्लेख किया गया है।

नायक के बाद नायिका का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम उसके स्वकीया, परकीया, सामान्या रूप तीन भेद करते हुए स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा ये तीन भेद किए हैं। मध्या एवं प्रगल्भा के छः छः प्रभेद करते हुए मुग्धा सहित स्वकीया नायिका के तेरह भेद किए गए हैं। परकीया नायिका कन्या और परोढ़ा दो तरह की तथा सामान्या नायिका गणिका रूप में एक ही प्रकार की होती है। नायिकाओं में यौवनावस्था में सत्व से उत्पन्न होने वाले बीस अलंकरण बताए गए हैं।

नाट्य वृत्तियों के अन्तर्गत कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी वृत्तियों का परिचय दिया गया है। इस प्रकार इस इकाई में नाटक के पात्रों (नेता तत्त्व) का समग्र विवेचन किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. धीरललित

2. धीरोदात्त
3. दक्षिण नायक

बहुविकल्पीय:

1. नायक की श्रृंगार विषयक अवस्थाएँ कितनी होती हैं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) आठ

2. किसी एक विद्या में निपुण नायक का सहायक पात्र क्या कहलाता है?

(क) चेट (ख) विट

(ग) विदूषक (घ) पीठमर्द

3. वृत्ति कितने प्रकार की मानी गई है।

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

4. श्रृंगार रस में कौन सी वृत्ति होती है?

(क) कौशिकी (ख) सात्त्वती

(ग) आरभटी (घ) भारती

5. नायिका की कितनी अवस्थाएँ मानी गई हैं

(क) छ (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौ

रिक्त स्थानों की पूति:

1. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो.....।
2. रूपक के प्रकरण नामक भेद का नायक.....कोटि का होता है।
3. .....धीरशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत नायक के ये चार भेद माने गये गए हैं।
4. .....धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।

5. आसन्नायत्तरमणा हृष्टा.....।

अति लघु उत्तरीय:

1. अन्या नायिका के समागम चिह्नों से युक्त होकर अपनी ज्येष्ठा नायिका के पास आने वाला नायक क्या कहलाता है?
2. अनुकूल नायक कैसा होता है?
3. प्रधान नायक से कुछ ही कम गुणों वाला पताका नामक प्रासंगिक कथा का नायक क्या कहलाता है?
4. नाटक में हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र कौन होता है?
5. स्वकीया नायिका के सर्वप्रथम कौन से भेद कहे गए हैं?

सत्य/असत्य:

1. नायक के कुल चालिस भेद कहे गए हैं।
2. स्वकीया नायिका के कुल तेरह भेद होते हैं।
3. साधारणस्त्री या सामान्या नायिका गणिका या वेश्या होती है।
4. वीर रस में आरभटी वृत्ति होती है।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर इकाई की पाठ्य सामाग्री को भलीभांति पढ़कर स्वयं लिखें। इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप खुद ही अपनी मूल्यांकन कर पाऐंगे। यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि आप पाठ्य सामग्री को पढ़कर स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें और बाद में उनका मिलान दिए गए उत्तरों से करें।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली:

मुग्धा नायिका:- नवीन यौवन एवं नवीन कामभावना वाली रति क्रीड़ा में प्रतिकूल आचरण वाली तथा आसानी से दूर किए जाने योग्य कोप वाली नायिका मुग्धा नायिका है।

धीरोदात्त:- उत्कृष्ट मन वाला, अर्थात् सुख दुःख से अप्रभावित रहने वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्म प्रशंसा न करने वाला, स्थैर्य गुण की अधिकता वाला, अपने अहं भाव को दबाकर (छिपाकर) रखने वाला तथा दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त होता है।

वृत्ति: नाटक में नायक-नायिका आदि का जो कार्य व्यापार होता है उसी को वृत्ति कहते हैं। वृत्ति शब्द का अर्थ ही है व्यापार। ये वृत्तियाँ (नायकादि का व्यापार) चार प्रकार की होती है कौशिकी, सात्त्वती, आरभटी एवं भारती। **"वृत्तय: नाट्यमातर:"** इन वृत्तियों को नाट्य की जननी अर्थात् माता कहा गया है।

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम् व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी
2. धनंजय, दशरूपकम् धनिककृत अवलोक टीका सहित, साहित्य भण्डार मेरठ।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. धीरललित हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.3 को देखें।
2. धीरोदात्त हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.4 को देखें।
3. दक्षिण नायक हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ग
2. ख
3. घ
4. क
5. ग

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. द्विजादिकः
2. धीरशान्त
3. धीरललित
4. निश्चिन्तो
5. स्वाधीनभर्तका

अति लघु उत्तरीय:

1. धृष्ट नायक
2. एक ही नायिका के प्रति आसक्ति रखने वाला।
3. पीठमर्द
4. विदूषक
5. मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा

सत्य/असत्य:

1. असत्य

2. सत्य
3. सत्य
4. असत्

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित कारिकाओं का अर्थ स्पष्ट कीजिए:-

(क) महासत्त्वोऽवोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥

(ख) दक्षिणोऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः॥
व्यक्तांगवैकृतो धृष्टः अनुकूलस्त्वेकनायिकः॥

2. निम्नलिखित कारिका/कारिकांश की सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए:-

(क) पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः॥

(ख) 'लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः